राय हरिहर

[विजयनगर उपन्यासमाला]

विजयनगर उपन्यासमाला

१. राय हरिहर
२. कृष्णाजी नायक
३. रायरेखा
४. राय बुक्का

राय हरिहर

(विश्व-विख्यात विजयनगर साम्राज्य सम्बंधी
ऐतिहासिक उपन्यासमाला का पहला फूल)

गुणवंतराय आचार्य

अनुवादक
परदेशी

निवेदन

राम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर की इस परम पवित्र धरती पर विदेशों से जितने यवन और म्लेच्छ आक्रमण हुए, आक्रान्ता आए, उन सबमें, हूणों और तुर्कों के आक्रमण अत्यंत पाशविक और क्रूर-कठोर थे। चौथी शताब्दी के उत्तरार्द्ध में और पाँचवीं शताब्दी के आरम्भ में योरप और भारत पर हमला करनेवाले हूणों का आतंक, सारी वसुधरा को थर-थर कँपा रहा था! मध्य एशिया से लेकर रोम के बाजारों तक प्रत्येक प्राणी—राहगीर और व्यापारी, सामंत और साहुकार, 'हूण' नाम से भयभीत हो रहा था। हूणों ने रोमन लोगों को हरा कर, रोम को तहसनहस कर दिया था!

किंतु, इन्हीं क्रूरकर्मा हूणों को हराया तो आर्यावर्त ने, परम वैष्णव राज-राजेश्वर महाराज हर्षवर्द्धन ने उन्हें पलायन के लिए बाध्य कर दिया और गौ, ब्राह्मण को प्रेम, शांति की अमर छाया दी। उनके पूर्व 'परम भट्टारक परमेश्वर' नाम से लोककंठ ने जिसका अभिनंदन-वंदन किया, उन वीर यशोधर्मन् ने मदसौर के मैदानों में हूणराज मिहिरकुल को हराया और वहाँ से भगाया तो ठेठ मध्य एशिया तक वह भागता रहा और ये उसका पीछा करते रहे! फिर से भारत के शैव, वैष्णव और जैन, बुद्ध निश्चिंत होकर अपने-अपने धर्मध्यान में निरत हुए!

लेकिन, मत की स्वतंत्रता, जहाँ हमारी हार्दिक विशालता का प्रतीक रही है, वहाँ आदर्श और मर्यादा की रक्षा की भावना के तिरस्कृत होने पर, वह विग्रह का बहुत बड़ा कारण बनी है।

इस प्रकार भारतीय इतिहास ने जब-जब अपने व्यक्ति की सामाजिकता को विनष्ट देखा है, तब-तब समाज ने उसे ऐसे सामाजिक व्यक्तियों का वरदान दिया है, जो उसके पुनर्निर्माण एवं पुनरुत्थान के प्रयासी बने हैं।

'राय हरिहर' समाज के लिए सर्वस्व को स्वाहा कर देनेवाले ऐसे ही नरपुंगवों की ज्वलंत कीर्तिकथा है। इष्ट की प्राप्ति में, अनिष्ट की आशंकाओं के प्रति निर्भय रहकर, संलग्न रहनेवाले योद्धाओं की तलवारों से इस कथा को चमक और चमत्कार मिला है। आज के व्यक्ति-पाठक के लिए इस कथा का महत्व और भी अधिक है, क्योंकि हमारा देश अनेक मत-मतान्तरों और वादों के व्यूह में घिरा हुआ है। साथ ही तुर्कों के आक्रमण की तरह, आज हमारी सीमा में विदेशियों के घुस आने की उतनी ही संकट-संभावना है।

वारंगल के काकतीय महाराज प्रतापरुद्र का बलिदान देकर, इस उपन्यास की भगवती रुद्राम्मादेवी ने विजय-धर्म की नींव का पहला पत्थर

रखा था। उसके बाद तत्कालीन आर्य और आचार्यजनों का ध्यान देश के संगठन की ओर गया। आज उसी संगठन की हमें अत्यन्त आवश्यकता है।

इस दृष्टि से राष्ट्रीय एकता, त्याग, वलिदान, शौर्य और साहस की अनुपम प्रेरणा देनेवाले इस उपन्यास का महत्व और भी अधिक बढ़ जाता है। अतीत के इतिहास की गौरव पूर्ण गाथा का प्रमुख उद्देश्य यही है कि वह हमारे वर्तमान को अपने अनुभवों से भावी संकट के प्रति सावधान कर दे। राय हरिहर इसी शृंखला की एक कीमती कड़ी है। इस कड़ी की कंचनवत् चमक और कुसुमवत् कमनीयता पाठक सहज ही अंकित पाएंगे।

प्रस्तुत उपन्यास के मूल लेखक श्री गुणवन्तराय आचार्य गुजराती भाषा के अद्वितीय ऐतिहासिक उपन्यासकार हैं। उनकी सब से बड़ी विशेषता विषय-वस्तु का चयन है। वे अपनी लौह-लेखनी के लिए ऐसा अद्‌भुत विषय चुन लेते हैं, जो प्रत्येक कोटि के पाठक के लिए आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु बनता है और पाठक की रुचि को रोचक घटनाओं से निरन्तर अपनी परिधि में तृप्त रखता है। उनका विषय-विजयनगर साम्राज्य की कीर्ति कथा—भारत की सभी भाषाओं के लिए नई चीज है। यह अत्यन्त आश्चर्य की बात है कि तुर्कों की तलवारों का पानी उतार देनेवाले यादवों, पांड्यों, चौलों, चेरों और अन्य जातियों के स्वदेशीय स्वतंत्रता के निमित्त आयोजित सर्वस्व समर्पणशील संघर्ष के अनुष्ठान के अमर साका पर इतना कम अथवा कुछ न लिखा गया! प्रस्तुत पुस्तक इस दिशा में मील का मूल्यवान् पत्थर है।

बड़े-बड़े दुर्गों का ध्वंस करनेवाले और बड़ी-बड़ी सेनाओं का संहार करनेवाले अपराजेय दक्षिण भारत की, उपन्यास में लिखित यह अमर कहानी अपने सम्पूर्ण सौन्दर्य और सौरभ को लेकर विकसित हुई है।

किसी भी सभ्य देश की सबसे बड़ी सम्पदा उसका गौरवपूर्ण इतिहास है। भारत—इस दृष्टि से सबसे सम्पन्न और वैभववन्त है। श्री गुणवन्तराय आचार्य ने इस वैभव के अनन्त भंडार-गृहों का एक रत्न श्वेत मखमल में रखकर गुजराती पाठकों के लिए प्रस्तुत किया है, उसी रूपवान रत्न को मैं लाल मखमल (हिन्दी रूपान्तरी) पर सजाकर हिन्दी पाठकों के लिए पेश कर रहा हूँ। आशा है कि हिन्दी जगत् इसे अपनी महिमामयी संस्कृति के स्वर्ण-चिन्ह के स्वरूप में समादृत करेगा।

परदेशी

अनुक्रम

१ : होयसल 'चक्रवर्ती'

विक्रम सम्वत् १३७६ का वर्ष। सावन कृष्ण अष्टमी का दिन। समय था वीरों के वीरत्व और सतियों के सतीत्व की परीक्षा का। कर्नाटक की राजधानी थी दोरा समुद्र।

कर्नाटक में यदुकुल भूषण बल्लाल का शासन था। वीर बल्लाल तृतीय परम भागवत और चरम महत्वाकांक्षी राजा था।

राजा परम भागवत और श्री व्यंकटेश का भक्त। फिर यादववंशी और यादवकुल मात्र के आदि पुरुष और परम भागवतों में भी परम भागवत भगवान् श्री कृष्णचन्द्र का जन्म दिवस! वैष्णव-सम्प्रदाय में वीर-पूजा, धर्मपूजा—सब गुलाबी रंग में महक उठता है!

जन्माष्टमी के परम मंगल अवसर पर धर्मोत्सव की सभा-मंडली का आनन्द तो सहज ही होता है। परन्तु साम्प्रदायिक श्रद्धा से प्रतिवर्ष उत्पन्न होनेवाले आनन्द से भी आज विशेष आनन्द का वर्षण हो रहा था।

बारह मास पूर्व, अपने कुल गुरु के समान समर्थ वैष्णव आचार्य और दक्षिण के समस्त वैष्णव सम्प्रदाय के सर्वोपरि श्री रंगम् मठ के मठाधीश, कुलगुरु श्री व्यंकटनाथ आचार्य के चरणों में उसने जल चढ़ाया था कि वह पांड्य नायक समूह को पराजित कर देगा। और कावेरी के उस पार रहनेवाले पांड्य नायकों को वीर शैव और शुद्ध शैव सम्प्रदायों की ओर से हटाकर वैष्णव सम्प्रदाय की शरण में ले जायगा।

एक समय था जब दक्षिण में पांडच दावानल के समान थे। उन्हें न तो मौर्य ही जीत सके, न गुप्त ही जीत पाए। उन्हें न चोल ही पराजित कर सके और न चेर ही। कलचूरी और चालुक्य भी उन्हें अपने अधीन न ला सके।

इतना ही नहीं, लेकिन दक्षिण के इतिहास की स्मृति में एक बार और उस काल में विद्यमान किसी मानवपुत्र की स्मृति में दूसरी बार—यों दो-दो बार आँधियाँ उठी थीं।

दसों दिशाओं के दिग्पाल डोल उठें, ऐसी ये आँधियाँ थीं।

उनमें पहली आँधी थी कलभ्रों की।

कलभ्र ये कौन थे, यह कोई नहीं जानता था। कहाँ से आये थे, यह भी किसी को ज्ञात न था। यह स्थल-मार्ग से आये कि जल-मार्ग से, यह भी अज्ञात था, चार-पाँच सौ वर्ष पूर्व, एक रात जब कि दक्षिण चैन और शांति से सोया हुआ था, सुबह जागा तो देखा कि देश में एक से दूसरे किनारे तक लूटपाट और हत्या की ज्वालायें धधक रही हैं। टिड्डी दल की भाँति कलभ्र आ रहे थे! पचास वर्ष बाद, जैसे आये थे अचानक अपने आप लोप भी हो गये और वे गये तो सेतुबंध रामेश्वर से कृष्णा नदी के दक्षिणी तट तक बसने वाले सभी प्राचीन राजवंशों, राजसंस्थानों, प्राचीन धर्मों, देवस्थानों और प्राचीन व्यापार एवं व्यवसायों के भयंकर विध्वंस अपने पीछे छोड़ते गये!

दक्षिण के, सारे के सारे पुराने संस्थानों और भलाई-बुराई के बखेड़ों को झाड़-बुहार कर साफ़ करनेवाला यह कोई दैवी झंझावात-सा था!

कितने ही पुराने राजवंश नष्ट हो गये। चोल गये। चेर गये। उनका नामोनिशान तक मिलना कठिन हो गया। शकों के विजेता—गौतमी-पुत्र शतकर्णी के अनुयायी भी नष्ट हो गये! राष्ट्रकूट भी विनष्ट हुए। इन्हीं में चालुक्यों का भी चिन्ह न रहा और न पांडच राज्य ही रहे। परन्तु पांडच नायक जहाँ-तहाँ टिके हुए थे। कलभ्रों ने दक्षिण में बहुत विनाश किये परन्तु पांडचों को वे नष्ट नहीं कर सके।

यह तो हुई इतिहास के संस्मरणों और इतिहास की स्मृतियों की बातें परन्तु, मानव-जाति के संस्मरणों में से कलभ्रों की याद को भी भुला देने वाली, उन्हें नामशेष कर देने वाली एक और आँधी चढ़-आई थी। चढ़-आई थी, इतना ही नहीं चढ़ी हुई थी। इस दावानल से उठने वाले धुएँ से दक्षिण का आकाश अभी भी घिरा हुआ था।

लगभग २५ वर्ष पूर्व दक्षिणी सीमा पर म्लेच्छ यवन आये थे। जब वे दक्षिण में पहली बार दिखाई दिये, तब वहाँ यादवों का शासन था। देवगिरि में यादव थे। वारंगल में काकतीय यादव थे। कृष्णा नदी के नीचे काम्पिली में यादव थे। कर्नाटक में होयसल यादव था। कावेरी के सम्मुख—निकट-तमिल-मण्डल में पांड्य नायक थे। मदुरा में इनका नायक-श्रेष्ठ पांड्य राजा राज्य करता था।

परन्तु २५ वर्ष में ही देवगिरि चला गया! कर्नाटक भी गया। कर्नाटक के वीर बल्लाल तृतीय को दिल्ली का भयकर सेनापति मलिक काफूर बंदी बनाकर दिल्ली ले गया। म्लेच्छों की सेना कावेरी पार-उतर कर, मदुरा तक पहुँच गई। उसने मदुरा अपने अधिकार में लिया और वहाँ दिल्ली का एक सूबा नियुक्त किया।

मदुरा के महार्णव मदिर के शिवलिंग का अपमान कर, मन्दिर की मूर्तियाँ बाहर फेंककर, सूबा इस देव मदिर में रहता था। और देव-दासियो से अपने सामने नृत्य करवाता था। परन्तु पाड्य-नायक थे कि वे अब भी अपना मस्तक ऊँचा रख कर घूम रहे थे।

दैवयोग से दिल्ली में अलाउद्दीन खिलजी का देहावसान हो गया—अवसान हुआ कि वध, आज तक कोई इसका निर्णय नहीं कर सका! खिलजी का साला अलिफ खाँ मारा गया। उसके चारों शाहजादे मारे गये। उसके शक्तिशाली सेनापतियों का कत्ल हुआ। उसके माने हुए देशी और विदेशी अमीर—सभी मारे गये। तब खुसरू खाँ नामक गुजरात का रहनेवाला एक अंत्यज अलाउद्दीन खिलजी के एकमात्र, शाहजादे मुबारक के नाम पर, दिल्ली का शासन चलाने लगा!

इसी खुसरू खाँ के पास वीर वल्लाल का युवराज बंदी बन कर आया

था और दिल्ली की नाममात्र की आधीनता की शर्त पर खुशरू खाँ गुजराती ने कर्नाटक देश के होयसल यादवराज वीर वल्लाल को वंधन-मुक्त कर दिया था।

ऐसी-ऐसी अनेक विकट-आँधियाँ आई थीं दक्षिण में। जिनमें वीरों के वीरत्व और सतियों के सतीत्व की परीक्षा हुई थी।

इस घोर आंधी के प्रहार से दक्षिण के छोटे-वड़े राज्यों और जागीरदारों में से, केवल तीन राज्य हिन्दुत्व की आड़ में अव तक वच रहे थे। किन्तु इन तीनों के काले कपाल पर, यवनों से पराजित होने का कलंक लगा हुआ था। दिल्ली की सामन्ती स्वीकार करके, तीनों निष्कंटक हो गये थे। ये तीनों दिल्ली के नामधारी सामन्त थे। अवसर आये, और दिल्ली सल्तनत के वख्तर की कड़ियाँ कुछ ढीली नज़र आएँ, तो ये तावेदारी का सेहरा उतार कर फेंक देनेवाले थे।

ये तीनों सामन्त थे—वारंगल, काम्पिली और कर्नाटक के अधीश्वर। वारंगल में प्रतापरुद्र काकतीय राज्य करता था। काम्पिली में काम्पिलीदेव का शासन था और कर्नाटक में वीर वल्लाल तृतीय सिंहासनासीन था। तीनों, समय मिलते ही स्वाधीन हो जाने की कामनाएं, अपने-अपने मन में, लिए वैठे थे।

परन्तु इस घनघोर आँधी में भी, जव कि पांड्यों के महाधाम मदुरा में पांड्यपुरदेव के महामन्दिर में म्लेच्छों का सूवा रहता था, तव भी, पांड्यनायकों ने राज्य—राज्य तो क्या अपनी-अपनी जागीरें वचाने के लिए, और जागीरें तो क्या अपनी प्राणरक्षा के लिए भी अपना सिर नहीं झुकाया था। मदुरा के सूवा जलालुद्दीन ने डोंडी पिटवाकर घोषित किया था कि दिल्ली से सहायक सेना आने पर, वह एक एक पांड्यनायक को पकड़ कर कत्ल कर डालेगा और उनकी खोपड़ियों से मदुरा में मीनारें चुनवा देगा, लेकिन इस धमकी का भी कुछ असर न हुआ और एक भी पांड्य सिर झुकाने या कोर्निश वजाने के लिए तैयार न हुआ, न ही शाही दरवार तक गया! इसमें शंका के लिए कोई स्थान नहीं था कि मूल द्राविड़—अनार्य, भगवान्

अगस्त्य मुनि के सम्पर्क से अपनी अनार्य रूढ़ि-रीतियाँ छोड़ चुके थे। और आर्यत्व के रंग मे अपनापा रँग चुके थे, तथापि उनका मूल रूप-स्वरूप वैसा ही था। वे अब भी भूत जैसे ही थे। और पूजा भी भगवान् भूतनाथ की ही करते थे। आकार-प्रकार हीन, अनगढ़ कोई एक पत्थर उठा लेते और उसकी पूजा करते, उसे भगवान् मानते!

यदि भगवान् है, तो उसके हाथ-पैर और सिर भी होने चाहिए। उसका रूप-रंग, आकार-प्रकार मनुष्य से कुछ बढ़ कर ही होना चाहिए—दो सिर हों, चार हाथ हों, आठ हाथ हों, तो और भी अच्छा, लेकिन मनुष्य से तो कुछ अधिक और विशेष ही होना चाहिए। और यह तो कुछ नहीं, चंदन नही, लेप नहीं, शृंगार नही, सुगंध नही, धूप-दीप नहीं, कुछ भी नही? अरे मनुष्य जैसा मनुष्य भी सुखी होता है। किसी राज्य का राजा होता है कोई, तो उसके भी चार-पांच रानियाँ होती हैं, बैठने के लिए सिंहासन होता है, सिर पर मुकुट होता है, अपने-योग्य सेवक होते हैं, रत्नजड़ित मुकुटवाले सामन्तों के शीश उसके सम्मुख झुकते हैं। और खानपान के लिए अनन्त भण्डार भरपूर भरे रहते हैं। लेकिन, ये तमिल— जिनका भगवान् ही भूत जैसा है, स्वयं भी भूत जैसे क्यो न हो?

भगवान् कृष्णचन्द्र व्यंकटेश, पूर्णपुरुषोत्तम, गीता का संदेश सुनानेवाले राजराजेश्वर को छोडकर श्मशानवासी, पशुओं का चर्मधारण करनेवाले, भभूत रमानेवाले शकर की जो उपासना करते हैं, उनके पास दूसरा क्या हो सकता है।

फिर, ऊँट के कूबड़ पर बैठने पर जैसा हाल होता है, वैसा ही इनका हाल हुआ—इन भूतों को गुरु भी भूत जैसा मिला। बसव नामक एक व्यक्ति ने शैवसम्प्रदाय को नया सूत्र दिया—वीर शैव का—लिंगायत शाखा का। उसने कहा—'बस शकर के अतिरिक्त दूसरा कोई परमेश्वर नहीं। वेद-पुराण स्मृति शास्त्र—ये सब तो ब्राह्मणों का, पेट भरने का पाखण्ड है। मूर्ति-मंदिर केवल श्रीमंतों की सम्पत्ति के प्रदर्शन और पुजारी की कमाई के साधनमात्र हैं। शंकर के श्मशान दरबार में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र—सभी एक हैं, एक समान हैं। सभी एक थाली में खा सकते

हैं। खाना भी चाहिए। सामाजिक व्यवहार, जन्म-मरण, शादी-व्याह आदि में जाति-पाति का भेद व्यर्थ है'—वसव ने ऐसा ही वहुत कुछ इन्हें सुनाया, समझाया। शिष्य भूत-जैसे तो थे ही, भूत-जैसे गुरु की वाणी ग्रहण करने में कुशाग्रबुद्धि सिद्ध हुए, सो, ये तो म्लेच्छों से भी अधिक भ्रष्ट माने गये !

म्लेच्छों की वात तो स्पष्ट है कि वे म्लेच्छ हैं परन्तु ये तो वर्ग-समाज में वर्ण-संकरता का प्रचार करते हैं और स्मृति-पुराणों की आज्ञाओं की अवहेलना करते हैं। पराया वेटा विगड़ता है तो उसे कुछ दोष नहीं दे सकते, वुरा मान लिया जाता है। और कहते हैं—वुरे से भूत भी भागते हैं। यह सोच कर उस विगड़ैल से दूर भी रहा जा सकता है। लेकिन अपने ही घर में पूत-कपूत वन जाए तो काम कैसे चल सकता है ?

अतएव गत जन्माष्टमी के सर्वावसर पर कर्नाटक देश के परम भागवत ने गुरुवर वेदान्तदेशिक व्यंकटनाथ के सम्मुख व्यंकटेश भगवान् को साक्षी रखकर कहा था—'यदि मैं आगामी जन्माष्टमी के दिन तक, मदुरा के पांड्यनायक प्रमुख सोमैया के हाथ-पैरों में वेड़ियाँ डालकर व्यंकटेश के देवमंदिर में उपस्थित करके, भगवान् श्रीकृष्ण के चरणारविन्द में उसका शीश न झुका दूँ तो, कर्नाटक देश का यदुकुलतिलक—मैं, वीर वल्लाल जीवित ही अग्नि में प्रवेश करूँ।'

भयंकर यह प्रतिज्ञा थी, परन्तु वैष्णव सम्प्रदाय की लाभवृद्धि में समर्थ थी। ऐसी प्रतिज्ञा सुन कर घवरा जाएँ या प्रकम्पित हों—ऐसे न थे राजगुरु वेदान्तदेशिक महाराज ! उन्होंने महाराज वल्लाल के यश की कामना की, आशीर्वाद दिया, विजय के लिए प्रार्थना की और प्रतिज्ञा की पूर्णाहुति की सफलता के हेतु महाविष्णु यज्ञ करने का संकेत दिया।

इस प्रकार के आंतरिक संगर में म्लेच्छ सूवा अपने सामंतों पर अपनी कोई आज्ञा नहीं लादता था। इस्लाम में कोई मतभेद या मनमुटाव नहीं था और इस संवंध में, पारस्परिक जाति-पाँति या सम्प्रदाय के मतभेद और मनमुटाव से रहित इस्लामी समुदाय की वरावरी कर सकें या उससे भी चार कदम आगे वढ़ें, ऐसे वीर-शैव-धर्म के सुदृढ़ सूत्र-समान पांड्य-नायकों का विनाश हो, इसमें, परिणामतः सूवा का लाभ ही था।

म्लेच्छों के दोनों हाथों में लड्डू थे। या तो पांड्य नष्ट होंगे या होयसल पराभूत होगा। इसलिए देवगिरि के सूबा ने होयसलराज तृतीय बल्लाल को पांड्यों की ओर संकेत दिया और अपनी नजर वारंगल की ओर दौड़ाई।

वारंगल में प्रतापरुद्र काकतीय शासन करता था। वह भी शैव सम्प्रदाय का भक्त एवं अनुयायी था। उस समय दिल्ली में गयासुद्दीन तुग़लक का शासन था और उसका पुत्र मलिक उलूग खाँ वारंगल का सूबा था।

इसलिए उसने सारा वर्ष वारंगल के विरुद्ध लगाया और वीर बल्लाल की गज-सेना, अश्व-सेना और पैदल सेना तमिल प्रदेश के नायकों पर टूट पड़ी।

परन्तु पांड्य सोमैया उसके हाथ नहीं आया। अपितु एक दो बार वीर बल्लाल उसके हाथ लगते-लगते कठिनाई से बच पाया। बड़ी-भारी सेनायें होते हुए भी वीर बल्लाल कावेरी पार न कर सका, कर ही नहीं पाया।

वीर बल्लाल अपमान से बच गया पर उसे हानि की भीति हुई। उसने समझा था कि पांड्य सोमैया डर जायेगा। हार मान लेगा। कर्नाटक के राजा को प्रसन्न करने के लिये, सम्मुख आकर, व्यंकटेश के मंदिर में गिर गिड़गिड़ाएगा, परन्तु ऐसा कुछ भी नहीं हुआ। सोमैया शेर की भाँति फिरने लगा। "तमिल का सिंह" भागे नहीं, इसके शिकार से वीर बल्लाल घबराकर पीछे नहीं फिरे, इस उद्देश्य से कभी-कभी वेदान्तदेशिक सेना में आते जाते रहते। एक बार तो राजगुरु ने कावेरी तट पर, विष्णु यज्ञ भी किया था।

जैसे-जैसे समय बीतता गया। शुरू-शुरू में बहुत सरल दिखलाई देनेवाला कार्य कठिन से कठिनतर होता गया। उसी मात्रा में वीर बल्लाल का रोष भी बढ़ता गया। वेदान्तदेशिक महाराज की नजर भी इतनी पैनी थी कि शेर का शिकार खाली चला जाय, यह नहीं हो सकता था।

"मेरे पूर्वज सालराजा ने द्वारिका से आकर, यादवपल्ली में, दोरा समुद्र से भागकर आनेवाले यादवों का राज्य स्थापित किया। तब भयंकर साँप इस वनदेश में खुले घूमते थे। और शेरों के कारण, मनुष्यों का वास असम्भव था। तब सालराजा ने जगह-जगह घूम-फिर कर अपने हाथ से

एक-एक सिंह का शिकार किया। इसी कारणवश हमारा वंश बाघमारशल--होयसल कहलाता है।" होयसल राजा अपनी रानी लक्ष्मी के सामने होंठ चबा-चबाकर कहता और रानी उसे समझाकर रास्ते पर ले आती।

रात्रि में मझरात में भी बल्लाल सोमैया को नहीं भूलता था, भूल ही नही सकता था। भरी नींद में चीखकर जाग उठता!

"मेरे कई पूर्वजों ने सिंह का शिकार किया है। मैं यदि तमिल सिंह को जीवित न पकड़ूं तो मेरा नाम वीर बल्लाल नहीं।"

जब रानी पति को जगाकर स्वस्थ करने का प्रयत्न करती, तो बल्लाल कहता—"यह केवल मेरा ही अपमान नहीं परन्तु व्यंकटेश का भी अपमान है। और कोई मनुष्य भले वह तमिल सिंह ही हो, मेरे कुलदेव का अपमान करे, यह मैं कैसे सहन कर सकता हूँ?"

कर्नाटक का पैसा पानी की तरह बहाया गया। कर्नाटक की शक्ति बेहिसाब खर्च होने पर भी, सोमैया व्यंकटेश के दर्शनार्थ नहीं आया। हजारों हाथी या हजारों घोड़ों की शक्ति भी एक व्यक्ति को अपनी ओर न ला सकी।

व्यंकटेश के प्रति वीर बल्लाल की इतनी भक्ति थी कि उसने यह कठोर प्रतिज्ञा की थी, किन्तु व्यंकटेश के प्रति उसके मन में सदैव ऐसी भक्ति रही है। सो बात भी नहीं।

कुछ ही वर्ष पूर्व वीर बल्लाल यह, जैन-धर्म—वीरशासन का अनुयायी था। उसके राजप्रासाद और राजदरबार में जैन मुनि और सूरि आते। उसके राजकवियों में जैन कवि थे, जिनमें क्षेमेन्दु जैसे कवि शिरोमणि भी थे। क्षेमेन्दु वीर बल्लाल के निवेदन पर नेमिनाथ चरित्र लिख रहे थे। उस समय समर्थ कवि विद्यानाथ राजकवि की उपाधि से विभूषित थे।

क्षेमेन्दु विद्वान थे, जैन थे। पेथडशाह कर्नाटक जैन-संघ के विद्वान अग्रणी थे। इसके अतिरिक्त कर्नाटक के राजा के यहाँ यदा-कदा देवगिरि के सहजसिंह भी आते।

सहजसिंह जैन थे। और बड़ी पहुँच के आदमी थे। उनके छोटे भाई समरसिंह सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी, सुल्तान कुतुबुद्दीन मुबारक, सुल्तान

गयासुद्दीन तुगलक आदि के मित्र थे। वीर बल्लाल को दिल्ली के सुल्तान के बन्दीगृह से छुड़वाने मे, बल्लाल के पुत्र को समरसिंह ने काफी सहायता दी थी। ऐसे समरसिंह के बड़े भाई सहजसिंह ने अपने वाणी वैभव के कारण देवगिरि के यादवराज रामदेव से 'कर्पुरधारा प्रवाह' की उपाधि प्राप्त की थी। ऐसे-ऐसे जैनमुनि, आचार्य और कविश्रेष्ठ कर्नाटक के राज दरबार में आते और सहधर्मी के रूप मे मान-पान और समादर पाते।

इन सब सभ्यों, सदस्यों और अतिथियों मे कवि क्षेमेन्दु प्रमुख थे। और वही वीर बल्लाल के सतत सम्पर्क मे रहते। उनके उपदेश से प्रभावित होकर वीर बल्लाल देव कर्नाटक देश मे अहिंसापालन-उद्घोषणा प्रसारित करने के प्रस्ताव पर विचार कर रहा था।

उन्हीं दिनों वीर बल्लाल ने सुना कि वेदान्तदेशिक महाराज ने यादवकुल का इतिहास-ग्रंथ लिखा है। जब इस ग्रंथ के कुछ अंश और भगवान् कृष्ण के चरित्र का वर्णन उसने सुना तो वह मुग्ध रह गया। उसे यह ध्यान आया कि वह स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण का वंशज है और उसे विष्णु-अवतार के वंशज रूप मे विष्णु की ही पूजा करनी चाहिए। बस, अब क्या था, जैनों की विदाई शुरू हुई। मुनियों और सूरियों का सम्मान बन्द हुआ। विद्वानों और श्रेष्ठियों के निमन्त्रण रुक गए। कवियो के वर्षासन बन्द हुए। और क्षेमेन्दु का नेमिनाथ चरित्र अपूर्ण रह गया। और वीर बल्लाल व्यकटेश का भक्त बन गया।

इस नई भक्ति का नया रंग वीर बल्लाल पर कुछ इस तरह चढ़ा कि लोग उसे 'आल्वार' यानी 'भक्त' कहने लगे। व्यकटेश की महिमा ही उसकी अपनी महिमा है और उसकी अपनी महिमा व्यकटेश की महिमा भी हो सकती, यह सब अन्तर देखने-परखने का उसे समय ही न मिला।

दिन पर दिन बीते। दिन सप्ताह बने, सप्ताह मास बन गए, मास महीनों में से ऋतुएँ उत्पन्न हुईं और एक ऋतु दूसरी ऋतु बन गई किन्तु पांड्य-

नायक सोमैया न तो किसी युद्ध में पराजित हुआ, न जीवित या मृत ही हाथ आया।

और अम्बर में आषाढ़ गर्जना करने लगा।

आकाश में मेघगर्जना हुई और वेदान्तदेशिक महाराज ने महाकवि कालिदास का मेघदूत सुना। और स्वयं वे भी हंसदूत नामक काव्य लिखने-बैठे।

लेकिन इस आषाढ़ी गर्जन का वीर बल्लाल पर कुछ और ही असर हुआ। चौमासा आगे बढ़ा। जलधाराएँ बरसने लगीं। अब तो वेन, कावेरी और ताम्रपर्णी अपने दोनों किनारे छलका कर बहेंगी। उनके पचीस-तीस हाथ ऊँचे-ऊँचे कगार और उन्हें पानी देनेवाले सैकड़ों नाले बढ़-बढ़ कर बहेंगे। लेकिन इन धाराओं में हाथियों के जूथ के जूथ खड़े रह जाएँ फिर भी सोमैया तो हाथ न ही आएगा। अब कोई सेना कावेरी के पार नहीं जा सकती। और यदि कोई पार उतरने का प्रयत्न भी करे तो नदी नालों के जाल में उलझ जाए और उस पार पहुँचने पर तो पांड्य उसे जीवित लौटने ही न दें। इन भूतों का क्या पूछना ! यदि सेना संकट-ग्रस्त हो, तो ये उस पर दया दिखलाएँ ऐसे नहीं थे।

अब वेदान्तदेशिक महाराज का चेहरा गंभीर हो गया।

अब राजमहल की रानियों के मुखमंडल गम्भीर हो गये। अब राज-दरबार में आने वालों की मुखमुद्राएँ भी गम्भीर हुईं। अब आकाश के गर्जन-तर्जन में यदुकुल भूषण राजपुरुष की प्रतिज्ञा की कड़क-धड़क सुनाई देने लगी।

आषाढ़ के दिन पर दिन बीतने लगे। राजा सचमुच ही प्रतिज्ञा का पालन करेगा या नहीं ? और न तो क्या अग्नि में प्रवेश करेगा ? जीवित अग्नि-प्रवेश करेगा तो, चन्दन की लकड़ी लाई जायेगी या बबूल की ? कहीं-कहीं इन्हीं बातों की चर्चा होने लगी। बुद्धिमान् लोग उतावली में प्रतिज्ञा करने के हानिकारक परिणामों का विवेचन करते। वातावरण में, समझ में न आने वाली एक असह्य प्रतीक्षा, लगभग असह्य प्रतियोगिता-सी, फैलने लगी। एक दिन भयकातर रानी ने दोनों हाथ जोड़कर अपने स्वामी से कहा :

"नाथ ! नारी की बुद्धि जलवत् चंचल है, ऐसा आपने कई बार कहा है। स्त्री-जाति को राज-काज या लड़ाई के बारे में कुछ भी समझ में नही आ सकता। यह भी आपने मुझे कई बार कहा है। फिर भी, हाथ जोड़कर मैं आपसे एक बात कहूँ ?"

"कहो !"

"नाथ, सम्भव है आपको मेरी बात पसन्द न आये परन्तु जहाँ तक मेरी बुद्धि पहुँचती है, उतनी बात मैं कहती हूँ......

सम्भव है, रानी की बात से भीष्मप्रतिज्ञा का यह कठोर सागर पार किया जा सके, यह मान लेने की सीमा तक, यह हठी यादवराज आ चुका था !"

"तुम्हारे मन मे क्या बात है, एक बार खुल कर कह दो !"

"नाथ ! संगमराय को तो बुलाइए।"

"क्या कहा ?" वीर बल्लाल झल्ला कर, उठ खड़ा हुआ, तू मेरी रानी है या कुछ और ? तेरी जीभ......"

"नाथ, क्रोध को दूर कीजिए। जरा शांति से विचार कीजिए। मेरी एक बात मानें। पूरी एक घडी तक न तो मैं कुछ बोलू। न ही आप कुछ बोलिए। बाद मे, आपको जो उचित लगे, वही मुझे कहिएगा।"

और महल का द्वार बंद करके, रानी बाहर निकल गई।

रानी के शब्दो ने वीर बल्लाल के हृदय मे जो विष घोल दिया था, उसे पचाने के लिये मंथन करता हुआ, वह वीर जिस आसन पर बैठा था उसी आसन पर स्थिर बैठा रहा। यदि जैन धर्म पालन करने वाला होता तो उसकी दशा देख कर कहा जाता कि उसने जैन-समाधि धारण की है।

रानी अपने मन में क्या समझती है ? संगमराय को बुलवाऊँ ? मैं बुलवाऊँ ? प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए उसका सहारा माँगूँ ? अरे, इसकी अपेक्षा तो, यही क्या बुरा है कि मैं जीवित ही अग्नि प्रवेश करूँ ? जब म्लेच्छों के हाथों मेरा पराजय हुआ, तब उनके हाथों में जीवित पकड़े जाने के बदले लड़ते-लड़ते मर जाना होगा और यदि युद्ध मे न मर सका तो, विषपान करना होगा। इस अनुमान से मैंने हलाहल विषकूट अपनी अँगूठी

नायक सोमैया न तो किसी युद्ध में पराजित हुआ, न जीवित या मृत ही हाथ आया।

और अम्बर में आषाढ़ गर्जना करने लगा।

आकाश में मेघगर्जना हुई और वेदान्तदेशिक महाराज ने महाकवि कालिदास का मेघदूत सुना। और स्वयं वे भी हंसदूत नामक काव्य लिखने-बैठे।

लेकिन इस आषाढ़ी गर्जन का वीर बल्लाल पर कुछ और ही असर हुआ। चौमासा आगे बढ़ा। जलधाराएँ बरसने लगीं। अब तो वेन, कावेरी और ताम्रपर्णी अपने दोनों किनारे छलका कर बहेंगी। उनके पचीस-तीस हाथ ऊँचे-ऊँचे कगार और उन्हें पानी देनेवाले सैकड़ों नाले बढ़-बढ़ कर बहेंगे। लेकिन इन धाराओं में हाथियों के जूथ के जूथ खड़े रह जाएं फिर भी सोमैया तो हाथ न ही आएगा। अब कोई सेना कावेरी के पार नहीं जा सकती। और यदि कोई पार उतरने का प्रयत्न भी करे तो नदी नालों के जाल में उलझ जाए और उस पार पहुँचने पर तो पांड्य उसे जीवित लौटने ही न दें। इन भूतों का क्या पूछना! यदि सेना संकट-ग्रस्त हो, तो ये उस पर दया दिखलाएँ ऐसे नहीं थे।

अब वेदान्तदेशिक महाराज का चेहरा गंभीर हो गया।

अब राजमहल की रानियों के मुखमंडल गम्भीर हो गये। अब राज-दरबार में आने वालों की मुखमुद्राएँ भी गम्भीर हुईं। अब आकाश के गर्जन-तर्जन में यदुकुल भूषण राजपुरुष की प्रतिज्ञा की कड़क-धड़क सुनाई देने लगी।

आषाढ़ के दिन पर दिन बीतने लगे। राजा सचमुच ही प्रतिज्ञा का पालन करेगा या नहीं? और न तो क्या अग्नि में प्रवेश करेगा? जीवित अग्नि-प्रवेश करेगा तो, चन्दन की लकड़ी लाई जायेगी या बबूल की? कहीं-कहीं इन्हीं बातों की चर्चा होने लगी। बुद्धिमान् लोग उतावली में प्रतिज्ञा करने के हानिकारक परिणामों का विवेचन करते। वातावरण में, समझ में न आने वाली एक असह्य प्रतीक्षा, लगभग असह्य प्रतियोगिता-सी, फैलने लगी। एक दिन भयकातर रानी ने दोनों हाथ जोड़कर अपने स्वामी से कहा :

"नाथ ! नारी की बुद्धि जलवत् चंचल है, ऐसा आपने कई बार कहा है। स्त्री-जाति को राज-काज या लड़ाई के बारे में कुछ भी समझ में नही आ सकता। यह भी आपने मुझे कई बार कहा है। फिर भी, हाथ जोड़-कर मैं आपसे एक बात कहूँ ?"

"कहो !"

"नाथ, सम्भव है आपको मेरी बात पसन्द न आये परन्तु जहाँ तक मेरी बुद्धि पहुँचती है, उतनी बात मैं कहती हूँ......

सम्भव है, रानी की बात से भीष्मप्रतिज्ञा का यह कठोर सागर पार किया जा सके, यह मान लेने की सीमा तक, यह हठी यादवराज आ चुका था !"

"तुम्हारे मन मे क्या बात है, एक बार खुल कर कह दो !"

"नाथ ! संगमराय को तो बुलाइए।"

"क्या कहा ?" वीर बल्लाल झल्ला कर, उठ खड़ा हुआ, तू मेरी रानी है या कुछ और ? तेरी जीभ......"

"नाथ, क्रोध को दूर कीजिए। जरा शांति से विचार कीजिए। मेरी एक बात मानें। पूरी एक घड़ी तक न तो मैं कुछ बोलूं। न ही आप कुछ बोलिए। बाद मे, आपको जो उचित लगे, वही मुझे कहिएगा।"

और महल का द्वार बंद करके, रानी बाहर निकल गई।

रानी के शब्दों ने वीर बल्लाल के हृदय मे जो विष घोल दिया था, उसे पचाने के लिये मंथन करता हुआ, वह वीर जिस आसन पर बैठा था उसी आसन पर स्थिर बैठा रहा। यदि जैन धर्म पालन करने वाला होता तो उसकी दशा देख कर कहा जाता कि उसने जैन-समाधि धारण की है।

रानी अपने मन मे क्या समझती है ? संगमराय को बुलवाऊँ ? मैं बुलवाऊँ ? प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए उसका सहारा माँगूं ? अरे, इसकी अपेक्षा तो, यही क्या बुरा है कि मैं जीवित ही अग्नि प्रवेश करूँ ? जब म्लेच्छों के हाथों मेरा पराजय हुआ, तब उनके हाथों मे जीवित पकड़े जाने के बदले लड़ते-लड़ते मर जाना होगा और यदि युद्ध में न मर सका तो, विषपान करना होगा। इस अनुमान से मैंने हलाहल विषकूट अपनी अँगूठी

में रखा था, मैं पराजित हुआ, जीवित पकड़ा गया, बरसों तक बंदी रहा तो भी इस हलाहल का उपयोग मैंने नहीं किया। अब मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिये—चिता जलाकर हलाहल पान करके, बलि हो जाना क्या बुरा है।

चक्रवर्ती होने की मेरी महत्वाकांक्षा! सात राजाओं को परास्त कर, उनके सात मुकुटों की वरमाला पहनने वाला चक्रवर्ती कहलाता है। मेरे पास उदयगिरि, चन्द्रगिरि, पेनुकोंडा तथा काम्पिली के चार मुकुट हैं। एक पांड्य सोमैया का......पांच......पांच......पांच.......और वारंगल पर मुसलमान सूबा उलूग़ खाँ ने आक्रमण किया है। प्रतापरुद्र उसमें उलझा हुआ है—अब उसके राज्य पर आक्रमण करके, उसे अपने राज्य में मिला लेना होगा, यों छः...छः...छः...छः...

और तिरुपतिभलाई का कृष्णाजी नायक...सात...सात... सात... फिर तो मैं चक्रवर्ती-वीर! वीर वल्लाल देव, कृष्णा नदी से कन्याकुमारी तक के प्रदेश का राजा......सात नदियों और तीन समुद्रों का राजा...चक्रवर्ती वल्लाल.......

सपना.......सपना। यह स्वप्न अधूरा रहेगा और एक महीने बाद...

संगम को बुलाऊँ? मैं बुलाऊँ तो क्या वह आयेगा? आये भी, तो क्या मेरी मदद करेगा? रानी की एक बात तो सच है: मेरी प्रतिज्ञा की पूर्ति में, मेरी महत्वाकांक्षा के सपनों को नष्ट न होने देने में, यदि कोई सहारा दे सकता है तो......परन्तु......

वीर वल्लाल ने घंटे पर प्रहार किया।

"कृपानाथ!" नीचा झुक कर, दोनों हाथों से नमस्कार करता, द्वारपाल उपस्थित हुआ।

"दण्डनायक श्रीकण्ठ से कहो यदुकुलभूषण याद करते हैं!"

"अन्नदाता! दण्डनायक श्रीकण्ठ सभाभवन में आपको प्रणाम करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं!"

"उन्हें भेजो!"

थोड़ी देर में दण्डनायक श्रीकण्ठ आया। वह कद में ऊँचा था, पर सूखी लकड़ी-सा शरीर! और नाड़ियों का जीवित ढाँचा खड़ा हो, ऐसा लगता था। उसके दाहिने गाल पर तलवार का घाव था। घाव तो कभी का भरा जा चुका था, परन्तु उसकी वीरता की साक्षी देता गुलाबी रंग का एक दाग पड गया था। आते ही कमर तक ज़रा झुक कर, उसने होयसलराज को नमस्कार किया।

"दण्डनायक।" होयसलराज ने आज्ञा दी, "तुम जाओ और कसाद दुर्ग की कोठरी में राजवंदी को उपस्थित करो। दुर्गपाल को मेरी यह मुद्रा देना, ताकि वह राजवंदी तुम्हें सौंप दें। उसे आज ही मेरे पास उपस्थित करो।"

में रखा था, मैं पराजित हुआ, जीवित पकड़ा गया, वरसों तक वंदी रहा तो भी इस हलाहल का उपयोग मैंने नहीं किया। अब मुझे अपनी प्रतिज्ञा पूरी करनी चाहिये—चिता जलाकर हलाहल पान करके, वलि हो जाना क्या वुरा है।

चक्रवर्ती होने की मेरी महत्वाकांक्षा! सात राजाओं को परास्त कर, उनके सात मुकुटों की वरमाला पहनने वाला चक्रवर्ती कहलाता है। मेरे पास उदयगिरि, चन्द्रगिरि, पेनुकोंडा तथा काम्पिली के चार मुकुट हैं। एक पांडच सोमैया का......पांच......पांच......पांच......और वारंगल पर मुसलमान सूवा उलूग़ खाँ ने आक्रमण किया है। प्रतापरुद्र उसमें उलझा हुआ है—अव उसके राज्य पर आक्रमण करके, उसे अपने राज्य में मिला लेना होगा, यों छः...छः...छः...छः...

और तिरुपतिमलाई का कृष्णाजी नायक...सात...सात... सात... फिर तो मैं चक्रवर्ती-वीर! वीर वल्लाल देव, कृष्णा नदी से कन्याकुमारी तक के प्रदेश का राजा......सात नदियों और तीन समुद्रों का राजा...चक्रवर्ती वल्लाल.......

सपना.......सपना। यह स्वप्न अधूरा रहेगा और एक महीने वाद...

संगम को वुलाऊँ? मैं वुलाऊँ तो क्या वह आयेगा? आये भी, तो क्या मेरी मदद करेगा? रानी की एक वात तो सच है: मेरी प्रतिज्ञा की पूर्ति में, मेरी महत्वाकांक्षा के सपनों को नष्ट न होने देने में, यदि कोई सहारा दे सकता है तो......परन्तु......

वीर वल्लाल ने घंटे पर प्रहार किया।

"कृपानाथ!" नीचा झुक कर, दोनों हाथों से नमस्कार करता, द्वारपाल उपस्थित हुआ।

"दण्डनायक श्रीकण्ठ से कहो यदुकुलभूषण याद करते हैं!"

"अन्नदाता! दण्डनायक श्रीकण्ठ सभाभवन में आपको प्रणाम करने की प्रतीक्षा कर रहे हैं!"

"उन्हें भेजो!"

थोड़ी देर में दण्डनायक श्रीकण्ठ आया। वह क़द में ऊँचा था, पर सूखी लकड़ी-सा शरीर! और नाड़ियों का जीवित ढाँचा खड़ा हो, ऐसा लगता था। उसके दाहिने गाल पर तलवार का घाव था। घाव तो कभी का भरा जा चुका था, परन्तु उसकी वीरता की साक्षी देता गुलाबी रंग का एक दाग पड़ गया था। आते ही कमर तक ज़रा झुक कर, उसने होयसलराज को नमस्कार किया।

"दण्डनायक।" होयसलराज ने आज्ञा दी, "तुम जाओ और कसाद दुर्ग की कोठरी में राजबंदी को उपस्थित करो। दुर्गपाल को मेरी यह मुद्रा देना, ताकि वह राजबंदी तुम्हें सौंप दें। उसे आज ही मेरे पास उपस्थित करो।"

२ : संगमराय

कसाद दुर्ग दोरा समुद्र के आँचल पर था। प्राचीन काल में यह किसी राजा का राजमहल था। किन्तु अब इसका उपयोग राजा के निजी दुर्ग के रूप में होता था। पर्वत की गोद में घनी गहरी गुफाएँ और सुरंगें थीं, जिनमें राजा की सम्पदा रखी जाती थी और उसकी कोपदृष्टि के शिकार राजबन्दी भी रखे जाते थे। राजा का अपना व्यक्ति इसका दुर्गपाल नियुक्त होता। राजा के अंग और तरंग दोनों का अनन्य स्वामिभक्त ही दुर्गपाल बन सकता था। ऐसे व्यक्ति के अतिरिक्त राजा किसी का शासन स्वीकार नहीं करता। राजा जब स्वयं दुर्ग पर न जा पाता, तो उसका संदेशवाहक किसी भी द्वार तक राजमुद्रा लेकर पहुँच जाता।

राजबन्दी को लेकर श्रीकण्ठ शीघ्र ही लौट आया। सभाभवन में होयसलराज वीर बल्लालदेव उसकी राह देख रहे थे। राजसिंहासन से दूर, सभाभवन की एक खिड़की से बाहर दृष्टि डालती हुई, रानी लक्ष्मीबाई पीठ फेर कर खड़ी थी।

राजबन्दी क़द में छोटा था परन्तु उसका शरीर भरापूरा था। उसके मुख पर केश बढ़ आए थे। उसकी वेशभूषा जीर्णशीर्ण थी। वजनदार बेड़ियों के कारण उसकी पिंडलियों और कलाइयों में घाव पड़ गए थे।

'आइए संगमराय!' होयसलराज ने कहा—'बहुत दिनों बाद मैंने आपको देखा।'

'यह आपकी कृपा थी मुझ पर।' मोटे, गहरे और तनिक तिरछे स्वर में संगमराय बोला। सुनकर होयसलराज की भौंहें चढ़ गई। प्रलंब शासन-काल के कारण होयसलराज का स्वभाव बन गया था कि सम्मुख उपस्थित व्यक्ति अपनी वाणी में विनम्रता दिखलाए। किन्तु इस बन्दी की वाणी में न था विनय और न थी विनम्रता। धरती पर प्रत्यक्ष-देवता के समान, दक्षिणापथ के चक्रवर्ती-जैसे अधीश्वर के सामने जो व्यावहारिक विनम्रता रखी जानी चाहिए, वह भी इस बन्दी मे न थी।

राजा की भौंहें तनिक चढ़ी तो तलवार की मूठ पर हाथ धरता श्रीकंठ दो कदम आगे बढ़ा। लेकिन राजबन्दी उसकी ओर तिरस्कारपूर्वक देखता रहा। अंगुलिनिर्देश-द्वारा महाराज ने श्रीकंठ को बाहर जाने का संकेत दिया। श्रीकंठ बाहर चला गया।

होयसलराज ने कहा—"संगम....संगमराय, मैंने तुम्हें क्षमा करने का विचार किया है।"

"मैंने कोई अपराध नहीं किया, इसलिए आप मुझे क्षमा करें या न करें—मेरे लिए समान है।"

होयसलराज चिढ़ गया। वह तो क्षमादान दे और बारह-बारह वर्ष से कसाद दुर्ग के अंधकार में एकान्त राजदण्ड काटनेवाला राजबन्दी, उस उदारतामयी क्षमा को अस्वीकार करे! अरे, कर्नाटक देश में बसनेवाले इस प्राणी के क्या दो सिर हैं?

"अपराध नहीं किया? तुमने अपराध नहीं किया? तब, तुम यह कहना चाहते हो कि मैंने तुम्हें बिना किसी अपराध के ही बन्दी बनाया? मैंने अन्याय किया? और तुम उसकी पुकार मचा रहे हो,"

"मैंने अपराध नहीं किया — इतना ही मैं जानता हूँ। शेष अपनी बात आप जानें।"

"याद करो संगम! अपना अपराध याद करो।"

"मैंने आपका अन्न नहीं खाया, राजन्! इसलिए आपके अनुकूल स्मृति मुझमें नहीं रही।"

"अब भी उद्दंडता! अब भी तुम्हारी उच्छृंखलता न गई। एक बार

तुम्हारे पाप, तुम्हारी उच्छृंखलता और तुम्हारे अविनय के कारण, अवसर आ गया था कि मैं कर्नाटक का राज खो दूं, क्या यह तुम्हें याद नहीं ?"

"मुझे याद है राजन्, दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी के सिपह-सालार मलिक काफूर ने कर्नाटक पर आक्रमण किया था। आपने उसका सामना किया और उससे युद्ध किया। उस समय आपके आदेश को जिस प्रकार अन्य सामन्तों ने स्वीकार किया उस प्रकार मैंने भी किया। वारकर स्थान पर आपने उससे पहली लड़ाई लड़ी। लेकिन भाग्य ने म्लेच्छों का साथ दिया। म्लेच्छों ने दोरा समुद्र पर घेरा डाला। लेकिन उस समय आपके रणकौशल के कारण, वह कठिनाई में पड़ गए और उसने शर्तें रखीं आप यदि दिल्ली के मातहत रहना स्वीकार करें और उसे नियमित रूप से राजकर देते रहें तो वह सन्धि के लिए तैयार है।" राजवन्दी के द्वारा पुरानी वातों का यह उल्लेख होयसलराज को पसन्द आया, किन्तु सत्य-तथ्य से वह इनकार न कर सका। दाँत पीसकर, भाल पर तीन-तीन रेखाएँ चढ़ाकर राजवन्दी को देखता रह गया। यदि उसकी आँखों में कोई भस्मक शक्ति होती तो अवश्य वह राजवन्दी को नहीं तो, उसकी स्मृति को भस्मसात कर देता।

होयसलराज की आँखों में रोष था। चेहरे पर चिढ़ थी और उनके भावों से, तिरस्कार स्पष्टतया व्यक्त था। परन्तु, इन सब की चिन्ता किए-विना राजवन्दी आगे कहने लगा—

"सभी सामंतों ने म्लेच्छ सिपहसालार के पैरों में अपने-अपने शस्त्र चढ़ा देने का निर्णय किया।"

"और इस निर्णय की तुमने अवमानना की।" होयसलराज को अब यह पुराने संस्मरण अच्छे न लगते थे। उसके हृदय में घहराती चिढ़, उसके चेहरे पर रक्तिम लालिमा बनकर पथरा रही थी।

"राजन्, मैं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का वंशज हूं। मेरे उन प्रतापी पूर्वजों ने हिमालय की तलहटी में, कम्बोज से अपनी वस्ती वदल कर ठेठ सौराष्ट्र में द्वारका के सागरतट तक ले जाकर, स्थानान्तरण किया! लेकिन कालयवन के एक तो क्या, वीस-वीस आक्रमणों के सामने कदम पीछे न

हटाया। राजन्, मैं उन्हीं भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र का वंशज हूँ। वही मैं कलियुग* के इस कालयवन के सामने सिर झुका दूँ? संयोगवश आपके हाथ से गरुड़-पताका नीचे झुकी तो, यदुकुल की परम्परा के अनुरूप मेरा कर्तव्य तो यही था कि उस पताका को थाम लूँ।"

वीर बल्लाल गरजकर कहने लगा—

"और तुमने क्या किया—मेरे सान्धिविग्रहिक जब म्लेच्छों की छावनी में बैठे सन्धिचर्चा कर रहे थे, तब स्वयं मलिक काफ़ूर को उठा ले जाने की करामात तुमने की? सचमुच, सामंत के रूप में मेरे प्रति तुम्हारी यही स्वामिभक्ति थी! तुमने मेरे सिर को संकट में डाल दिया। देवगिरि के शंकरदेव जैसी मेरी स्थिति हो गई।"

"तब मुझे यह ज्ञात न था राजन्, कि यदुकुल-परम्परा की अपेक्षा आपको अपना सिर ज्यादा प्यारा है।"

यह अपमानजनक उत्तर था और अपमानजनक लापरवाही के साथ दिया गया था। होयसलराज ने अपना होठ चबाया और उस चबे हुए होठ पर लहू के बूँद छलक उठे। क्षणभर वह अवाक् रहा। जब वह बोलने-योग्य हुआ तब काँपते कंठ से कहने लगा, "और तुमने तमिल प्रदेश के पांड्य नायकों का साथ दिया—सो?"

"मैंने तमिल पाड्यसंघ का साथ नहीं दिया, वरन् अपने पुराने मित्र तिरुपतिमलाई के नायक कृष्णाजी का साथ दिया। तमिलनायक संघ का साथ और सहयोग आपको मिल रहा था—संघ के सघपति पांड्यनायक सोमैया ने आपको मेरे द्वारा कहलाया था। याद है, उसने कहा था कि यदि आप मरते दम तक म्लेच्छों का सामना करने को तैयार हों तो तमिलसंघ प्रत्येक प्रकार से आपका सहयोगी बनेगा और जब कभी युद्ध होगा, संघ की सेना सबसे आगे—हरावल में खड़ी रहेगी।"

"तुम तो एकदम बुद्धिहीन और जड़भरत ही रहे। लोग भी यही कहते

*कन्नड़ और तेलुगु स्थल-पुराणों में मलिक काफ़ूर को कलियुग का कालयवन बतलाया है।

हैं। पाण्ड्यनायकों का तमिलसंघ तो कूटनीति की चालें चल रहा था, तुम उन्हें कैसे समझ सकते हो ?"

"म्लेच्छों के विरुद्ध अपनी सेना आगे रखकर लड़नेवाले योद्धा कूट-नीतिक छली हो सकते हैं, यह राजनीति मुझे न पहले, न आज ही समझ में आ सकती है।"

"अरे पागल, मेरे जड़भरत ! तमिलसंघ—समस्त वीरशैव और शुद्धशैव भक्तों का है। यदि हम म्लेच्छों से लड़ते हैं तो हमारे भागवत मंदिर नष्ट होते हैं, हमारे निगंठचैत्यों का नाश होता है और इस प्रकार हमारे धर्म के बलिदान की ओट में शैवों के धर्मस्थान बच जाते हैं।"

"हो सकता है। राजन्, जब पत्थरों को बचाने के लिए मनुष्यों के बलिदान की बात आपने चलाई, तब मैंने सुनी। उस समय मैंने इसे न आपसे सुना न सोमैया से। मैं तो यदुकुल परंपरा का पालन करता था। मेरे मित्र कृष्णाजी नायक ने मेरा साथ दिया। हम दोनों ने मिलकर कलियुग के कालयवन मलिक काफूर को उसकी छावनी से उठा लाने की युक्ति रची। इसमें राजद्रोह है, यह मुझे आज भी समझ में नहीं आता है।"

"क्योंकि तू जड़भरत है। पिछले पच्चीस कुलों में तेरे किसी पूर्वज ने किसी देश-प्रदेश का राज्य तो क्या, पाँच गाँव का शासन भार भी नहीं सँभाला ! फिर तू राजनीति कैसे समझ सकता है ? समस्त यादव मेरे सामन्त कहलाते हैं, इसलिए तुझे भी सामन्त कहकर पुकारा जाता है, वरना यों तो तू दो एक खेतों का स्वामी है, है न ? या इससे अधिक कुछ और ?"

राजवन्दी संगम चुप रहा। होयसलराज ने उसके अकड़े हुए सीने और क्रियारहित अवयवों से अनुमान पाया कि अभी भी राजनीति संगम की समझ से बाहर है। तथापि, समझ में न आने पर भी, राजा की बात को स्वीकार कर लेने-जैसी कोई इच्छा उसके चेहरे पर नहीं झलक रही थी !

"सुन, जड़भरत ! तू ने केवल अन्न-भक्षण ही सीखा है और अधिक से अधिक तलवार घुमाना ! अपनी बुद्धि से भी कुछ काम लिया कर। यदि तू उस समय मलिक काफूर को उड़ा लेता और मैं यह मानता हूँ कि तू चाहता तो उसे उड़ा लेता, लेकिन जानता है उसका परिणाम क्या होता ?

मलिक काफूर के बदले कोई दूसरा म्लेच्छ–म्लेच्छ सेना का सेनापति बनकर आता ! संभव है उसका साला अलफ खां आता। संभव है उसका भाई उलूग खां आता ! म्लेच्छ लोग अपनी महत्वाकांक्षा की पूर्ति के निमित्त अपने बड़े से बड़े व्यक्ति या नेता के प्राण भी दांव पर लगा देते हैं ! तो, परिणाम में कर्नाटक की दशा गुजरात जैसी हो जाती। देवगिरि से बड़ा विनाश यहां आता ! स्थान स्थान पर आग-पानी और लूटमार का जाल छा जाता ! गांव जलते और नगर ध्वंस होते ! धनिक लूटे जाते और निर्धन गुलाम बनाये जाते ! और इन सब घटनाओं के अतिरिक्त मेरा सिर, शंकर भगवान की तरह, अपने भाले पर चढ़ाते ! यह तो अच्छा हुआ कि मैंने पूर्व-सूचना देकर मलिक काफूर को सावधान कर दिया और इस चेतावनी के कारण, वह मुझ पर प्रसन्न हुआ और उस पर मेरा प्रभाव भी बढ़ा।"

राजबंदी का चेहरा उतर गया। क्षण भर के लिए पाषाण प्रतिमा-सा वह खड़ा रह गया।

क्षण भर उसके उतरे हुए चेहरे पर लाल लहू उभरने लगा। चिता पर धू-धू जलने वाले शव की तरह उसके चेहरे पर लाल, हरी, नीली और काली परछाइयां झलकने लगीं।

'अपनी योजना का भेद मैंने केवल एक ही व्यक्ति को बतलाया था राजन् ! मैं उसे सच्ची क्षत्राणी समझता था। यह मेरी भूल थी। मुझे यह मालूम न था कि मैं—मात्र उदर-पोषण के लिए नाचनेवाली वेला (वेलागडम्) का विश्वास करने की भारी भूल कर रहा हूं।'

यह भयंकर कटाक्ष सुन कर रानी लक्ष्मी, जो अब तक केवल पीठ फेर कर खड़ी थी, इस प्रकार घूमी, जैसे चाबी देने पर गुड़िया नाच उठती है। सफ़ेद पौनी के समान उसका चेहरा फक् रह गया—'संगमराय !' जैसे कोई चीख उठा हो, वैसे ही, वह बोली।

अपनी रानी का यह साफ, सीधा और मृत्युवत् अपमान देख कर होयसल-राज क्षण भर के लिए किंकर्तव्य विमूढ़ रह गया। उसके नेत्रों से एक-एक बालिश्त लम्बी ज्वालाएँ निकलने लगीं। धीमे-धीमे भयंकर सावधानीपूर्वक उसने अपनी तलवार म्यान से बाहर खींची।

रानी एकदम आगे बढ़ आई। उसके अंगारे-से गरम चेहरे पर लज्जा, संकोच और आशंका के चिह्न उभरने लगे। उसने होयसलराज का दाहिना हाथ थाम लिया और भावावेश में प्रकम्पित आवाज़ में कहने लगी—'राजन् यह अपमान मेरा है। यह कलंक मेरा है! यह ताना मुझे दिया है और मैं इसकी पात्रा हूँ। लेकिन, आपने संगमराय को क्या इसीलिए बुलाया है कि आप ये सब, पुरानी बातें सुनना चाहते हैं? मेरे नाथ, बीती बातों की कटुता को फिर से जीवित करने में कौन-सा लाभ है? क्रोध को वश में कीजिए और सोचिए ज़रा, आपने संगमराय को किसलिए याद किया है?'

फिर संगमराय की ओर देखकर वह बोली—'संगमराय, आपने मुझे अपनी धर्म-बहन माना। और क्षत्रिय राजा की रानी समझकर विश्वास प्रदान किया। मैंने उस विश्वास का भंग किया। पत्नीव्रत का पालन करते हुए अपने भगिनी धर्म का उल्लंघन मुझसे हुआ। जो होना था सो हुआ। बीती हुई बातें भूल जाइए।'

'भूल जाऊँ? सब कुछ भूल जाऊँ? सामंत-पद की अपनी उपाधि भूल जाऊँ? यदुकुल-परम्परा भी भूल जाऊँ?...और मेरी पत्नी...बारह-बारह, आठ-आठ, छः-छः वर्ष के मेरे बच्चे! आज बारह-तेरह वर्ष हुए होंगे! कितने वर्ष हुए, यह भी मुझे मालूम नहीं। मैं तो गिनती भी भूल गया! परन्तु...परन्तु...'

रानी संगमराय के पास आई—'संगमराय! आपसे ज्यादा उनकी याद मुझे सताती है! क्या आपको लगता है कि विगत बारह वर्षों में, एक रात भी मैं चैन से सोई? मेरे भाई! संसार में सबसे कठिन है धर्म-पालन! राजा और सैनिक से भी विकट और कठिन है पत्नी का धर्म! मैं आज आँचल पसार कर आपसे क्षमा मांगती हूँ।'

संगमराय के होठों पर हल्की हँसी फूटी। निराशा, निष्फलता और तिरस्कार के बारह बरसों का एकान्त अँधियारा उसके मुख पर पथरा गया था। कहने लगा—'सबल की मैत्री भी प्राणघातिनी होती है। और अबल की क्षमा का क्या मूल्य!'

'आप अबल नहीं हैं भाई ! आप सच्चे सूरमा हैं, सबल हैं।'

राजबंदी चुप रहा। रानी ने राजा की ओर देखा, लेकिन अपमान और अवहेलना से क्षुब्ध, राजा को यह न सूझा कि इस नितान्त लापरवाह व्यक्ति को क्या कहा जाए ?

राजा की कल्पना थी कि उसके सामने एक पस्त, अस्त-व्यस्त और परास्त व्यक्ति लाया जायगा। चार आँखें होते ही जो 'दया' और 'कृपा' की भीख माँगने लग जायगा। किन्तु उसने तो एक ऐसा बेपरवाह आदमी देखा, जिसे राजा की कृपा की कहीं, कोई कामना न थी। राजा के क्रोध की जिसे चिंता न थी। राजकृपा को वह अनावश्यक समझता था।

तभी रानी ने बात सँभाल ली—

'आपको याद किया है एक विशेष काम के लिए। यदि वह काम निश्चित समय में, निश्चित रीति से पूरा न हुआ, तो उसका परिणाम भयंकर होगा। कुसमय ऐसा ही है।'

'कुसमय और भयंकर परिणाम किसके लिए? आपके या मेरे लिए?'

'मेरे लिए।'

'हाँ, मुझे भी यह प्रतीत हुआ कि अवश्य होयसलराज का कोई स्वार्थ जगा है। अन्यथा बारह-बारह साल तक जिस सिपाही को राजा ने कभी याद न किया, उसे आज अकारण क्यों याद किया गया?'

अभी होयसलराज के मुँह में बोल आया नहीं था, साथ ही उसका हाथ भी तलवार की मूठ से खिसका नहीं था। वह अभी भी क्रोध से अपने होठों को चबाता हुआ वैसा ही खड़ा था। दोनों आँखों में, जैसे संगमराय को भस्म कर देगा, ऐसे क्रोध की चिनगारियाँ आँखों में भरकर संगमराय को देख रहा था।

परन्तु रानी लक्ष्मीबाई ने संगमराय से बातचीत की। होयसलराज की प्रतिज्ञा का रहस्य समझाया। प्रजा के सम्मुख ली गई यह प्रतिज्ञा यदि शेष समय में पूरी न हो तो लोक-लाज के कारण भी राजा को अग्नि में प्रवेश करना पड़ेगा। हाँ, संगमराय इस प्रतिज्ञा की पूर्ति का बीड़ा उठा

सकता है। जो साहस उसने एक बार पहले दिखाया था, आज उसी की आवश्यकता है। यदि संगमराय काम करे तो सिद्धि हो सकती है। होयसलराज इस उपकार को कभी नहीं भूलेंगे। रानी प्रलोभन देने लगी। जागीर देने की वात भी उसने कही। होयसलराज का दण्डनायक वनाने का आश्वासन भी दिया। लेकिन संगमराय पर, इन वातों में से एक का भी प्रभाव पड़ता दिखाई नहीं दिया। होयसलराज चक्रवर्ती वनना चाहता था। जव से उसने जैन-धर्म को तिलांजलि दी थी, तव से उसने अपने मन से कविराज क्षेमेन्द्र की फिक्र छोड़ दी थी। और सारे कर्नाटक देश में जैनों की घोषणाएँ वन्द करा दी थीं, और जव से भगवान श्री कृष्णचन्द्र और अन्य यादव चक्रवर्तियों के पराक्रम की कहानियाँ श्री रंगमठ के कुलगुरु वेदांत-देशिक आचार्य के अपने श्रीमुख से सुनी थीं, तव से अपने आपको वह यदुकुल वंश का उत्तराधिकारी वनाना चाहता था और समस्त वैष्णव-सम्प्रदाय तथा यादवों का चक्रवर्ती-पद ग्रहण करना अनिवार्य मानता था।

आज जैसे उसके धैर्य की परीक्षा हो रही है और धैर्य का वाँध टूटा जा रहा हो, ऐसे स्वर में उसने संगमराय से कहा—

'यह जड़भरत तो, एकान्त में राजवंदी वना रहने के योग्य है। भेज दो इसे, अपने वंदीगृह में। साथ ही इसकी पत्नी और इसके पांचों पुत्रों को भी वहाँ पहुँचा दो। ऐसे व्यक्ति की सन्तान भी मुझे अच्छी नहीं लग सकती।'

संगमराय दाँत पीसता हुआ, सुनता रहा। वह तो यों खड़ा था, जैसे रक्त रहित रचा गया है! उसने अपना मौन नहीं तोड़ा, परन्तु रानी तो अपने सौभाग्य की सुरक्षा के लिए संघर्ष कर रही थी। दोरा समुद्र में मनाए गए जन्माष्टमी जैसे महत्वपूर्ण अवसर पर, वीर वल्लाल ने हजारों नर-नारियों की उपस्थिति में, भयंकर प्रतिज्ञा की थी। जिस समय ऐसा, आग्रह भरा वचन राजा ने दिया, उस समय किसी को यह भयंकर प्रतीत नहीं हुआ। परन्तु जैसे-जैसे अमावस्या की रात्रि वढ़ती जाती है, वैसे-वैसे अन्धकार भी गहरा होता जाता है। जैसे-जैसे दिनों के पश्चात्, मास वीतने लगे, वैसे-वैसे, [illegible] प्रतिज्ञा अधिक से अधिक उग्र रूप ग्रहण करने लगी।

आकाश में आपाढ़ गरज उठा। हज़ार-हज़ार धाराओं में गगनांगन जल बरसाने लगा। समस्त तमिल प्रदेश एक है और कावेरी से रक्षित है। इस समय सारे प्रदेश में नदी-नालों की बाढ़ें-सी आ रही थीं। इनमें सेनायें प्रयाण नहीं कर सकती थीं। सर्दियों और गर्मियों में जहाँ सेनायें और उनके साधन आसानी से आ-जा सकते थे, वहाँ जो समस्या उस समय हल नहीं हो सकी, वह समस्या अब चातुर्मास के जलमय वातावरण में हल होने की तो, चर्चा ही क्या ?

यदि लोक-लाज के कारण भी राजा को जलकर मरना पड़े तो ?

अपने नारी-जीवन की अखण्डता की रक्षा के लिये संघर्ष करती हुई रानी बोली—'बहन की हजार भूलें होती हैं, उस पर पत्नी-धर्म-पालन करने का उग्र भार है। भाई को महसूस हो कि बहन की त्रुटि है तो उसके अनुसार वह भी अपना व्यवहार बदल सकता है, परन्तु बहन की चूड़ियाँ फूट जाएँ, भाई ऐसा दण्ड दे और यह देखते हुए भी भाई चुप बैठा रहे, ऐसा क्रोध तो, मैंने आज ही देखा है।'

संगमराय बोला—

'अच्छा बहन ! मैं पुरुषार्थ करूँ, बन सके उतना प्रयास भी करूँ, परन्तु मेरी एक शर्त है—पाण्ड्य सोमैया वीर पुरुष है। बड़े-बड़े महाराजा के महाराजाओं ने भी म्लेच्छों के चरणों में सिर झुकाया है, परन्तु इस ग्रामीण नायक ने यवनों के सामने अपना सिर नहीं झुकाया। वास्तव में वह वीर है। उसका स्वागत भी वीर पुरुष की भाँति द्वार समुद्र में होना चाहिए। उसका सम्मान भी अपूर्व रीति से होना चाहिए।' अरे ! ऐसी स्पष्ट सीधी-सादी बात को कौन अस्वीकार कर सकता है ? संगमराय यदि पचास गांव माँगता तो भी होयसलराज देने को प्रस्तुत था। संगमराय कर्नाटक देश के चार दण्डनायकों में से एक दण्डनायक का अधिकार मांगे तो भी राजा सहर्ष देना स्वीकार कर लेगा। कर्नाटक देश के छत्तीस किलों में से एकाध दुर्ग का दुर्गपाल बनना चाहता है तो भी, राजा उसे बना देगा।

परन्तु इस व्यक्ति ने तो इनमें से एक भी वस्तु की याचना नहीं की,

३ : धर्म भगिनी का भाई

संगमराय सीधा चल दिया। उसे और किसी वस्तु की तो आवश्यकता ही नहीं थी। धर्मपूर्वक बनाई हुई बहन से इस भाई को याचना करने जैसी तो कोई आवश्यकता ही नहीं थी। वह सीधा तमिल के सिंह की गुफा की ओर चलने लगा। पच्चीस आदमी उसके साथ हो लिए। पच्चीस हजार की विशाल सेना से जो कार्य आठ मास में नहीं हो सका, वही पूरा करने के लिए यह, केवल पच्चीस आदमी लेकर निकला।

उस समय, कावेरी नदी के दोनों किनारे सीमाएँ लांघ रहे थे। और जब कावेरी मर्यादाएँ तोड़ने लगती है, उस समय यह कितनी भयंकर दिखाई देती है! यह साक्षात् महाकाली का रूप धारण कर लेती है! तमिल देश की साफ चौड़ी और नरम भूमि में यह विकराल ताण्डव करती हुई, जैसे घूमती है। इसकी बाढ़ की हिलोरों में इसकी दो धाराएँ बन जाती हैं। दोनों धाराओं के बीच की भूमि को नष्ट करती हुई, वहा के वृक्ष-पत्तों को, झोपड़ों व मकानों को उखाड़कर ले जाती है। इसके तीव्र बहावों में जंगल तैरते चले आते हैं। योजन-योजन तक इसका पानी फैल जाता है।

भरी बरसात में ऐसी भयंकर नदी के भरे हुए तूफानों में से संगमराय पार उतर गया। उसको पाड्य सोमैया की खोज अधिक नहीं करनी पड़ी। बात ऐसे बनी कि पाड्य सोमैया को भी यही विचार सूझ रहा था। मदुरा का सुलतान जलालुद्दीन मदुरा में बैठा था। उसका शासन तो मदुरा

के जंगलों से आगे नहीं पहुँच पाता था। परन्तु वह सेना बड़ी रखता था। और आसपास के मार्ग के यात्रियों में आतंक फैलाता रहता था। जहां तक बन सकता, वहां तक आसपास के प्रदेशों को वह दबाने का प्रयत्न करता रहता था। इसलिए बनाव ऐसा बनता कि शीत, ग्रीष्म में मदुरा की सल्तनत के अधिकार शासन में पांच सात सौ गांव गिने जाते तो वर्षा में एक मात्र मदुरा ही उसकी होकर रह जाती। आसपास के गाँव उसकी आज्ञा मानें या न मानें इसका कोई महत्व नहीं, परन्तु वर्षा में मदुरा से बाहर किसी गाँव में वह अपनी चौकियां नहीं रख सकता था। वर्षा के दिनों में सभी चौकियां लौटकर मदुरा आ जाती थीं। तमिल देश की बावली नदियां और नितान्त बावले नदीनालों के देश में—जब वर्षा में कोई यात्रा ही नहीं कर सकता था, लड़ाई के लिए युद्ध के मोर्चे तो कोई कैसे बना सकता था!

पांड्य सोमैया को सूझी कि चौमासे में मदुरा का सुल्तान अपने आप को निर्भय मान कर बैठा होगा, अगर वहीं उसे दबाया जाय तो? और कोई विशेष तैयारी व इच्छा तो उसकी नहीं थी, परन्तु थोड़ी सी सेना के साथ उस पर आक्रमण तो करना ही चाहिए, इस हिसाब से वह निकला था।

इसलिए संगमराय को, सोमैया को खोज लेने में अधिक प्रयास नहीं करना पड़ा। एक रात संगमराय ने सोमैया का अपहरण कर लिया। तमिल पांड्य नायकों और उनकी सेना के हज़ारों सैनिकों के मध्य में से संगम ने उसे उड़ा लिया। और किसी को, किसी प्रकार की सूझ-समझ पड़े, इससे पहले ही वह कावेरी पार उतर गया।

और आज संवत् १३७६ के श्रावण मास के ८ वें दिन, उसने सोमैया को लाकर दोरा समुद्र में खड़ा कर दिया।

इसके बाद संगमराय अपने घर गया। अपनी पत्नी कामाक्षी और पांचों पुत्रों से, बारह वर्ष के अनन्तर आज उसने भेंट की।

सबसे बड़ा हरिहर पच्चीस वर्ष का हो गया था।

दूसरा कंपन तेईस वर्ष का था।

दो दो वर्ष के अन्तर से अपनी सुलक्षण पत्नी कामाक्षी की ये संतानें।

बारह वर्ष के पश्चात् सारा परिवार एकत्र हुआ। हँसी-रुदन का अद्भुत मिश्रण था इस स्वर्गीय सम्मेलन में। सब हँसे, सब रोए, फिर से हँसे।

पीछे पीछे कष्ट भी आया। वीर पराक्रमी पुरुषों की कदर करनेवाले वीर वल्लाल ने संगमराय को जागीर प्रदान की थी। कर्नाटक के चार दण्डनायकों में से एक दण्डनायक का अधिकार प्रदान किया था। साथ में पोशाक भी थी, सम्मान भी था। साथ ही होयसलराज की रानी लक्ष्मी की तरफ से कामाक्षी और उसकी पांचों सन्तानों के लिए भेटें और सौगातें थी।

और श्रावण शुक्ला नवमी का जो उत्सव राजमहल में होने जा रहा था, वेदान्तदेशिक आचार्य और होयसलराज जन्माष्टमी का उपहारादि करने वाले थे, उस समय साथ में भोजन करने के लिए सारे परिवार को निमंत्रण दिया गया था।

उस सायंकाल दोरा समुद्र में होयसलराज की सवारी निकली। श्री व्यंकटेश प्रभु के जन्म का दर्शन करना, लक्ष्य था। दर्शन तो वास्तव में आधी रात को होना था, परन्तु सवारी शाम को ही रवाना हो चुकी थी। नगर विशाल था और इस विशाल नगर के सभी राज-मार्गों से होकर सवारी निकलनी थी।

सवारी की धूमधाम भारी थी। और नगर निवासी विशेष आतुरता से सवारी का दर्शन करना चाहते थे, इन के दो आकर्षण थे।

एक आकर्षण तो यह था कि समस्त वैष्णव सम्प्रदाय के सर्वश्रेष्ठ धाम-समान श्रीरंग मठ के कुलगुरु व्यंकटनाथ वेदान्तदेशिक आचार्य श्री प्रभु स्वयं सोने की पालकी में बैठकर निकलनेवाले थे और जनसमुदाय को इन पुरुषोत्तम के दर्शनों का अनन्य लाभ मिलनेवाला था, यह आकर्षण निर्जीव नहीं था। परन्तु जिन्हें यह आकर्षण भी आकृष्ट न कर सके, उनके लिए एक दूसरा भी महत्त्वपूर्ण आकर्षण था।

वह आकर्षण यह था कि यदुकुलभूषण होयसलराज वीर वल्लाल तृतीय को दक्षिणापथ के चक्रवर्ती का पद प्राप्त करना था। और उसमें अब

कुछ अधिक कमी या दूरी नहीं रह गई थी। इसकी साक्षीस्वरूप जनता को अनेक प्रमाण प्रस्तुत किये जाने वाले थे।

एक प्रमाण था राजमुकुट, चक्रवर्ती पद की शोध में वीर होयसलराज ने आजतक जो राजमुकुट अपने अधिकार में लिए थे, वे एक खुले आसन पर रखकर जुलूस में निकलने वाले थे।

इसमें एक वृद्धि हुई थी पांड्य नायक सोमैया की—

पांड्य नायक सोमैया महापराक्रमी, वीर होयसलराज का अन्तिम वन्दी बना था

आज की सवारी में वह भी निकलनेवाला था—

तमिल का सिंह—तमिल-संघ का नायक, जिसके पौरुष की कहानियाँ सुन कर हृदय कांप उठे, आखिर वह भी होयसलराज का वन्दी बना!

इस वीर पुरुष को—इस महावीर वंदी को—अपनी आँखों से देखने के लिए आज समस्त दोरा समुद्र के राजमार्गों पर मानवमेदिनी छलक रही है। मानो दक्षिण की गंगा—कावेरी ने मानव-समाज का रूप धारण कर के द्वार समुद्र के राजमार्ग पर चंक्रमण किया है, ऐसा लग रहा है।

राजमहल से सवारी निकली। सवसे आगे एक विराट् रूपधारी हाथी था। और उसके ऊपर भारी-भारी नगाड़े वज रहे थे। इनके पीछे था मुकुटों का पाट, जिसके उपर पराजित राजाओं के मुकुट और तलवार, सब देख सकें, इस प्रकार सजाए गए थे।

इसके वाद एक और पाट था। राज्य के सारे हाथीखाने में से खोजकर एक क़द्दावर कोढ़िया हाथी लाया गया था। उस हाथी के पीछे एक पाट जोड़ा गया था। ऊँचे चार पहियों के ऊपर यह पाट था, ताकि सारा नगर इसे आसानी से देख सके:

इस पाट के ऊपर सीधा खड़ा रहे, इस प्रकार, पांड्य-नायक सोमैया वाँधा गया था।

और उसे स्त्रियों⊙ के वस्त्र धारण कराए गए थे।

⊙उस काल में पराजित राजा अथवा सेनापति को स्त्री-वेश पहना कर नगर में घुमाया जाता था।

४ : जन्माष्टमी

सवारी की शोभा अपरम्पार थी। समस्त कर्नाटक देश की राजलक्ष्मी, आँखों को चकाचौंध कर दे, इस प्रकार छटा दिखाती हुई, लोगों की आँखों के सम्मुख प्रवाहित हो रही थी।

आज कसाद के राजदुर्ग के सारे तोशाखाने को खुला रखा गया था। गोलकोण्डा की खानों के हीरे, कोलार की खानों के माणिक, मनार समुद्र के गर्भ के मोती, दोरा समुद्र की सह्याद्रि और सागर के मध्य की घाटी के माणिक, भद्रा नदी की सुनहरी रेत के सुवर्ण का कोई पार ही नहीं था। लगता था जैसे कर्नाटक के राजा ने अमावस की रात के तारे पकड़-पकड़ कर, धरती के पट पर उतारे हैं और वह दोरा समुद्र के राजमार्ग से आकाश-गंगा की भाँति बहे जा रहे हैं।

दोरा समुद्र का अटूट धन-भण्डार म्लेच्छ लोग वर्षों-पहले लूट ले गए थे। दोरा समुद्र के राजमहल में म्लेच्छ सेना का सिपहसालार कलियुग का कालयवन मलिक काफ़ूर कर्नाटक देश के राजसिंहासन पर विराज रहा था। और कर्नाटक देश के होयसलराज वीर बल्लाल ने उसे अभिवादन कर के उसके चरणों में कर्नाटक का धन-भण्डार समर्पण किया था। सात सौ मन सोना, सात मन हीरा, बारह मन मोती, पन्द्रह मन माणिक और नीलम के साथ ही...कर्नाटक के भाग्यचन्द्र समान माना जानेवाला पहले का अद्भुत वैदूर्य मणि भी—ऐसी लोक-कथा थी कि श्रीकृष्ण भगवान्

ने जांबुवंती के बाप के पास से जो स्यमंतक मणि प्राप्त किया था, वह, यही था।

इतना हो चुकने पर भी अभी अनंत धन-भण्डार शेष रह गया था। वह शेष धन-भण्डार देखने का अवसर आज जनता को प्राप्त होनेवाला था। क्योंकि आज कर्नाटक के होयसलराज के जीवन में एक महत्वपूर्ण अवसर उपस्थित हुआ था। और वह यह था कि महाराज सप्त सामंत चक्र चूड़ामणि बनने की दिशा में छठा कदम आगे बढ़ाकर सफलता प्राप्त कर चुके थे।

देखिए, यह सामने कर्नाटक राज्य के भाग्य-विधाता के समान दो सफ़ेद हाथी जा रहे हैं—आदित्यराज और प्रभाकरराज।

हाथी के शरीर का भार कुछ कम नहीं है। दसों मनों के हिसाब से इसका भार होता है। फिर भी इसकी भारी देह के तौल समान ही हीरे, मोती, माणिक और पन्नाओं से इसका शृंगार किया गया है। लगता है जैसे आकाश से मेघ-धनुष धरती पर उतर आया है।

यह दोनों हाथी अपने पीछे लगा हुआ एक पाट खींच रहे हैं। पाट के पहिए सोने के हैं। सोने का पतरा जड़ा कर नहीं, अपितु केवल ठोस सोने से ही इसका निर्माण हुआ है। इसके ऊपर एक चीनांबर बिछाया गया है। इसके ऊपर छः ऊंचे आसन हैं और छहों आसनों पर होयसलराज द्वारा पराजित छः राजाओं के राजमुकुट हैं। इन्हीं में पांड्य-नायक सोमैया का राजमुकुट भी है, अब कृष्णा नदी के दक्षिण किनारे से लगाकर सेतुबंध रामेश्वर तक के समस्त हिन्दू राज्यों में होयसलराज का चक्रवर्ती शासन है, यह इसी बात का साक्षी है। उसके पीछे एक और पाट आ रहा है। उसे भी राज्य के दो बहुमूल्य हाथी खींच रहे हैं। वह पाट भी सोने का है। और उसे कमखाब से सज्जित किया गया है। उसके ऊपर एक ही आसन है।

इस आसन पर एक प्रतिमा है—मिट्टी की मूर्ति। मूर्ति के हाथों और पैरों में धागों के बंधन हैं। मिट्टी की मूर्ति की मिट्टी की तलवार के दो टुकड़े मूर्ति के पैरों में पड़े हैं। इस मूर्ति का मुख बिल्कुल वारंगल के राजा

प्रताप रुद्रदेव काकतीय जैसा है। जनता भलीभाँति मुख को पहचान सके, यह मूर्ति इतनी स्पष्ट और सुन्दर बनाई गई है।

इतना होने पर किसी को धोखा न हो जाए। कोई भ्रांति में ही न रह जाए, इसलिए दो जुड़े हुए हाथों से जो धागे से बँधे हुए हैं; झुकाया हुआ ध्वज है, जिस पर लिखा हुआ है—वारंगल।

होयसलराज के सम-सामंत-चक्र-चूड़ामणि बनने के पराक्रमी पथ में उठाया जानेवाला यह अन्तिम पद है, इस बात की शंका रत्ती-भर भी लोगों के मन में नहीं रह जानी चाहिए।

अब होयसलराज, वारंगल के काकतीय वंश के राजा प्रतापरुद्र पर आक्रमण करनेवाले हैं, यह इस बात की स्पष्ट चेतावनी थी।

और वारंगल के काकतीय प्रतापरुद्र को होयसलराज परास्त कर सकेगा, यह सत्य भी सूर्य के समान स्पष्ट था। समस्त कर्नाटक देश में कौन नहीं जानता कि देवगिरि का सूबा, दिल्ली के सुल्तान गयासुद्दीन तुगलक का बड़ा शाहजादा उलूग़ ख़ाँ पिछले एक वर्ष से वारंगल को परेशान कर रहा था।

कृष्णा नदी के दक्षिण की ओर तो मेघराजा के चमत्कार हो रहे हैं, परन्तु उत्तर की ओर मेघराज रूठे हुए हैं। 'सासु का क्रोध व बहू का संतोष' जैसे मेघराज के क्रोध का पूरा-पूरा लाभ उलूग़ ख़ाँ उठा रहा था। उसकी सेनाएँ वारंगल का घेरा डाले पड़ी थीं।

वारंगल का पतन होगा। इस पतन में कोई शंका नहीं थी। म्लेच्छों के आक्रमण के सम्मुख, एकदम हिमालय की तलहटी से लगाकर सेतुबंध-रामेश्वर तक कौन टिक सका है? हिन्दुओं को अपने धर्म की कोई चिन्ता नहीं। इस भीषण अपराध का जैसे दण्ड देने के लिए ही, मानो यमराज ने स्वयं ही कालदण्ड के अवतार के समान इस दुर्धर्ष और दु:सह म्लेच्छसमूह को भेजा है।

इन म्लेच्छों के सामने तो उत्तरी भारत के सूर्यवंशी और चन्द्रवंशी-जैसे समर्थ राजा लोग भी हार चुके हैं। दक्षिण के प्रताप को आगे की ओर बढ़ने से रोकने वाला गुजरात का राजा भी नष्ट हो गया है और

अपनी पुत्री के साथ दक्षिण में कहीं मुंह छिपाए पड़ा है। इन म्लेच्छों ने रणथम्भीर नष्ट किया। गुजरात नष्ट किया। देवगिरि नष्ट किया। कलियुग के कालयवन और उसकी सेनाओं के सामने कौन ठहर सका है। यह तो एक ऐसी भयंकर दुर्दम्य आंधी आई है कि किसी से भी रोकी जा सके, ऐसा नहीं। इसलिए देर-अबेर में अपने आप ही शान्त हो जाएगी, ऐसा विश्वास कर लेना और तब तक पूर्व जन्म के या पूर्वजों के किन्हीं भयंकर पापों का यह यमदण्ड है, अतः इसके सामने नतमस्तक हो जाने के अतिरिक्त, कोई मार्ग नहीं।

वीरों में वीर शिरोमणि, भगवान श्रीकृष्णचन्द्र स्वयं भी कालयवन के सम्मुख पराजित होकर, क्या स्वयं भाग खड़े नहीं हुए थे ? और वीर जैसे वीर होयसलराज—सप्त सामन्त चक्रचूड़ामणि की सप्तपदी में जिसे केवल एक ही पद रखना और शेष रह गया है, ऐसे वीर होयसलराज को भी क्या कलियुग के कालयवन को अपने प्रतापी पूर्वजों के सिंहासन पर बिठाकर साष्टांग नमस्कार नहीं करना पड़ा था ?

अतएव भाइयो ! म्लेच्छों की बात छोड़ो, ईश्वर ने भी अपना सर्वज्ञ और सर्वन्यायी निर्णय भूल, अपने अनुयायियों के ऊपर इस दावानल को छोड़ दिया है। यह दावानल मन्दिरों को भस्म करता है। गायों का वध करता है। प्रजा के संचित धन भण्डारों की लूट मचाता है। हज़ारों नर-नारियों को गुलाम बनाकर पकड़ ले जाता है। इस दावानल में उच्चकोटि के महान ग्रन्थों को जलना पड़ रहा है। विद्या का नाश हो रहा है। इसमें देवों की प्रतीक मूर्तियों का विध्वंस हो रहा है। इसमें मानव के तन, मन और धन पर कौन-सा अत्याचार नहीं होता ? म्लेच्छों का दल कोई मनुष्यों का दल नहीं है, यह तो दैव का रोष है। इसका सामना कोई मानव नहीं कर सकता। इसके लिए तो ईश्वर को, उसके किसी अंश को; भगवान विष्णु को या भगवान शंकर को अवतार धारण करना पड़ेगा। और फिर ईश्वर ने क्या गीता में वचन नहीं दिया है कि जब जब धर्म का नाश होगा और अधर्म का उदय होगा, तब-तब वह स्वयं ही अवतार लेगा।

इसीलिए भाइयो ! धर्म की चाहे जितनी रक्षा करो। चाहे जितना

अधर्म को मिटाने का प्रयत्न करो, परन्तु उसका फल-कुफल और परिणाम सब जगत नियन्ता भगवान पर छोड दो।

और यही तो कारण है कि धर्म की जितनी सेवा बन सके, उतनी पूरी करने करने के लिए, होयसलराज ने वैष्णव धर्म की दिग्विजय-पताका हाथ में ली है।

उसने जैनों को निकाल भगाया। उसने शैवों को परास्त कर दिया। और अन्तिम विजय होयसलराज ने उन शैवों पर प्राप्त की है जिनके आचार-विचार की दृष्टि से तो म्लेच्छ भी अच्छे हैं, यह तो म्लेच्छ शिरोमणि के समान हैं। वीर शैव के वर्णसंकर धर्म के सहज उपासक और उनके एक मात्र आधार ऐसे समर्थ पाड्य नायक सैनिक का भी होयसलराज ने क्या हाल किया है, इसे आपने नहीं देखा ?

न देखा हो तो थोड़ा आगे चलो, जिस रास्ते से आए हो, उसी मार्ग से थोड़ा पीछे जाओ और कर्नाटक की राज्यलक्ष्मी की इस भक्त सवारी के अग्रभाग को, आगे जाकर देखो।

कलियुग के कालयवन के सम्मुख जिसने सिर नहीं झुकाया, ऐसे पाड्य-नायक सोमैया को तुम जाकर देखो। पराजित शासक के रूप में पहने हुए—अपितु कर्नाटक राज—द्वारा पहनाए गए—उसके नारी वेश को देखो।

जनता में चर्चाएँ हो रही हैं कि हीरा-मणिक-मोती की नवीन आकाश-गंगा दोरा समुद्र के राजमार्ग पर बह रही हो, ऐसी रथयात्रा आगे बढ़ रही है। उसकी अवर्णनीय शोभा बिखरती जा रही है। उसके रत्नों की जग-मगाहट में जैसे वैष्णव सम्प्रदाय के महाप्रभु, श्री रंगमठ के कुलगुरु वेदान्त-देशिक महाराज की भव्य और प्रतापी मुखमुद्रा भी पहचानी नहीं जाती है!

हाथी चले रहे हैं, जैसे रत्नों के पर्वत चल रहे हों। इस अद्भुत आश्चर्य में कर्नाटकराज स्वयं खो-सा गया है, इसका भी जैसे किनारा दिखाई नहीं देता। इस यात्रा में उसका परिवार चल रहा है। महारानी लक्ष्मीबाई जा रही हैं, उसकी दोनों पुत्रियां माला और अम्बा जा रही हैं। उसके तीन पुत्र प्रीतमदेव, विजयदेव और वल्लभदेव भी चल रहे हैं। विविधरंगी

सेनाओं की जैसे टुकड़ियां भी जा रही हैं ! बड़े बड़े पाटों पर नगर की प्रसिद्ध नर्तकियां अपनी कलाओं का प्रदर्शन कर रही हैं। और जनसमूह उनके ऊपर फूलों और सिक्कों की वर्षा कर रहे हैं।

और इस प्रकार होयसलराज की महत्वाकांक्षा के समान, ढलते हुए सूर्य की बुझती हुई किरणों में जैसे अग्नि में जलते कर्कोटक नाग जैसी रथ-यात्रा धीरे धीरे श्री व्यंकटेश महादेवधाम की ओर आगे बढ़ रही थी।

दण्डनायक श्रीकंठ के ऊपर उत्तरदायित्व था इस बात का कि विजययात्रा को सभी राजमार्गों से फिराते हुए, निश्चित समय पर व्यंकटेश के मंदिर में पहुँचा दे। तब तक महाराज की विजय पताका फहरा कर जनता को बताना। सम्पत्ति के भण्डारों से छलकते प्रवाहों की अपार राशि का प्रदर्शन करना। एक तो होयसलराज के चक्रवर्ती मार्ग के अन्तिम पद का प्रारम्भ लोगों को बताना, दूसरे पांडच सोमैया के ऊपर विजय पाने तथा वारंगल के ऊपर भावी युद्ध घोषित करना, इस यात्रा के मुख्य उद्देश्य थे।

और जैनों के बाद, शैवों के बाद, वीर शैव के धुरंधर पर विजय-प्राप्त करके, कृष्णानदी के दक्षिण तट से लगा कर, सेतुबंध रामेश्वर तक सारे मार्ग में वैष्णव सम्प्रदाय की दिग्विजय पताका फहरानी, यह भी इस यात्रा का धार्मिक उद्देश्य था।

और यात्रा में एक ओर पांडच सोमैया की उपस्थिति और दूसरी ओर महाप्रभु वेदान्तदेशिक की उपस्थिति इन दोनों मुखों में से किस का स्वर तीव्र था, यह नहीं कहा जा सकता था। और किसी को इस बारे में कुछ कहने-जैसा लगता भी न था।

परन्तु सामान्य जनता पर बंदी सोमैया के कारण प्रताप; वेदांतदेशिक आचार्य के कारण प्रभाव; अपरम्पार राज सम्पत्ति के प्रदर्शन द्वारा विस्मय तथा वारंगल के राजा की भावी पराजय को सूचित करती प्रतिमा के द्वारा शक्ति की हुंकार फैलाती हुई, यात्रा चली। आगे बढ़ी और अन्त में श्री व्यंकटेश के देवधाम के सामने आ पहुंची।

व्यंकटेश का देवधाम पहले तो सादा था, जब कि होयसलराज

निगठ की ओर उन्मुख थे, तब यह उपेक्षित बना हुआ था। परन्तु अब तो इस में उच्च गोपुर था विशाल महामंडप थे। असंख्य देवदासियाँ थीं।

महाराज की सवारी पहुँची। उस समय स्वयं मंदिर के गर्भद्वार के बाहर देवदासियाँ हार और पुष्प मालाएँ लेकर खड़ी थीं।

इन देवदासियों मे भी उदाली कुछ अद्भुत ही थी। उसका नृत्य देखने के लिए साक्षात् श्रीरंग स्वयं आते थे, यह कहा जाता था। उसके बारे मे लोक में ऐसी भी चर्चा थी कि यह कलयुग में राधा का अवतार लेकर आई है। उसके सुकोमल, सुमनोहर अंगों को देखने से, कलियुग में अप्सरा का दर्शनलाभ मिलता था। जिस समय कलियुग का कालयवन कर्नाटक को विनष्ट करता हुआ, दोरा समुद्र मे आ पहुँचा तब इस अद्भुत बालांगना को छिपाने और बचाने के लिए, भावुकभक्त उसे जंगलों में दूर-दूर ले गए। और नौका ही नौका में, दूर, पार मास तक निवास करती रही। तब उसके भक्त अनन्य श्रद्धापूर्वक कहते कि कभी-कभी जब उदाली नौका में रियाज करती तो साक्षात् श्रीरंग स्वयं मत्स्यावतार धारण कर उदाली की कला देखने आते। भावुक लोग ऐसा भी कहते कि एक बार जब समुद्रराज स्वैर विहार करने को उद्यत हुआ था, तब उदाली ने कोई ऐसी भजन स्वर-माला में समुद्रराज की प्रार्थना की कि स्वच्छन्द बन जाने का अपना सारा विचार छोड़ कर, समुद्रराज इस सुरबाला को सुनने के लिए मंद हो गए थे।

उदाली केवल देवदासी मात्र ही नहीं थी, परन्तु महातपस्वी और अनेक बार जिसके लिये श्रीरंग भगवान ने आ-आकर, चमत्कार बताए थे, ऐसे वैष्णव सद्गुरु विद्यानाथ की शिष्या भी थी। गुरु के आशीर्वाद से यह स्वयं भी प्रभुभक्ति की रचनाएँ रचती। और अपनी रची हुई कविताएँ वह जिस समय गाती उस समय पत्थर भी डोल उठते। उसका दूसरा बिरुद ज्ञान-सरस्वती का था। भावुक लोग, श्री वेंकटनाथ के देवधाम में एक धूम्रस्तम्भ जरा हिला हुआ था, वह बता-बता कर उसे उदालीस्तम्भ नाम से कीर्तित करते और कहते कि जिस समय उदाली भगवान की भक्ति कर रही थी, उस समय उसकी तान के कम्पन में यह धूम्रस्तम्भ डोल उठा था।

ऐसी थी उदाली—श्री वेंकटेश की राधा।

और आज के उत्सव में—श्री व्यंकटेश के जन्मोत्सव में— होयसलराज के पांड्य विजयोत्सव तथा वारंगल के काकतीयराज प्रतापरुद्र के सम्मुख विग्रह शक्ति उत्सव–इस प्रकार आज के त्रिमुखी उत्सव में, उदाली स्वयं गाने वाली थी—'शतदूपणी' श्री वेदान्तदेशिक आचार्य का स्वरचित खण्डकाव्य।

इस काव्य का नाम काव्य के गुणों के आधार पर ही रखा गया था। इसमें एक-दूसरे के विरोधी–निगंठ, शैव और वीर शैव सम्प्रदायों के दोपों और अकर्मण्यताओं का उपहास भरा चित्रण था। कहा जाता है कि संस्कृत भापा में लिखे गये किसी भी सम्प्रदाय के साहित्य में इससे अधिक उपहास और कटाक्षपूर्ण साहित्य नहीं। ऐसा अनमोल, विरल खण्ड-काव्य आज उदाली गाने वाली थी। केवल गाने वाली ही नहीं थी, परन्तु सामान्यतः अपना पेट भरने के लिए महफिल में वैठ कर, जिस प्रकार वेश्याएँ शरीर और मुख का हाव-भाव वतानेवाला नृत्य करती हैं, इस प्रकार वह शतदूपणी का गान करनेवाली नहीं थी। उस गान को साक्षात् नृत्य करके वताने वाली थी। उत्सव कोई साधारण नहीं था। यह सम्प्रदाय की दिग्विजय का उत्सव था। अतः सम्प्रदाय की सर्वश्रेष्ठ, परमस्वरकार और राधा की साक्षात् अवतार समान, उदाली का एक सर्वसामान्य नृत्य करने के लिए आना वड़े सौभाग्य का प्रसंग माना जाता था। उसके गौरव का वर्णन कैसे हो सकता है।

कृष्णा नदी से सेतुवन्ध रामेश्वर तक, दक्षिणापथ के सामंत चक्र चूड़ामणि जिसके प्रथम अनुयायी हों। वेद, उपनिपदों, ब्राह्मण ग्रंथों और अरण्यकों के स्वहस्त लिखित १०८ प्रतियों का भार जिनके कंधे पर हो, ऐसे, सर्वज्ञ श्री की पदवी रखनेवाले महापण्डित, साथ ही विष्णु भगवान के कलियुग के अवतार समान माने जानेवाले भगवान रामानुजाचार्य की पुत्री के पुत्र और उनके संस्कारों के प्रतिनिधि के रूप में, समस्त वैष्णव धामों में सर्वश्रेष्ठ धाम श्रीरंग के कुलपति श्री व्यंकटनाथ वेदांतदेशिक आचार्य भी जिसके प्रथम पुजारी हैं; कलियुग की राधा समान कि जिसका संगीत सुनने के लिए श्रीरंग स्वयं पधारें, जिसके रासनृत्य में सम्मिलित होने स्वयं गोकुल का कन्हैया आए, तथा होयसलराज की दो राजपुत्रियों मालादेवी

और अम्बादेवी की संगीत एवं नृत्य की राजगुरु, ऐसी उदाली, जहाँ संगीत लहरियाँ छेड़नेवाली थी, वहाँ लोगों के उन्माद भरे आनन्द की पूर्ति के लिए, कमी किस बात की रह सकती थी !

सारे नगर का मानव समूह श्री व्यंकटेश में एकत्रित हो गया था और उसे अपने अन्दर समा लेने के लिए देव मंदिर मे स्थान भी था।

अलबत्ता, होयसलराज को अपने विनम्र और साधु स्वभाववाले राजपिता के राजधर्म का उत्तराधिकार जैन मिथ्यात्व के रूप में मिला था; परम्परा के रूप में मिला था, उस समय श्री व्यंकटेश का धाम पवित्र भी नहीं माना जाता था और विशाल भी नहीं, परन्तु कुल-गुरु श्री वेदान्तदेशिक आचार्य की एक महान दया से और भगवान श्री परम के आशीर्वाद से होयसलराज ने अपने पिता—पितामह की परम्परागत प्रणालियों का भंग किया था। उस समय जैन-सेविकाओं और सेवकों को उसने विदा कर दिया था और श्री व्यंकटेश की महिमा बढ़ाने में संलग्न हो गया था।

बाद में तो श्री व्यंकटेश मे जैसे मनुष्य-शरीर में ही विष्णुधाम प्राप्त हो जाए, ऐसा गौपुर निर्माण हुआ, मानो कि संसार-भर के वैष्णव-समाज का सत्कार करना हो, ऐसा महामंडप बनवाया गया।

दण्डनायक श्रीकण्ठ और उसके सैनिकों, श्री व्यंकटेश के मठपति तथा उनके सारे शिष्य-समाज, दोनों ने मिलकर चक्रवर्ती और महाप्रभु आचार्य से लगाकर समस्त सम्मान्य भक्तगण तक को सम्मिलित किया।

भगवान व्यंकटेश अपने पृथक सिंहासन पर विराजमान हुए थे। उनकी बगल में लक्ष्मीजी अपने समस्त शृंगारों से सज्जित विराजमान थीं। उनके पास ही चढ़ती-उतरती सीढ़ियों में दोनों ओर मिलाकर, उनके जन्म-वर्ष के पांच हजार वर्ष के हिसाब से पांच हजार दीपक प्रज्वलित थे और मानो इन प्रकाशमान दीपकों के मूल में जड़ी हुई हो, ऐसी उदाली, गर्भद्वार के अंबर के ऊपर शोभायमान थी।

मुख्य मंदिर के द्वार खुले हुए थे। जिससे भावुकजन श्री व्यंकटेश के दर्शन कर सकें। मुख्य मंदिर को छोड़कर निकट ही छोटे दालान के नीचे, पहले एक छोटा-सा रंग-मंडप बनाया गया था। स्फटिकों और मरकतों से

जड़े हुए रंगमंडप में एक ओर आचार्य श्री महाप्रभु का सुखासन था। और दूसरी ओर होयसलराज का धरती पर बिछाया हुआ कमख़ाब का आसन था। उसके पीछे छाती-बराबर ऊँची बँधी हुई कनात थी, जिससे अपात्र और सामान्य प्रजा राजपुर के नारी-समाज को विस्फारित नेत्रों से न देख सके। वहाँ पर होयसलराज के रनिवास के स्त्रीसमूह की बैठक थी। उसमें राजा की महारानी थी; आयु में युवती, परन्तु वैधव्य-प्राप्त उनकी बहन थी। उनकी राजकन्याएँ माला और अम्बा थी। वहीं, महामन्त्री का नारी-समाज भी बैठा हुआ था।

विशाल रंग-मण्डप के मध्य में, थोड़ा खुला हुआ एक चौक था और उसको चारों ओर से रस्सों से घेर लिया गया था। उसके चारों ओर सामान्य जनसमूह बैठा हुआ था। भगवान के जन्म में अभी थोड़ा समय बाकी रहा था। समस्त समुदाय अभी मानो देवकीजी की प्रसव-वेदना में सहदुखी बना, निम्न, आतुरवदन और चिन्तातुर-सा बैठा था।

होयसलराज ने महाप्रभु श्री रंगमठ के कुलपति वेदान्तदेशिक को दोनों हाथ जोड़कर अभिवादन किया और आचार्यश्री ने अपने दोनों हाथ ऊँचे कर के आशीर्वाद दिया। इसके बाद खड़े होकर होयसलराज ने आवाज़ दी—"श्रीकण्ठ!"

दण्डनायक श्रीकण्ठ आगे आया और दोनों हाथ जोड़कर खड़ा हुआ: "कृपानाथ।"

"उत्सव प्रारंभ करो।"

श्रीकण्ठ सिर झुकाकर लौट गया। परन्तु यह क्या आश्चर्य? वह तो भक्तों के बीच में से निकलकर बाहर चला गया! दर्शकों के समुदाय के बिल्कुल मध्य में एक रास्ता बनाया गया था। प्रत्येक आगन्तुक, भगवान का दर्शन बिना किसी पर्दे के, खुले रूप में कर सके—केवल इसी उद्देश्य से महामंडप की तीनों दिशाओं के ठीक मध्य में मार्ग बनाने के निशान लगाए गए थे। ऐसी दो गलियाँ भगवान के दाएँ और बाएँ हाथ की ओर छोड़ी गई थीं, और एक बिल्कुल सम्मुख। और वहाँ एकाएकी गोपुर के महाद्वार पर

खड़े होनेवाले भक्तजनों को भी, श्री व्यंकटेश का स्पष्ट दर्शन हो सकता था। श्रीकण्ठ इसी गली में होकर निकला था।

निश्चित कार्यक्रम से पृथक, कुछ नवीन घटना घटनेवाली है, लोगों को ऐसा लगा। कार्यक्रम तो यह घोषित किया गया था कि जन्म-समय तक सारे दर्शकगण देवकी से प्रार्थना करें। भजन करें और इस पर भी जन्म-समय में यदि विलम्ब हो तो, भगवान के नाम की धुन लगाएं।

परन्तु नियतक्रम से अलग, आज कुछ नूतन ही बनाव बननेवाला है, ऐसा, होयसलराज की आज्ञा से सबको अनुभव हुआ। और नया क्या होनेवाला है, यह देखने की उत्कंठा से सभी आतुर से दिखाई देने लगे और जिधर श्रीकण्ठ गया था, उस ओर बारम्बार देखने लगे।

परन्तु दर्शकों को लम्बी प्रतीक्षा नहीं करनी पड़ी।

थोड़ी देर मे श्रीकंठ लौट आया। और उसके पीछे तीन सैनिक पांड्य सोमैया को, हाथों और पैरों में रस्सी बांधकर ला रहे थे।

पांड्य सोमैया को देखकर, समस्त भक्त समुदाय क्षणभर के लिए आश्चर्यचकित-सा बन गया था। दूसरे ही क्षण, सारी सभा में प्रचण्ड उप-हास के अनेक कोलाहलों का एक महा कोलाहल उठ खड़ा हुआ। यह महा कोलाहल महा मंडप के प्रचण्ड वातावरण में गूंज उठा और उसकी ध्वनियां प्रत्येक गांव के अपने मन्दिर के शिखर और गोपुर के शिखर पर मानो गूंज उठ.।

जनसमुदाय के उपहास करने का कारण स्पष्ट ही था, क्योंकि पाड्य सोमैया को साधारण, बाजारू वैश्या के वस्त्र पहनाए गए थे।

श्रीकंठ ने पाड्य नायक सोमैया को बीच के खुले चौक में लाकर खड़ा किया।

होयसलराज ने आज्ञा दी: 'पांड्य सोमैया ! सबसे पहले परम भगवान विष्णुस्वरूप श्री व्यंकटेश के चरणों में सिर झुकाओ। वे तुम्हारे विजेता चक्रवर्ती के कुलदेव हैं। अतः आज से वे तुम्हारे भी कुलदेव हुए। उनके पैर छुओ।'

अपनी आंखें बंद करके पांड्य नायक सोमैया जैसा का तैसा खड़ा रहा।

'सोमैया !' मैं तुम्हारा चक्रवर्ती तुम्हें आज्ञा दे रहा हूँ। मेरी आज्ञा सुनो। पहले मेरे और उसके वाद मेरे स्वामिभक्त सामन्तों के कुलदेव व्यंकटेश के आगे नतमस्तक हो। जगद्पिता और जगद्गुरु को अर्घ्य देने के वाद मैं तुम्हारा चक्रवर्ती वना हूँ, इसलिए मेरे पैर भी छुओ। और इसके वाद तुम्हारे मान और शोभा के अनुरूप, हमारे शूर सामंतों को सोहे, ऐसे वीरोचित वस्त्र पहन लो और तमिल देश में तुम्हारा अपना जो मंडल था, वह विजेता के रूप में सर्वांग हमारा हुआ है, उस मण्डल का तुम और तुम्हारे वंशाधिकारी हमारे सामन्त के रूप में उपभोग करो।

पांड्य चुप रहा। उसके शरीर और मुख की मुद्रा से तो लग रहा था कि उसने होयसलराज का एक भी शब्द जैसे नहीं सुना है।

ठीक व्यंकटेश के सम्मुख ही उसे खड़ा किया गया था और वह अपनी आँखें वन्द करके खड़ा था। आँखों के साथ मानो उसने कान भी बं कर लिए हों।

होयसलराज के चेहरे पर क्रोध की लालिमा फैलने लगी।

'श्रीकंठ ! चक्रवर्ती का आदेश वन्दी को समझाएँ।' वीर बल्लाल ने आदेश प्रदान किया।

'राजकैदी'—श्रीकंठ ने निकट आकर, सारी सभा सुन सके, ऐसे स्वर में कहा; चक्रवर्ती महाराज की आज्ञा तुमने सुनी, अव इसका करो। पराजित सामंतों को यह पूर्व परम्परा से ही ज्ञात होना चाहि उनका इस समय क्या धर्म है। उसी परम्परागत आर्य धर्म का सदा; सामन्त चक्र चूड़ामणि महाराज होयसलराज ने तुम्हारे प्रति वि यह कुछ नई वात नहीं। अनादि काल से दक्षिणापथ में विजेता जै आए हैं, महाराज भी तुम्हारे साथ वैसा ही व्यवहार कर रहे तुम्हारा कर्तव्य यह है कि इस देश में अनादिकाल से युद्ध में परा जिस परम्परा का पालन करते आए हैं, तुम भी उसका पालन क

सोमैया वोला नहीं—जैसे उसने कुछ सुना ही नहीं। हो शरीर पर छा रही सुर्खी को ध्यानपूर्वक देखकर श्रीकंठ ने कहा—'सामंत ! तुम व्यर्थ समय नष्ट कर रहे हो। जो सम

परम्परागत आचारोपचार के साथ थोड़े से समय में पूर्ण होना चाहिए। इसमें तुम व्यर्थ ही समय बरबाद करा रहे हो। तुम्हारे इस अपमानजनक वेश को दूर कराने की क्या तुम्हें कोई उतावली नही है ?'

सोमैया की आँखें अभी भी बन्द ही थीं। परन्तु उसके कण्ठ में से तिरस्कार भरी हँसी निकली, ऐसी परिस्थिति में, ऐसे संयोग में कोई भी मनुष्य ऐसी तिरस्कारपूर्ण हँसी हँस सकेगा, ऐसा मानने में किसी को भी नही आया।

श्रीकंठ ने कहा : 'ऐसे समय परिस्थिति और प्रसंग पर क्या तुम्हें हँसना योग्य है ? अब तुम्हारे ऐसे रूप पर, हम हँसें या सभी हँसें यह अच्छा भी लगता है और अनुकूल भी है, परन्तु तुम हँसते हो ? सामन्त हँसो नही। समझो, चक्रवर्ती की ओर उचित शील शालीनता का प्रदर्शन करो। महा-प्रभुसर्वज्ञ श्रीआचार्य की ओर सद्‌बुद्धि दिखाओ। जगत के पालक पिता श्रीव्यकटेश भगवान की मर्यादाओं का पालन करो।'

सुदूर वनों की टेकरियों के ऊपर से जैसे पत्थर लुढकते हों, इस प्रकार गडगड़ाता हुआ स्वर सोमैया के कण्ठ से निकला : और फिर वह बोला : 'हँसूँ नही तो और क्या करूं ? क्या तुम भी मेरी तरह ही सामंत बने हो ?'

'हूँ ?' श्रीकण्ठ अभिमान पूर्वक बोला, 'मैं तुम्हारी तरह कोई पराजित नहीं। मैं तो इसी देश का हूँ, राज्य की समस्त सेना का सर्वप्रथम दण्डनायक हूँ। मेरा नाम है श्रीकण्ठ !'

- 'चिरंजीवी हो, श्रीकण्ठ दण्डनायक !' आँखें मूँद कर खड़े हुए सोमैया का, पृथ्वी के ऊपर बिजली गिराता, अगारे बरसाता और चीरता हुआ स्वर सभा ने सुना—'चिरंजीवी हो दण्डनायक ! मेरी पराजय करने के लिए क्या आप ही पधारे थे ?'

इस संकेत से श्रीकंठ का चेहरा मेघवर्ण-सा श्वेत बन गया। पचास हजार सेना के साथ सोमैया को बदी बनाने के उसके आठ मास के निष्फल प्रयास पर सोमैया ने क्रूर कटाक्ष किया था। और प्रायः बड़े-बड़े महोत्सव सभाओं, सम्मेलनों मे, जिस प्रकार दर्शको के मन सदा प्रसन्न होते हैं, बहुतों के मन में वैसा आनन्द का भाव नही था, अतः सोमैया के शब्दों के

बाद, उनके चेहरों पर जो थोड़ी बहुत मुस्कराहट आई थी, वह भी लोगों ने तुरन्त ही दबा ली।

परन्तु श्रीकण्ठ उन होठों और अंगों के संचलन को तुरन्त ही ताड़ गया, उससे कुछ छिपा न रह सका !

'यह जो हो, सो हो, परन्तु तू पराजित है। पराजित दशा में खड़ा है। चक्रवर्ती का आदेश है कि तेरे साथ पराजित-सा व्यवहार किया जाए।'

सोमैया चुप रहा। होयसलराज अपने आसन के ऊपर से महाप्रभु सर्वज्ञ की ओर एकटक निहार रहा था।

श्रीरंग मठ के कुलपति ने स्पष्ट स्वर में कहा : "वीर शैव हठीले ही होते हैं। म्लेच्छों के समान ही हठी और दुराग्रही होते हैं। यह वीर शैव—यह भ्रष्टपंथी, पथभ्रष्ट, धर्मभ्रष्ट मनुष्यदेह वितण्डावाद में गोते खा रही है। जय-पराजय का व्यवहार, चक्रवर्ती को सिर झुकाने का व्यवहार, इहलौकिक है, सांसारिक है। और फिर इसका पालन तो बाद में भी हो सकता है। समस्त जनसमुदाय के मध्य बंदी यदि ऐसा न करना चाहे, तो राजमहल के सभाभवन के एकान्त में भी हो सकता है, परन्तु परम कृपालु परमेश्वर श्रीमन्नारायण व्यंकटेश की वंदना करने में तो मानापमान, जय-पराजय और वेश-भूषा का कोई प्रश्न ही नहीं।"

वेदान्तदेशिक आचार्य का शांत-गंभीर और निर्विकारी स्वर सभी सभाजनों के ऊपर छा रहा था। अपने प्रवचन का मर्म सभी उपस्थित दर्शक समझ सकें, इस उद्देश्य से आचार्यश्री क्षण-भर ठहरकर फिर बोले:—"यह मनुष्य तमिल का सिंह कहलाता है, यह सचमुच सिंह-जैसा ही है। जैसे सिंह अपरिचित वातावरण में जगतमात्र को अपना शत्रु मानकर, आँख बंद कर लेता है, उसी भाँति यह मनुष्य भी अपनी आँखें बन्द कर के खड़ा है। और हम सब को, इस सभासमूह को अपना शत्रु मान बैठा है। हम कोई तेरे शत्रु नहीं हैं। मनुष्य-समाज भले ही पृथक-पृथक जात-पाँत में बँटा हुआ हो और अपने-अपने पूर्व-संचित कर्मों के अनुसार ऊँच-नीच योनियों के कर्म करता हुआ, जीवित हो, परन्तु मानवमात्र जगत्-पिता श्रीमन्नारायण के सामने तो एक ही समान है। सब उसी के बालक हैं।

उस भगवान का दर्शन करने में मान-अपमान कैसा ? उसके चरणों में सिर झुकाने में क्या बाधा ? परन्तु यह अपनी आँखें खोल कर देखे, तभी तो न ? श्रीमन्नारायण की अवहेलना करके पाप की पोटली बांधनेवाले ओ मनुष्य ! जरा तेरी आँखें तो खोल और इस समय तू किसके दरबार में खड़ा है यह तो देख ! आँख खोल ओ मानव ! और यह कोई चक्रवर्ती या विजेता का सभामंडप तो नहीं, यह तो श्रीमन्नारायण का अपना ही उत्सव है।"

प्रशांत, निर्लेप, निर्विकार और करुणा से भरी हुई यह आवाज सारी सभा को मुरली की मीठी तान की तरह डोलायमान कर गई। परन्तु वन्दी के ऊपर से तो यह स्फटिक के ऊपर पानी की भाँति बह गई।

एकाएक सभा के पिछले भाग में कोलाहल हुआ। कुछ शोरगुल और दौड़धूप-सी दिखाई पड़ी। गोपुर के मुख्य द्वार में से एक मनुष्य, पूरी तेजी के साथ आगे बढ़ा चला आ रहा था। उसकी तलवार के साथ की म्यान इधर-उधर झूल रही थी। किसी को उसकी म्यान की चपेट लगी। किसी का हाथ इसके उतावले हाथ-पैर के नीचे कुचल गया। किसी को उसके पैर की ठोकर लगी। किसी के असावधान माथे के ऊपर, उसका भारी बोझवाला हाथ पड़ा। खेतों में भागता हुआ साहिल (मिट्टी फोड़) जिस प्रकार मिट्टी के ढेलों को उड़ाता हुआ दौड़ता हो, इसी प्रकार, यह आसपास की मानव-मेदनी को चारों ओर उड़ाता, हिलाता, गली के बीच में से सांस भरता हुआ, दौड़ता आता था।

ऐसी सभा मे, ऐसे सम्भ्रांत दर्शकों के सम्मुख, इस प्रकार असभ्यता से दौड़ते आते मनुष्य की ओर देखकर श्रीकंठ दण्डनायक कड़क आवाज से समझाता हुआ बोला:—'संगमराय ! संगमराय ! यह क्या करते हो तुम ? परन्तु श्रीकंठ को भी एक ओर धकेल कर, संगमराय सीधा होयसलराज के पास पहुँचा। और राजा के सम्मुख हाथ जोड़कर बैठ गया.

"संगमराय: कुछ होश है कि नहीं ? पहले कुलगुरु आचार्य श्री को प्रणाम करो।"

"कुलगुरु पीछे और आचार्य पीछे, पहले तो मुझे आपसे काम है।"

'चक्रवर्ती से उसके सेवक को इसप्रकार बात नहीं करनी चाहिए।"

राज यह कहना चाहता था। परन्तु संगमराय के क्रोध से तमतमाते
। देखकर, उसने तत्काल कुछ कहने या करने का विचार मन से
डाला।
वैसे संगमराय ने यह अवसर भी नहीं दिया। हृदय में थपेड़े मारते हुए
के सागर में महान् प्रयत्न करके मलयानिल भरना चाहता हो, ऐसी
वाज़ में उसने कहा :

"महाराज ! महाराज ! यह क्या करते हैं आप ? क्षात्रधर्म का य
पमान ! यदुकुल परम्परा की यह अवहेलना ! आपने मुझे क्या वच
दिया था ?"

"मैंने तुम्हें कोई वचन दिया था ?"

"याद करो महाराज ! कसाद किले के बंदीगृह में से बुलवा कर, आपने
मुझे आज्ञा प्रदान की थी कि जैसे भी हो सके पांड्यवीर सोमैया को तू
पकड़-ला। उस समय आपसे मैंने क्या मांगा था ? मैंने वचन माँगा था
महाराज कि पाण्ड्य सोमैया वीर पुरुष हैं। आज जब कि कलियुग के
कालयवन एवं तुर्कों के दल के दल चारों ओर घूमते हैं और बड़े से बड़े
राजमुकुटों के साथ गुल्ली-डंडे खेल रहे हैं, ऐसे समय भी म्लेच्छों के आगे
न झुका हो और रक्त की अन्तिम बूंद रहते न झुकनेवाला हो, ऐसा ए
मस्तक तो दक्षिण पथ में पाण्ड्य सोमैया का है। आपने मुझे गिरफ्तार क
को कहा। आप चक्रवर्ती हैं। आप शासक हैं; मैं सामन्त हूं, सेवक हूं। कि
लिए आप इस वीर नर को पकड़वाना चाहते हैं ? यह पूछना मेरा
नहीं था।"

"सत्य है, यह काम तेरा नहीं था, तब भी नहीं था और अब भी
है। तुम देखते नहीं हो, जानते नहीं हो कि तुम महाप्रभु के प्रवचन में
उपस्थित कर रहे हो।"

"महाराज ! महाप्रभु तो अनेक प्रवचन करेंगे और अनेक स्
प्रवचन करेंगे। मेरी बात सुनें ! आपके, वीर सोमैया नायक को बं
का कारण पूछने का काम मेरा नहीं, यह बात तो ठीक है, परन्
मेरा है और इसके साथ कैसा व्यवहार रखा जाए, यह काम भ

मैंने आपके पास से, दोनों हाथ जोड़कर वचन मांगा था कि मैं अपने प्राण देकर भी आपकी आज्ञा को शिरोधार्य करता हूँ परन्तु मैं आपके सम्मुख उपस्थित करूँ, उस समय आपको उसका मान करना चाहिए। उसकी प्रतिष्ठा की रक्षा करनी चाहिए। आपको ऐसे वीर पुरुष के अद्भुत पुरुषार्थ और अप्रतिम शक्ति तथा अखंडित सम्मान को शोभा दे, ऐसा स्वागत करना चाहिए; आप को याद है महाराज !"

महाराज मौन रहे। वचन देने की इन्कारी कर दें, ऐसा नहीं हो सकता था तथा वचन भंग हुआ है, यह तो सारी सभा के सम्मुख ही स्पष्ट था।

'आपकी महादेवी, महारानी के सामने यह वचन दिया गया था।' संगमराय ने ऊँचे होकर नज़र दौडाई—"अरे ! महादेवी ? आप यहीं हैं; फिर भी ऐसे एक वीर का अपमान आप कैसे सहन कर रही हैं ? क्या आपके हाँ कहने से मैंने इस वीर पुरुष को यहाँ ले आने का भार सिर पर नहीं उठाया था ? और क्या आपकी उपस्थिति में ही, इस वीर, और सदा अपना मस्तक ऊँचा रखनेवाले नर का योग्य सम्मान करने का वचन मुझे महाराज ने नहीं दिया था ? महादेवी ! आप क्षत्राणी हैं ! और पुरुष का पैर जब फिसलता है, उस समय वीरोचित परम्परा निभाने का उत्तरदायित्व नारी का होता है। महादेवी बोलो ! श्रीमन्नारायण व्यंकटेश की उपस्थिति में कुछ तो कहो। आज तो तुम भगवान का जन्मदिवस मनाने को सम्मिलित हुई हो और क्या यह जयन्ती इस प्रकार मनाई जाएगी ?"

सारी सभा कावेरी के कल-कल निनाद के समान वाणी के इस अवि-च्छिन्न प्रवाह को सुन रही थी। संगमराय के एक-एक शब्द पर, सभी महाराज और महारानी के सामने मुड़-मुड़ कर देख लेते थे। देखने के मार्ग में बँधी हुई कनात के कारण जो महारानी को नहीं देख सकते थे, वह घुटनों के बल खड़े होकर देखने की कोशिश करने लगे।

और सभी ने आश्चर्य के साथ इतना देखा कि चक्रवर्ती की महारानी होंठ दबाकर, पृथ्वी की ओर देख रही थीं और महाराज के वदन पर छा रही क्रोध और चिढ़ और अप्रसन्नता की रेखा राजसी क्रोध में बदलती जा रही

"संगयराय !" महाराज ने कहा : "तुम्हारे पौरुष और पराक्रम का मुझे ज्ञान है और सारी सभा को भी ज्ञान करा दिया, यह भी अच्छा किया।

"राजनैतिक चर्चाओं में स्त्रियों को लाने की कोई आवश्यकता नहीं : तुम्हारी वीरता का इनाम तुम्हें मिल गया है, तुम्हारे पुराने अपराधों के लिए तुम्हें क्षमा प्रदान कर दी गई है। तुम्हें योग्य जागीर भी दे दी गई है, अब तुम जाओ और तुम्हारा यह पागलपन मैं भूल जाऊँगा।"

श्वेत कार्पास के सामान क्षत्रिय खड़ा हुआ, एक दृष्टि उसने व्यंकटनाथ वेदान्तदेशिक आचार्य की ओर डाली। इस दृष्टि में अजीबता थी, उत्कंठा थी, प्रतीक्षा थी; परन्तु वेदान्तदेशिक महाराज निरंतर इसके सम्मुख भाव-रहित दृष्टि से अनिमेष देखते रहे।

दूसरी दृष्टि उसने श्रीमन्नारायण व्यंकटेश की मूर्ति की ओर दौड़ाई। अभी-अभी मूर्ति के मुख में से कोई वचन निकलेगा, इस प्रकार की उसे आशा थी, परन्तु वह पूरी न हुई। मूर्ति अपने रत्नजड़ित शृंगार में किसी भाव का प्रदर्शन किए-बिना समाधि लगाए रही।

सिर धुन कर पीठ फेर कर वह शीघ्रता में चल दिया। पांड्यनायक सोमैया के पास जाकर, खड़ा हुआ। थोड़ी देर विवश-सा होकर उसे देखता रहा।

और फिर उसके पैर छूकर, भरी हुई आवाज में बोला : 'वीर पुरुष ! मुझे क्षमा कर। तेरी क्षमा के बिना, इस संसार में अब मेरे लिए कोई सहारा नहीं।'

पांड्य-नायक सोमैया ने पहली बार आंखें खोलीं और टकटकी लगाकर वह संगमराय को देखने लगा। सारी सभा सुन सके। ऐसी धीर-गम्भीर वाणी में उसने कहा—"यदि मेरी क्षमा से तुम्हें तनिक भी संतोप मिल सके तो, मैं तुम्हें क्षमा करता हूँ। घोर कलियुग छाया है। हे वीर पुरुषो ! क्या वैष्णव, क्या शैव, क्या जैन, क्या अन्य जाति-पाँति के वीरो ! दक्षिणापथ भक्षण कर जानेवाले तुर्कों के दल विनाश के घोर पारावार की भाँति गरज रहे हैं और हम अभी भी वीरों का सम्मान करना नहीं सीखे !"

कुछ देर शांति रही। संगमराय के सिर पर, हाथ रखकर सोमैया ने कहा—"मैं जानता हूँ कि मैं यहाँ से जीवित नहीं लौट सकूँगा। लेकिन, बीरवर, मरते दम तक मैं तुझे नहीं भूल सकूँगा! इस समस्त सभा में दर्शनीय व्यक्ति एक तू ही है। मृत्यु की मेरी कामना की पूर्ति में बीर शैव मेरी सहायता करेंगे। जा, सुखपूर्वक जा, अपने मन को संतोष दे। मेरी मृत्यु का उत्तरदायित्व महाकाल की शक्ति पर है, तुझ पर नहीं।"

संगमराय उठ खड़ा हुआ। होयसलराज की ओर मुड़ा। धीरे-धीरे म्यान से तलवार निकाली। श्रीकंठ पाँच पग पीछे हट गया। घुटने पर रखकर अपनी तलवार के दो टुकड़े किए और उन्हें होयसलराज की ओर फेंक कर वह श्रीकंठ के पास जा-खड़ा हुआ—"दण्ड नायक! मुझे गिरफ्तार कर लो! मैं राजबंदी हूँ।" और एक लम्बी पुकार में उसने कहा—

"हरिहर! अपनी माँ का ध्यान रखना!"

५ : हरिहर

श्रीकंठ ने होयसलराज की ओर देखा। फिर संकेत-द्वारा दो सैनिकों को वुलाया और संगमराय को उन्हें सौंप दिया। सैनिक संगमराय को लेकर चले गए।

यह सभा-मंडली राजसभा नही थी। यह तो भागवतों की मंडली थी और आनन्दकंद श्री कृष्णचंद्र का जन्मोत्सव मनाने के लिए एकत्र हुई थी। वैष्णव सम्प्रदाय—भागवत धर्म की विजयपताका अव तो सेतुवंधु रामेश्वर तक फहरा रही है : इस विचार-कल्पना की तृप्ति का अनुभव करने के लिए एकत्र हुई थी। आज तक भागवत धर्म कावेरी नदी के उस पार तमिल प्रदेश में लिंगायतों के वीर शैव धर्म के समक्ष, आगे न वढ़ सका था। आज दो सौ वर्ष पश्चात् चक्रवर्ती, सप्त सामन्त चक्र चूड़ामणि होयसल-राज वीर वल्लाल देव तृतीय ने इस स्वप्न को प्रत्यक्ष कर दिखाया। यह स्वप्न-सिद्धि की परम मंगल घड़ी थी कि आज तमिलनाड के पांड्य संघ का धुरंधर पांड्य सोमैया पराजित दशा में खड़ा था। वह हार गया था। हार पर वंदी वनाया गया था। और अनादि काल की परम्परा-अनुसार उससे पराजित प्रतिपक्षी जैसा व्यवहार किया जा रहा था। इस व्यवहार में परम्परागत प्रणाली से वाहर की ऐसी-कोई नई वात न थी कि संगमराय-जैसे साधारण कुरुम्वा (खेतिहर राजपूत) सप्त सामन्त चक्र चूड़ामणि का विरोध करता ?

हाँ, होयसलराज वीर वल्लाल देव अभी सप्त सामन्त चक्र चूडामणि न बन पाए थे। लेकिन वे स्वयं भी अपनी इस स्थिति से अवगत थे। काम्पिली, पेनुगोन्डा, तिरुपतिमलाई, चेरा और वेन के पांच नरेंद्रों को उन्होंने अपने अधीन कर लिया था। उनके राजमुकुट आज भी राज्य के भांडारगृह में रखे हैं। चक्रवर्ती पदप्राप्ति की अभिषेक-विधि के लिए सात सामन्तों के राजमुकुटों की वरमाला आवश्यक होती है। इस समय भांडारगृह में पांच राजमुकुट तैयार रखे थे, दो की कमी थी। इनमें से भी एक यानी छठा पाड्यमय के धुरंधर सोमैया का मुकुट था। और सातवें की प्राप्ति के लिए वीर वल्लाल देव ने वारंगल के विरुद्ध युद्ध-घोषणा कर दी थी।

अतएव, वीर वल्लाल देव सप्त सामन्त चक्र चूड़ामणि ही कहे जाएंगे। उनके सामने वारंगल का काकतीय यादवराज प्रतापरुद्र किस खेत की मूली था! और उसके विरुद्ध देवगिरि के सूबा ने चढ़ाई कर दी थी और उसे दिनरात परेशान कर रहा था। अब ज्योंहि म्लेच्छ सूबा मलिक उलुग खाँ लौटा कि तुरन्त ही होयसलराज प्रतापरुद्र पर आक्रमण करनेवाले थे! और तब, जिसकी रीढ़ म्लेच्छों से लड़ते-लड़ते टूट गई है, ऐसा प्रतापरुद्र क्या मैदान में खड़ा रह सकेगा! अब तो यह मान लीजिए कि वैष्णव-समुदाय-भागवत धर्म-श्रीरंग मठ का शासन कृष्णा नदी की इस पार से सेतुबंध रामेश्वर तक प्रचलित हो गया है। अहा हा! इतिहास में पहली बार वैष्णव धर्म की विजय वैजयंति निष्कलंक रूप में फहराएगी। सौ वर्ष पूर्व, भगवान नारायण के अवतार के समान, भगवान रामानुज प्रभु ने जो स्वप्न देखा था, वह, आज उनके नाती सर्वज्ञ भगवान श्री वेदान्तदेशिक आचार्य श्रीरंग मठ के कुलगुरु के द्वारा साक्षात् सिद्ध हो रहा था। धन्य आचार्य! धन्य उनके प्रथमोत्तम अनुयायी अर्थात् बल्लाल तृतीय!

और ये कुरुम्ब कौन थे? जन्म इनका यदुवंश में हुआ था, इसलिए इन्हें क्षत्रिय कहना पड़ता है, वरना कर्म के कारण, तो ये कुरुम्ब ही कहे जाएंगे।

जिस समय संगमराय को श्रीकंठ के सैनिक ले जा रहे थे, [illegible]

दोनों ओर वैष्णव साम्प्रदायिक समाज में कुछ हलचल मची थी। धीमे वचनों में किए गए कटु व्यंगों का शोर इस प्रकार उठ रहा था, जिस प्रकार, धरती की गहराई में शेषनाग अपनी सरसराहट पर उठता है।

संगमराय ले जाया जा रहा था। श्री वेदान्तदेशिक महाराज यह देख रहे थे। उनका चेहरा मोह रहित और शान्त था। वीर होयसलराज आधे तिरस्कार और आधे चिढ़ भरे लोचनों से कुलगुरु सर्वज्ञ श्री को देख रहे थे, मानो आगे के काम के लिए, वे संगमराय की विदाई और सर्वज्ञश्री की आज्ञा चाहते हैं।

अचानक सभा के एक ओर से मेघगर्जन-सा स्वर उठा—'सावधान!'

देवमंदिर के रंगमंडप में मानो महाशंखघोषणा हुई हो, उस प्रकार यह स्वर, सबके लिए विस्मयकारी था। सहज ही सबका ध्यान उसकी ओर गया। एक हाथ के झटके से श्रीकंठ के दोनों सैनिकों को हटाकर और दूसरे हाथ में तलवार लिए, पच्चीस वर्ष का एक युवक आगे बढ़ आया।

'हरिहर!' संगमराय ने कहा —'तुझे मैंने कहा था न, अपनी मां की देखभाल करना। मेरी चिन्ता न कर। घर लौट जा।'

"पिताजी, इस समय मैं न केवल अपनी मां की देखरेख करने जा रहा हूँ, वरन अपने पूर्वजों की भी चिंता करने जा रहा हूँ।"

इसके बाद लम्बी देहवाला वह नौजवान इस प्रकार आगे बढ़ा, मानो एक-एक कदम से धरती को नाप रहा है। उसके चेहरे पर कठोर निर्णय और दृढ़ता की चमक थी।

संगमराय के पुत्र 'कठोर हर' को लोगों ने मार्ग दिया। जन्मोत्सव और विजयोत्सव देखने के लिए आनेवाला भागवत दर्शक-समाज वीरोत्सव देखने का अवसर आ पड़ने पर क्षणभर के लिए क्षुब्ध हो गया।

वह आगे और आगे बढ़ा। नज़र उठाए-बिना वह सोमैया के पास से गुज़र गया। आग की दो चिनगारियों जैसी अपनी आँखों से उसने श्रीकंठ को देखा। और श्रीकंठ इस तरह एक कदम पीछे हट गया जैसे इन आँखों से झुलस गया है।

भगवान कुलगुरु और होयसलराज के सिंहासन के सामने जाकर नौजवान हरिहर खड़ा हो गया। विस्मय, रोष और अवहेलना से परिपूर्ण

होयसलराज से उसने पूछा—"मैं पूछता हूँ, क्या यह सभा—राज सभा है ?"

होयसलराज के जवाब देने के पहले ही भगवान सर्वज्ञ श्री वेदान्तदेशिक महाराज ने प्रशान्त वाणी में कहा—'श्रीमन्नारायण के दरबार में यह भागवत सभा है और भागवतजन्म और भागवत-विजय मनाने के लिए एकत्रित हुई है। केवल कायर और पामर व्यक्ति ही इस देव सभा में अपने शस्त्रों का प्रदर्शन करते हैं।'

बाप और बेटे दोनों पर यह कटाक्ष था। बहुत ही धीमी और निर्भाव वाणी में कहा गया था इसलिए इसकी चोट गहरी थी।

इस कटाक्ष पर सारी सभा हँसने जा रही थी। श्रीकंठ के होठों तक अट्टहास आ चुका था कि तभी वेदान्तदेशिक महाराज के कथन को दोनों हाथ जोड़कर स्वीकार कर, हरिहर ने होयसलराज की कमर में झूलती तलवार की ओर उँगली से इशारा करते हुए कहा—'श्रीमन्नारायण के दरबार में क्या सभी व्यक्ति कायर और पामर हैं, गुरुदेव !'

हरिहर का यह वक्र कटाक्ष होयसलराज को तमाचे-जैसा लगा। दाँत पीसकर वे खड़े हो गए और उनका हाथ नागिन-सी तलवार पर जा पड़ा।

'ठहरिए होयसलराज ! श्रीमन्नारायण की इस प्रतिमा के सामने खड़ा रहकर, मैं यदुकुल वंशज आप-जैसे यदुकुलवंत से यदुकुल परम्परा के अनुरूप द्वन्द्व युद्ध की माग करता हूँ।—कठोर हर ने अपने उपनाम को सार्थक करते हुए कहा। फिर भयंकर कटाक्ष मिश्रित अट्टहास किया और कहने लगा 'यदुकुलभूषण वीर सामन्त चक्र चूडामणि' की उपाधि धारण करनेवाले बल्लाल यादव यदि भूल न गए हो तो, उन्हें तो 'आभीर' के लिए पुकारा जाएगा।

आभीर* की माँग और वह भी होयसलराज के सामने। आभीरों की

*आभीर—समान सामाजिक श्रेणि के व्यक्तियों के मध्य सच और झूठ का निर्णय करने के लिए आभीरों का व्यवहार सर्वमान्य था। इस व्यवहार का उल्लेख कई विद्वान इतिहासकारों ने किया है। डाक्टर सालाटोर; श्री रावर्ट सेवोल और नीलकंठ शास्त्री आदि ने प्रचलित आभीर का उल्लेख किया है। डाक्टर सालाटोर ने सामयिक दान-पत्रों, और शिलालेखों के पर्याप्त अध्ययन पर इस विषय का उल्लेख किया है।

एक मर्यादा—सचझूठ का निर्णय करने के लिए, जब कोई आभीर ललकारता है तो, जब तक फैसला नहीं होता, तब तक राजसत्ता, धर्मसत्ता और प्रजाजन सब मौन बने खड़े रह जाते हैं।

आभीर की मांग वाजिब है या नहीं इसका फैसला तो पहले ही कर लेना चाहिए। यदि मांग वाजिब है तो, उसे पूर्ण करना पड़ेगा।

धर्मोत्सव और विजयोत्सव मनाने के लिए आए हुए समाज का सिर मानो किसी पथरीली दीवार से टकराया !

भगवान सर्वज्ञश्री बोले—'जो भगवत् महिमा नहीं समझते, जिन्हें धर्म का ज्ञान-गौरव नहीं, ऐसे पतितों के लिए यह स्थान नहीं है।"

सब लोग देख लें, इस प्रकार हरिहर ने लापरवाही से आचार्य की ओर पीठ फेर ली। फिर वह होयसलराज से कहने लगा—'वीर का उपनाम धारण करनेवाले, अपने को सामन्त चक्र चूड़ामणि कहलानेवाले और यदुकुल में जन्म लेने का दावा करनेवाले बल्लाल यादव का भी, क्या यही निर्णय है ?'

सवाल सीधा था, साफ-साफ था। ऊपर-ऊपर इसमें विनय था, भीतर-भीतर भारी कटाक्ष भरा था। इस अपमान से जैसे यादवराज का सिर फटने लगा, लेकिन आचार्य श्री की नजरों ने उन्हें मूक आज्ञा दी। फिर अपने कंठ को, रोष के कारण फूट निकलने से रक्षित रखते हुए, होयसलराज कहने लगे—'होयसलराज ने आजतक युद्ध या ललकार के लिए किसी को निराश नहीं किया, लेकिन उससे आभीर—द्वन्द्व माँगनेवाले व्यक्ति की पद-मर्यादा समान होनी चाहिए। लड़के, तू अभी छोकरा है, तेरा बाप मेरा सामन्त है, मेरे अधीन है और मेरी आज्ञा का पालन करने के लिए वचन-बद्ध है। तेरा परिवार खेती पर जीता है। तेरी जाति कुरुम्बों की है। यदि तुझे आभीर-द्वन्द्व ही चाहिए तो जा किसी कुनबी या कलभ्र म्लेच्छ के पास।'

'यह सच है यादवराज ! मेरा और तुम्हारा पद समान नहीं। पर, मैं एक पराक्रमी पिता का पुत्र हूँ। एक ऐसे पुरुषार्थी व्यक्ति की संतान हूँ, जिसके पुरुषार्थ को चुरा लेने के लिए कर्नाटक के सामन्त चक्र चूड़ामणि को भी भीख मांगनी पड़ती है। सच बात है यादवराज ! मेरे पिता ने केवल म्लेच्छों

का ही मुकाबला किया है और उनके दाँत खट्टे किए हैं। मेरे पिता ने ही भयंकर कालयवन को दण्डित किया है। और इसके विपरीत आप—यादव-राज, श्रीमन्नारायण के परम-प्रथमोत्तम भागवत्, भगवान् सर्वज्ञश्री के प्रथम अनुयायी, भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के अनुज,—आपने तो म्लेच्छों के स्वामी कालयवन की सेवा ही की है। सच बात है, मेरा और आपका पद समान नहीं। आभीर के लिए आह्वान देने का मेरा अधिकार नहीं। समस्त सभा ने सुना है कि मैंने आपसे यदुकुल परम्परा द्वारा समाहित और स्वीकृत आभीर व्यवहार की माग की है। आपके द्वारा निर्वाचित कुलगुरु ने भी यह सब सुना है। हाँ, इन्हीं कुलगुरु ने साम्प्रदायिक गौरव प्राप्त करने के अपने उत्साह में, दिल्ली के सुल्तान के चरणों की सेवा करनेवाले होयसल-राज को सप्त सामंत चक्र चूडामणि के रूप में स्वीकार किया है, उसी प्रकार, सम्भव है कि आभीर-व्यवहार का भी ये कोई नया अर्थ निकाल दें।'

'पतित व्यक्तियों के प्रलाप धर्म-गौरव की हानि नहीं कर सकते'—आचार्यश्री भगवान वेदान्तदेशिक ने कहा। सभाजनों में कानाफूसी होने लगी कि आज आचार्य की सदा की स्वस्थ और तटस्थ वाणी में प्रकम्प फैला है।

दोनों हाथ जोड़कर, अपमानजनक विनम्रता पूर्वक हरिहर आचार्यश्री को बारम्बार प्रणिपात कर रहा था—'जी, परन्तु पतित का, मेरा और आपका, अर्थ भिन्न है।' इतना कहकर उसने सभा पर दृष्टि डाली। किसे क्या करना चाहिए, क्या कहना चाहिए, यह समझ में नहीं आ रहा था। सबको आभीर-परम्परा का परिचय था। यही परम्परा, इस प्रकार धर्म-गौरव सभा में सिर उठाएगी, किसी को इसका रंचमात्र अनुमान भी न था, और आज जब इसने सिर उठाया तो, सब लोग किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए!

जब कोई आभीर-व्यवहार की माँग करता है, तब उसे सिर्फ एक ही गुण के अभाव में अस्वीकार किया जा सकता है—'यदि पुकार में सामाजिक समानता नहीं है, तो उसे व्यवहार का अधिकार नहीं। समानता होने पर, यदि व्यवहार की पूर्ति नहीं की जाती तो, ऐसा व्यक्ति झूठा और 'कायर' कहा जाएगा।'

एक मर्यादा—सचझूठ का निर्णय करने के लिए, जब कोई आभीर ललकारता है तो, जब तक फैसला नहीं होता, तब तक राजसत्ता, धर्मसत्ता और प्रजाजन सब मौन बने खड़े रह जाते हैं।

आभीर की माँग वाजिब है या नहीं इसका फैसला तो पहले ही कर लेना चाहिए। यदि मांग वाजिब है तो, उसे पूर्ण करना पड़ेगा।

धर्मोत्सव और विजयोत्सव मनाने के लिए आए हुए समाज का सिर मानो किसी पथरीली दीवार से टकराया !

भगवान सर्वज्ञश्री बोले—'जो भगवत् महिमा नहीं समझते, जिन्हें धर्म का ज्ञान-गौरव नहीं, ऐसे पतितों के लिए यह स्थान नहीं है।"

सब लोग देख लें, इस प्रकार हरिहर ने लापरवाही से आचार्य की ओर पीठ फेर ली। फिर वह होयसलराज से कहने लगा—'वीर का उपनाम धारण करनेवाले, अपने को सामन्त चक्र चूड़ामणि कहलानेवाले और यदुकुल में जन्म लेने का दावा करनेवाले वल्लाल यादव का भी, क्या यही निर्णय है ?'

सवाल सीधा था, साफ-साफ था। ऊपर-ऊपर इसमें विनय था, भीतर-भीतर भारी कटाक्ष भरा था। इस अपमान से जैसे यादवराज का सिर फटने लगा, लेकिन आचार्य श्री की नजरों ने उन्हें मूक आज्ञा दी। फिर अपने कंठ को, रोप के कारण फूट निकलने से रक्षित रखते हुए, होयसलराज कहने लगे—'होयसलराज ने आजतक युद्ध या ललकार के लिए किसी को निराश नहीं किया, लेकिन उससे आभीर—द्वन्द्व माँगनेवाले व्यक्ति की पद-मर्यादा समान होनी चाहिए। लड़के, तू अभी छोकरा है, तेरा बाप मेरा सामन्त है, मेरे अधीन है और मेरी आज्ञा का पालन करने के लिए वचन-बद्ध है। तेरा परिवार खेती पर जीता है। तेरी जाति कुरुम्बों की है। यदि तुझे आभीर-द्वन्द्व ही चाहिए तो जा किसी कुनबी या कलभ्र म्लेच्छ के पास।'

'यह सच है यादवराज ! मेरा और तुम्हारा पद समान नहीं। पर, मैं एक पराक्रमी पिता का पुत्र हूँ। एक ऐसे पुरुपार्थी व्यक्ति की संतान हूँ, जिसके पुरुपार्थ को चुरा लेने के लिए कर्नाटक के सामन्त चक्र चूड़ामणि को भी भीख मांगनी पड़ती है। सच बात है यादवराज ! मेरे पिता ने केवल म्लेच्छों

का ही मुकाबला किया है और उनके दाँत खट्टे किए हैं। मेरे पिता ने ही भयंकर कालयवन को दण्डित किया है। और इसके विपरीत आप—यादव-राज, श्रीमन्नारायण के परम-प्रथमोत्तम भागवत्, भगवान् सर्वज्ञश्री के प्रथम अनुयायी, भगवान श्रीकृष्णचन्द्र के अनुज,—आपने तो म्लेच्छों के स्वामी कालयवन की सेवा ही की है। सच बात है, मेरा और आपका पद समान नही। आभीर के लिए आह्वान देने का मेरा अधिकार नही। समस्त सभा ने सुना है कि मैंने आपसे यदुकुल परम्परा द्वारा समाहित और स्वीकृत आभीर व्यवहार की मांग की है। आपके द्वारा निर्वाचित कुलगुरु ने भी यह सब सुना है। हाँ, इन्ही कुलगुरु ने साम्प्रदायिक गौरव प्राप्त करने के अपने उत्साह में, दिल्ली के सुल्तान के चरणों की सेवा करनेवाले होयसल-राज को सप्त सामंत चक्र चूडामणि के रूप में स्वीकार किया है, उसी प्रकार, सम्भव है कि आभीर-व्यवहार का भी ये कोई नया अर्थ निकाल दें।'

'पतित व्यक्तियों के प्रलाप धर्म-गौरव की हानि नही कर सकते'—आचार्यश्री भगवान वेदान्तदेशिक ने कहा। सभाजनों मे कानाफूसी होने लगी कि आज आचार्य की सदा की स्वस्थ और तटस्थ वाणी में प्रकम्प फैला है।

दोनों हाथ जोड़कर, अपमानजनक विनम्रता पूर्वक हरिहर आचार्यश्री को वारम्वार प्रणतिपात कर रहा था—'जी, परन्तु पतित का, मेरा और आपका, अर्थ भिन्न है।' इतना कहकर उसने सभा पर दृष्टि डाली। किसे क्या करना चाहिए, क्या कहना चाहिए, यह समझ मे नही आ रहा था। सबको आभीर-परम्परा का परिचय था। यही परम्परा, इस प्रकार धर्म-गौरव सभा में सिर उठाएगी, किसी को इसका रत्तमात्र अनुमान भी न था, और आज जब इसने सिर उठाया तो, सब लोग किंकर्तव्यविमूढ हो गए!

जब कोई आभीर-व्यवहार की मांग करता है, तब उसे सिर्फ एक ही गुण के अभाव मे अस्वीकार किया जा सकता है—'यदि पुकार मे सामाजिक समानता नही है, तो उसे व्यवहार का अधिकार नही। समानता होने पर, यदि व्यवहार की पूर्ति नहीं की जाती तो, ऐसा व्यक्ति झूठा और 'कायर' कहा जाएगा।'

हरिहर और होयसलराज दोनों, एक ही यादव कुल के थे। दोनों के पूर्वज एक थे। दोनों के आदि पुरुष एक थे। यह तो समय का प्रभाव है कि एक चक्रवर्ती बना, कर्नाटक का राजा बना और दूसरा असभ्य रहा, अपनी दो-चार बीघा जमीन पर खेती करनेवाला किसान ही रहा।

एक सवाल सबके मन में पैदा हुआ—सामाजिक समानता का क्या अर्थ है? एक राजा है, दूसरा किसान है, लेकिन यदुकुल-परम्परा—गणतंत्र की परम्परा है, इसमें हरेक यादव, एक राजा—यानी संसद का सदस्य है। यदि ऐसा न होता तो, भगवान कृष्णचन्द्र द्वारकानाथ कैसे कहलाते?

सभा पर एक लम्बी नज़र डालकर, हरिहर ने फिर से होयसलराज को ललकारा—'आपकी जो इच्छा हो, लेकिन यादवराज, होयसलराज, बल्लाल देव आभीर के लिए मेरी माँग आपको स्वीकार न हो, तलवार के जरिए सच-झूठ की परीक्षा करने का आपका विचार न हो, तो परवाह नहीं, मैं आपसे वारंगल के मैदान में मिलूंगा। वारंगल का यादवराज प्रतापरुद्र भले, सामंत चक्र चूड़ामणि न हो, भले उसने वैष्णव सम्प्रदाय और भागवत धर्म-गौरव की वृद्धि के लिए दूसरे वीरों की वीरता का अपहरण न किया हो, फिर भी महाराज, उसमें एक गौरव आज भी शेष रहा है। और कोई भी उससे यह गौरव नहीं छीन सकता, उसने कलियुग के काल-यवन को कभी साष्टांग दण्डवत नहीं किया!'

धीरे-धीरे उसने तलवार म्यान में रख ली और सारी सभा को सुनाकर कहने लगा—'अच्छी बात है महाराज, हम लोग वारंगल के मैदान में मिलेंगे। आज का अधूरा आभीर खेल वहीं पूरा कर लेंगे।'

और पीठ फेर कर, जिस वेपरवाही से वह सभा में आया था, उसी वेपरवाही से धीमे कदम उठाता, लौटा। पांड्य बन्दी के सामने वह खड़ा रहा। सोमैया अपनी आँखें बन्द किए खड़ा था। उसे पहनाए गए अपमान-जनक वस्त्र उसके चेहरे की नरसिंह-चमक को फीकी नहीं कर सके थे।

'पांड्यराज! पांड्यसंघ के धुराधर! मैं हरिहर, संगमराय का पुत्र आपको नमस्कार करता हूँ। जब से मुझमें समझ आई, तब से मैंने आपको वीरों में वीरोत्तम मानकर, अपने गुरुवत माना है। भगवन्, मेरे प्रणाम स्वीकार कीजिए।'

'तू मुझे गुरु मानता है। सचमुच, तू ऐसा निर्भय शिष्य है कि मेरा मन तुझे देखकर प्रसन्न होता है। यदि गुरु मानता है तो बेटा, गुरुदक्षिणा देगा ?'

'आज्ञा दीजिए, यदि आप आज्ञा दें तो, मैं आपको यहाँ से बन्धन मुक्त करूँ। यदि न कर सकूँ तो, अपने प्राणों का बलिदान दूँ। आप गुरु हैं, गुरुदक्षिणा मांगते हैं, तो जरा मेरा रणरंग देखिए और मुझे आशीष दीजिए। आशीष ऐसा दीजिए गुरुदेव, कि या तो मैं आपको कावेरी नदी के उस पार पहुँचा दूँ, या इस सभा में अपने रक्त की कावेरी बहा दूँ।'

सोमैया तनिक हँसा—'पांडचसंघ को, तमिल देश को इस सोमैया की आवश्यकता नहीं है, वत्स ! तू वारंगल जा रहा है न ?'

'जी हाँ, महाराज ! मुझे लगता है कि दूसरा कोई तरीका नहीं कि मुझे अपना आभीर-व्यवहार मिल जाय।'

'तो जा, कृष्णाजी नायक से मेरा इतना संदेशा कह देना कि पांडचसंघ का अध्यक्ष सोमैया नायक तुम्हें पाडचसंघ सौंपता है। कहना उससे कि पांडचसंघ को वज्रसंघ बना देना और होयसलराज की तलवार का स्वागत करना।' सारी सभा स्तब्ध तो थी ही, सोमैया के इस वचन से उस पर और भी गहरी स्तब्धता छा गई।

'पाडचराज !' हरिहर ने नये विस्मय से प्रश्न किया—'आप यह संदेश उन्हीं कृष्णाजी नायक को कहलाते हैं, जो तिरुपतिमलाई के नायक हैं, जो होयसलराज के सामंत हैं। जो होयसलराज के आदेश से वारंगल की सेना में भेद और मतभेद पैदा करने के लिए वारंगल गए हैं। अथवा आप किसी दूसरे कृष्णाजी नायक की बात करते हैं ?'

'कृष्णाजी नायक एक ही है।' सोमैया ने कहा—'पगले, वह तो मेरे हुक्म से ही वारंगल गया है। जब तक वारंगल का रणबंका राजा म्लेच्छों का सामना करता है, तब तक समस्त पाडचसंघ अपनी सेना और अपने साधन वारंगल को देने के लिए कटिबद्ध है।'

'गुरुदेव, यहाँ तो दूसरी ही बात हो रही है सब जानते हैं कि कृष्णाजी-नायक तो वारंगल के राजा प्रतापरुद्र देव को लाकर होयसलराज के चरणों में झुका देने के लिए, उनका मुकुट होयसलराज के पैरों में रख देने के लिए,

वारंगल गए हैं। पांड्यराज ! यहाँ के कुछ जानकारों का कहना है कि कृष्णाजी नायक को होयसलराज का आदेश है कि यदि वारंगल राजा का मानमर्दन करने के लिए, आवश्यकता पड़े तो, म्लेच्छों को भी वारंगल में प्रवेश करने के लिए मार्ग दे देना चाहिए।'

'पगले, जब पराई धरती और पराए मंदिरों पर साम्प्रदायिक ध्वजाएँ फहराने के लिए आचार्य और चक्रवर्तीजन बेचैन हो उठते हैं, तब, पराये हाथों में पड़ी धरती को मुक्त करने के लिए, तेरे या मेरे जैसे कई मूर्ख तलवार बाँधकर तैयार हो जाते हैं। कृष्णाजी नायक भी एक ऐसा ही मूर्ख है।' हाँ, वह होयसलराज का सामंत बना है, लेकिन इसलिए कि कर्नाटक के दरबार में पांड्यसंघ के वीर शैव-धर्म की रक्षा कर सके। जा, तू निश्चिन्त होकर जा। कृष्णाजी को मेरा संदेश देना। वारंगल में कृष्णाजी तुझे जो काम सौंपे, उसे अवश्य पूरा करना, बस, यही गुरुदक्षिणा देता जा।

सोमैया के ये वचन सुनकर सब स्तब्ध रह गए। सब के अन्तर में मानो कोई अगोचर अभिशाप संचरण कर रहा है, ऐसा प्रकम्पन छा गया। पांड्य संघ वीर शैवों की भूमि है। वारंगल निर्गंठों का अड्डा है। क्या दक्षिणापथ से धर्म-भावना ओझल हो गई कि आज वीर शैव और निर्गंठ परस्पर मिलकर नहीं रह सकते ?

सोमैया के चरणों की वन्दना कर हरिहर चला गया। किसी ने उसका मार्ग नहीं रोका। न रोकने का ही किसी को खयाल आया !

इधर-उधर देखे बिना हरिहर वहाँ से चला गया। जाते-जाते श्रीकंठ पर उसने ऐसी नजर डाली कि श्रीकंठ दो कदम पीछे हट गया।

होयसलराज की रक्षा के लिए सभा में अंगरक्षक सैनिक भी थे। आज के पूर्ण पर्व की गौरव वृद्धि के लिए भी सैनिकों की कमी न थी। लेकिन वह सब मिट्टी के पुतलों की तरह खड़े देखते रह गए ! ये सब यादव थे। इनमें से अधिकांश कुरुम्ब थे। कई छोटे-बड़े राया थे। बाकी सब लोग रायाओं के आश्रित रहनेवाले उपजीवी थे। ये सब जानते थे कि दक्षिणापथ के क्षत्रियों में—चोल, चेर, पांड्य, कलभ्र, कत्तारी आदि में स्वीकृत एवं सर्वमान्य, सामयिक न्यायतंत्र के एक अंग के समान—

यदुकुल परम्परा बनी 'आभीर व्यवहार' प्रणाली सर्वविदित है। कई छोटे-बड़े बखेड़े, झगड़े-मतभेद, अदावतें और तकरारें इस व्यवहार के जरिये तय होते थे। हजार विरोधियों के समूह के बीच यदि एक प्रतिपक्षी आ जाए और वह 'आभीर व्यवहार' की माग पेश करे, तो उसकी माँग पूरी करनी ही पडती है। यदि वह प्रतिपक्षी इस व्यवहार मे सफल हो जाता है तो उसका मार्ग कोई रोक नही सकता।

हरिहर भी आभीर व्यवहार की माग रखकर, लौट रहा था। राजा ने उससे व्यवहार न रखा। वास्तव मे राजा से आभीर-व्यवहार मागने का अंतिम उदाहरण, तो वीर बल्लाल के पूर्वजो के समय में, सौ-सवासौ वर्ष पूर्व, मिलता है। सभी होयसल राजाओं ने आभीर व्यवहार की पूर्ति की थी—यह कहा और सुना जाता है। इसके बाद, ऐसी कोई घटना नहीं मिलती कि किसी ने राजा से आभीर व्यवहार माँगा हो, या वह अस्वीकार कर दिया गया हो।

अतएव हरिहर का मामला परम्परागत था और विचित्र बात थी कि परम्परा मे ऐसे किसी मामले का उदाहरण और उत्तर न मिलता था।

श्रीकंठ के भेजे दो सैनिक हरिहर के पिता संगमराय को सँभाले खड़े थे। बाएँ हाथ से उन सैनिकों को धकेल कर हरिहर ने अपने पिता से कहा—'चलिए पिताजी, होयसलराज का जो हिसाब निपटाना है, वह हम वारंगल के मैदानों में निपटा देंगे!'

६ : कमल-पूजा

किसी की समझ में कुछ न आया ! सभासदों में से कोई यह न समझ सका कि जो कुछ हुआ है, वह ठीक हुआ है, या नहीं !

कोई यह न समझ सका कि होयसलराज ने आभीर व्यवहार न करके, कायरता दिखलाई है अथवा चतुराई ? कोई न समझ सका कि इस अस्वीकृति से इनका गौरव बढ़ा है या घटा है ?

और यह सबकी समझ के बाहर रहा है कि भगवान् सर्वज्ञश्री वेदान्त-देशिक आचार्य प्रभु के प्रति हरिहर ने विनय और सम्मान प्रदर्शित किया है, अथवा अविनय और अपमान ?

इसके अतिरिक्त कोई यह न समझ सका कि आचार्यश्री की मान्यता सच है या झूठ ? पांड्य संघ परास्त हो गया है ? क्या सचमुच वीर शवों के उस पापी और अनाचारी धराधाम तमिलनाड में वैष्णव भागवत् धर्म की धवल-ध्वजा सेतुबंध रामेश्वर तक फहराई है ? कृष्णाजी नायक की क्या बात है ? सत्य क्या है ? होयसलराज ने उस पर विश्वास किया है, तो क्या वह वैसा ही विश्वासपात्र सामंत है ? अथवा सोमैया ने जैसा बतलाया, वैसा मूर्ख शिरोमणि है ?

सैनिकों की समझ में न आया कि क्या करें—इन दोनों यादवों का रास्ता रोक दें या उन्हें जाने दें ?

उन्होंने श्रीकंठ की ओर देखा। दण्डनायक श्रीकंठ ने होयसलराज को

देखा। किन्तु होयसलराज भी सबकी तरह स्तब्ध ही रहे। उनमें इतनी समझ तो थी कि इस वक्त राजसी रोष और विशेष अधिकार का प्रयोग उचित नहीं। वे अपने निजी राजप्रासाद अथवा सभागार में नहीं थे। राज-दरबारियों के बीच नहीं बैठे थे। वे तो इस समय कर्नाटक के राजा के रूप में भी नहीं थे। वे तो सम्प्रति प्रथमोत्तम भागवत् के रूप में यहाँ आए थे। श्रीमन्नारायण के देवमंदिर के धर्मोत्सव में, जन्माष्टमी के उत्सव में, श्रीमन्नारायण भगवान के जन्म का स्वागत करने और सेतुबन्ध रामेश्वर तक वैष्णव सम्प्रदाय की विजय-पताका फहराने पर, उसका समारोह मनाने के लिए उपस्थित हुए थे।

पांड्य भूमि—कावेरी के उस पार की तमिल भूमि—वीर शैवों की धरती थी और वीर शैव म्लेच्छों से भी अधम थे। आज वही अधमता उफन चुकी है। आज तो लिंगायतों का वीर शैव सम्प्रदाय शक्तिहीन हो जाएगा। गिने-चुने दिनों में वीरशैव नामशेष रह जाएँगे। जिस जगह धर्म के नाम पर पापाचार फैला है, जात-पाँत के भेद खड़े हुए हैं, उस जगह, वर्णसंकरता फैल गई है, वह अब दूर होकर रहेगी। इस पक्ष का समर्थ, लड़ाका और बलवान् धुरावर बन्दी बना लिया गया है। और प्रत्येक पराजित दक्षिण के प्रत्येक दरबार में खड़ा रहा है—अपमानित और तिरस्कृत। सोमैया को पहनाया गया स्त्री-वेश, कैसा बेढंगा लगता था। पांड्य धुरावर को, इस सभा में, यों खड़ा देखकर, अब किसके मन में शंका रह सकती है कि भागवत् धर्म की पताका सचमुच सागर-तट तक नहीं फहरा रही है।

लेकिन इन सभी स्थितियों के उपरान्त भी होयसलराज के मन में एक आशंका आई—कृष्णाजी नायक मेरी वफादारी का स्वाँग तो नहीं करता है? जैसा कि सोमैया कहता है। वह मेरे विरुद्ध तो नहीं है? कर्नाटक की राजसभा में वह पांड्य संघ की ओर से, उसकी आँखें और उसके कान बन-कर तो नहीं आया है? सोमैया के बदले कृष्णाजी पांड्य संघ की धुरा धारण कर ले तो? कौन कह सकता है!

और भागवतों की इस सभा में वह भागवत के रूप में उपस्थित था। इस सभा में संगमराय के पुत्र हरिहर ने उससे आभीर व्यवहार की माँग

की थी। उसने यह स्वीकार न किया। किसी भी संयोग में, किसी भी स्थान पर, किसी भी समय होयसलराज किसी का आभीर व्यवहार स्वीकार न करता। वह राजा था, अनेक व्यक्तियों की शक्ति का संग्रह कर सकता था। यह शक्तिसंग्रह राज्यविस्तार के निमित्त है, चाहे जैसे कठोर प्रतिद्वन्द्वी से वह लोहा ले सकता था। फिर भला उसे किसलिए किसी प्रकार का संकट मोल लेना चाहिए।

और उसे यह कल्पना न थी कि ऐसी, समारोह के रंग में रँगी सभा के मध्य में, कोई मूर्ख उससे आभीर व्यवहार की मांग करेगा। ऐसा मूर्ख तो आजीवन सूर्यप्रकाश देखने से वंचित रह जाएगा। और इस प्रकार उसे उड़ा दिया जाएगा कि उसके सम्बन्धीजनों को भी खबर न होगी। कर्नाटक के राजा के पास प्राचीन दुर्ग और उन दुर्गों में भूगृहों की कमी नहीं है।

लेकिन हरिहर तो एक भागवत के रूप में सभा के सम्मुख, पुरानी परम्परा के अनुरूप व्यवहार माँगने के लिए आया था......

यद्यपि होयसलराज इस सभा के प्रथमोत्तम भागवत हैं तथापि पहले राजपूत हैं, फिर यादवश्रेष्ठ और यादवकुल शिरोमणि। इस दृष्टि से उनके मन में इस बात का दुख न था कि उन्होंने एक सामान्य कुटुम्ब के प्रति जातीय व्यवहार की पूर्ति न की। यदि कोई व्यक्ति अपनी निजी शक्ति के बल पर अपने अधिकारों का उपभोग करना चाहे और बलविक्रम का अनुमान लेना चाहे और राज्य उसे सहन करता रहे तो, तब तो धरती की पीठ पर कोई राजा राज्य नहीं कर सकता। और न कोई चक्रवर्ती ही बन सकता है क्योंकि चक्रवर्ती बनने के लिए, सात सामन्तों के सिरों पर पैर रखना पड़ता है!

होयसलराज ने सोचा कि उन्होंने एक मूर्ख और साधारण छोकरे की उद्दण्डता पर ध्यान न देकर कुछ भी गलती न की है। उसकी मांग स्वीकार करने में कहीं कोई बुद्धिमानी न थी। लेकिन मुझे इसमें जितना औचित्य दृष्टिगोचर होता है, क्या उतना ही, दर्शकों और सभासदों को भी प्रतीत होता है—यह अनुमान होयसलराज की पहुँच के बाहर था। इसलिए, उन्होंने एकत्रित मानवमेदनी पर दृष्टि डाली और लोगों के चेहरे पर

उन्होंने जो कुछ देखा, उससे उनको सन्तोष न हुआ। भरी सभा में यों दो आदमी उसे ललकार कर, ललकार क्या राज्यद्रोह करके, निःशंक चले जाएँ, और कोई उनकी राह तक न रोक सके—यह ऐसी वैसी बात नहीं! आखिर इसे क्या कहा जाए? होयसलराज ने फिर सोचा वह भागवत है, भागवत-धर्म की ध्वजा फहराता है और इतना करने-धरने पर भी, कोई दूसरा भागवत अपने प्रथमोत्तम के लिए, अपना सिर देने के लिए तैयार न हो, तो क्या कहा जाए?

उन्होंने यह भी देखा कि समस्त सभा पर एक महत्वहीन क्षोभ छाया है। यदि इस क्षोभ से कोई राह निकाली जा सके तो, सभा का कार्य आगे बढ़ सके। और ऐसी कोई राह, और ऐसा कोई क्षोभ-निवारण मंत्र पाने के लिए होयसलराज वल्लालदेव राजकुलगुरु वेदान्तदेशिक आचार्य की ओर देखने लगे।

तभी कुलगुरु की शान्त और स्वस्थ वाणी सुनाई दी। जिस प्रकार चारों ओर डोलनेवाले झंझावाती पवन से उफनते हुए सागर पर तेल की धाराएँ गिरती हैं, उस प्रकार आचार्यश्री की वाणी स्वस्थ और तटस्थ थी। उसमें न तो था विषाद, और न ही था आक्रोश या रोष! वे कहने लगे—'राजा, जो लोग भागवत महिमा की प्राप्ति या श्रवण न चाहते हों, उन्हें जाने दीजिए। वे पामर और पतित हैं। ऐसे अभागे, भागवत महिमा को न तो कभी समझे हैं, न कभी समझेंगे।'

इसके बाद आचार्यश्री कुछ देर के लिए मौन रह गए और तब, फिर से कहने लगे—'राजन्, यदि यही फैसला रहा कि आततायियों को वारंगल के मैदान में टक्कर दी जाए तो इतना याद रखना कि अद्वैतवाद का खण्डन करनेवाला तुम्हारा यह आचार्य वेदान्तदेशिक कोरा ब्राह्मण नहीं है। पूर्वावतार में इस के मातापिता ने इस ब्राह्मण देह का नाम व्यकटनाथ रखा था। इसलिए यदि इसे शास्त्र के बदले शस्त्र की जरूरत पड़ी तो, उसमें भी यह कदापि पीछे न हटेगा!'

आचार्य का यह सिंहनाद-सा युद्धघोष सुनकर, श्रोताजनों में उत्साह की लहर व्याप्त हो गई। यह दशा देखकर आचार्यश्री आगे बढ़े—'यदि वे पामर

जन्तु यहाँ होते तो, म्लेच्छों के बारे में स्वयं उनसे बात करता। वे तो चले गये हैं। पाखण्डों की नगरी वारंगल में। वारंगल का राजा यदुवंशी है, स्वयं भागवत होने का दावा करता है, किन्तु उसे श्रीमन्नारायण की महिमा में विश्वास नहीं, प्रीति नहीं, श्रद्धा या भक्ति नहीं। वहाँ तो वीर शैव अपने गले में लिंग लटकाकर, अपने पाखण्ड का पापपूर्ण प्रचार करते हैं। और निगंठ इस प्रकार अपने चैत्यों में जाते हैं कि उनकी नग्नदशा देखकर चार्वाक् भी शरमा जाएँ। वहीं उनके कवि गायक गाते हैं और साधु जन विहार करते हैं। और जो यदुकुल भूषण के पद पर प्रतिष्ठित होना चाहिए वह राजा भी, लोग कहते हैं, चैत्यों में जाता है और निगंठों का सत्कार करता है, इतना ही नहीं, उसकी राज्यसेना भी सम्प्रति नाम एक निगंठ दंडनायक के नेतृत्व में है। यह तो पाखण्डियों का शासन है, इसे नष्ट होना ही चाहिए। इसके विनष्ट होनेपर ही दाक्षिणात्य यदुकुल समस्त पर भागवत धर्म की विजय पताका फहरा सकती है, तभी होयसलराज प्रथमोत्तम भागवत के रूप में अपना जीवन सार्थक कर सकता है, तभी भगवान श्रीकृष्णचंद्र के कुल में, इसका जन्म लेना सार्थक कहा जा सकता है।

'म्लेच्छों की तो बात ही अलग है, जब तब, यहाँ वहाँ कोई असुर दैत्य पैदा होता है, धर्म को हानि पहुँचाता है, देव-मंदिरों का विध्वंस करता है, धर्म और समाज के नियम बन्धनों की अवमानना करता है फिर भी भगवान श्रीमन्नारायण की महिमा ही ऐसी है कि जब जब ऐसे असुर प्रकट होते हैं तब तब नारायण का सत्वांश अवनितल पर अवतार लेता है और फिर तो धर्म का नाश नहीं होता वरन् अधर्मी का ही नाश होता है। होयसलराज ऐसे ही सत्वशील पुरुष हैं, श्रीमन्नारायण के अवतारी महाराज हैं। सो अब इनका अवतार तभी सार्थक है, जब भागवत धर्म की दिग्विजय हो जाए।

'अब हमें म्लेच्छों का भय नहीं रहा। भयंकर और दुर्धर्ष, दुःसह, और दुर्दम्य, कलियुग के कालयवन का नाश हो चुका है। उसके मालिक का भी अन्त आया। इस समय म्लेच्छ-जन आन्तरिक कलह में व्यस्त हैं। इस समय कोई कलियुग का कालयवन विद्यमान नहीं। अब दक्षिण में म्लेच्छों की कोई गिनती नहीं। अब तो दक्षिणापथ उनकी काली छाया से मुक्त

हो गया है। अतएव भागवत धर्म की विजय के निमित्त, इससे उपयुक्त दूसरा सुअवसर नहीं। अब हमें म्लेच्छों ने यह प्रत्यक्ष दिखला दिया है कि यदि समाज में एक ही धर्म की मर्यादा हो, समाज एक ही धर्म का अनुयायी हो, और एक ही यम-नियम और विधि-निषेध का पालन करता हो तो, क्या नहीं हो सकता। अतएव, उस उद्देश्य की पूर्ति के लिए हमें वारंगल तक जाना पड़े तो भी जाना चाहिए। आप लोग निश्चय ही विश्वास रखें कि भगवान व्यंकटनाथ स्वयं ही वहाँ विराजमान हैं।

'आततायी गए, सो अच्छा हुआ। एक-दो व्यक्तियों के चढ़ने या गिरने से विजय-यात्रा सभव नहीं होती।

'फिर दिल्ली के तख्त पर दूसरा एक सुल्तान आ बैठा। लेकिन यह तो ठहरा विदेशी। तातारों का मलिक, यह दूसरे मलिकों की मदद लेकर सुल्तान बन बैठा। विदेशी मलिक का क्या! लूट-पाट के लिए अखिल उत्तरापथ खुला पड़ा है, लेकिन कृष्णा नदी के इस पार तो अब उसकी परछाईं भी प्रविष्ट नहीं हो सकती। मलिक का एक सूबा—सुल्तान का शाहज़ादा खुद एक सेना लेकर वारंगल पर अधिकार करने के लिए निकला है, लेकिन वह वारगल न ले सकेगा और होयसलराज का, श्रीमन्नारायण का, भागवत कार्य उसके कारण सरल बन जाएगा। इतनी धर्म सेवा तो वह कर रहा है! इतना उसका उपकार! राजन्, अब हमे अपना कार्य आरंभ करना चाहिए।'

सभा में रग आ गया।

होयसलराज बोले—"जैसी प्रभु की आज्ञा। मैं तो भगवान का सेवक हूँ। श्रीमन्नारायण के जन्मदर्शन का सौभाग्य मुझे मिले, उसके पूर्व एक छोटा-सा काम पूरा करता हूँ।"

होयसलराज ने फिर श्रीकंठ की ओर देखकर कहा—"श्रीकंठ, नायक सोमैया को, पाण्डय सामंत सोमैया को, पूज्यपाद श्रीमन्नारायण के दर्शन कराओ।"

श्रीकंठ ने सोमैया से कहा—"नायक, हमारी राजनीति है कि पराजित सामंत श्रीमन्नारायण के दर्शन करे। फिर उसकी पदमर्यादा के अनुरूप पोशाक चक्रवर्ती राजा उसे दे। उसे पहनकर, वह अपने पद और अधिकार

के अनुसार स्थान ग्रहण करे। इसलिए इस परम्परा के अनुरूप, आप भागवत्-दर्शन कीजिए और इस अपमानित दुर्दशा में से सहज ही मुक्ति प्राप्त कीजिए। आप अपनी आँखें मूंद कर बैठे हैं, अब उन्हें खोल दीजिए। ताकि मैं और आप दोनों ही अनिच्छनीय परिस्थिति से बच जाएं।"

सोमैया ने कहा—"दण्डनायक श्रीकंठ! यह सोमैया अपनी जनेता जन्मभूमि के शत्रु का सामना करता है और उस जन्मभूमि के अतिरिक्त, दूसरे किसी को अपना शीश नहीं झुकाता। ईश्वर एक है—वह शंकर रूप में है, विष्णु रूप उसी का है और मानो तो निगंठनाथ का रूप भी उसी का है। मेरी आँखें श्रीमन्नारायण देव के सामने बन्द नहीं हैं, यदि वे बन्द हैं तो म्लेच्छों के चरण चूमने वाले तुम्हारे राजा के सामने बंद हैं। यह राजा विदेशियों का वन्दन करता है और अपने जाति भाइयों पर तलवार चलाता है, ऐसे अधर्मियों का दर्शन करके हमारे भगवान भी बेचारे जड़ हो गए हैं।"

होयसलराज का सिर फटने लगा। होठ चबाकर उसने श्रीकंठ को आज्ञा दी—"श्रीकंठ, चक्रवर्ती की, मेरी आज्ञा है तुम्हें कि इसकी आँखें खुलवाओ और इसे देव के दर्शन कराओ।"

तिरस्कारपूर्वक सोमैया हँसने लगा—

"कौन चक्रवर्ती? कौनसा देव? यदि देव का दर्शन करना हो तो जाओ वारंगल। वहाँ तुम्हें जैसा देव देखने को मिलेगा, वैसा कहीं न मिलेगा। भले, वारंगल का राजा छोटा हो, भले वह चक्रवर्ती न हो, किन्तु आज भी दक्षिण का सिर उसी ने ऊँचा रखा है। इसलिए मैं कहता हूँ कि देवदर्शन करना हो तो वहाँ जाओ। देव की चरणधूलि लेनी हो तो वारंगल जाओ। वह चरणधूलि, जिसे प्रतापरुद्र जैसे वीरों के पदपद्मों ने पवित्र किया है, उस वारंगल की धूलि को सिर पर चढ़ाओ। जगदंबा के अवतार जैसी राजमाता रुद्राम्मा वहाँ है। और उनके लाड़ले सुपुत्र-सा उनका पौत्र, वहाँ शासन करता है। उनके राज्य में भागवत हैं, शैव हैं, वीर शैव हैं और निगंठ हैं और बाकी बचे स्वल्पसंख्यक, भगवान तथागत के अनुयायी भी हैं। वहाँ दर्शनीय देव एक है, वहाँ वंदनीय ध्वज एक है—और यह ध्वज विधर्मियों के सामने नत नहीं, उन्नत रहता है। चरण चूम कर और उदर

घसीट कर जीनेवाले कई प्राणी हैं, लेकिन जिस पवित्र स्थान पर सिर उठा कर जीने का स्वाभिमान जगमगा रहा है—श्रीकंठ, अपने राजा से कहो—सोमैया का यह मस्तक वहीं झुकता है। यदि सोमैया का मस्तक झुकाने की अभिलाषा हो तो तुम पहले उस ध्वज को ऊँचा उठाओ और तब सोमैया सब से पहले उसकी धूल अपने माथे पर चढ़ाएगा। जिस सोमैया ने म्लेच्छों के सामने कभी सिर न झुकाया, उसका सिर झुकाने की तेरे राजा की मर्जी हो तो वह कदापि पूरी नहीं हो सकती, क्योंकि तेरा राजा म्लेच्छों के चरणों की चाकरी करनेवाला प्राणी है, फिर भले न वह अपने को चक्रवर्ती कहता हो! मेरा वह क्या कर सकता है! क्या करना चाहता है?"

सुनकर होयसलराज की आँखों से ज्वालामुखी फूट निकले और उन्होंने ऐसे स्वर में ज़ोर से श्रीकंठ को पुकारा मानो धधकती धरती से सुलगती हुई अग्नि का स्तंभ प्रकट हुआ हो—"श्रीकंठ, श्रीमन्नारायण के इस धर्मद्रोही और चक्रवर्ती के इस राजद्रोही के सिर के बाल पकड़कर, यहाँ खींच लाओ।"

श्रीकंठ ने सोमैया के केश पकड़ लिए और उसे घसीट कर होयसलराज के पैरों के पास ले आया।

"तुझे श्रीमन्नारायण के दर्शन के लिए एक और मौका दिया जाता है। यदि तू अब भी अपनी आँखें बंद रखता है तो तेरी आँखें फोड़ दी जाएँगी।"

होयसलराज का भयंकर निनाद देवमंदिर के गुम्बज में गूँज कर घहराता हुआ फैलने लगा और तभी मानो प्रसुप्त ज्वालामुखी फूटा—'श्रीकंठ, शूलिकार को बुलाओ।'

धीमे-धीमे सोमैया उठ खड़ा हुआ। उसके दोनों हाथों के पंजे उसकी दोनों आँखों पर छा गए। धीमे-धीमे उसके ये पंजे दूर हुए। और लोगों ने देखा कि उसके चेहरे पर अननुभूत तेज व्याप्त हो गया है।

'मेरी आँखें ही फोड़ देना चाहते हैं न? तो इस ज़रा-से काम के लिए बेचारे शूलिकार को क्यों बुलवा रहे हैं?'

और इतना कहकर उसने अपनी उँगलियाँ अपनी आँखों में घुसेड़ दीं। सारी सभा देखती रह गई मानो उसकी साँस बन्द हो गई है! सोमैया की आँखों से लहू की धाराएँ बह निकलीं।

दर्शकों को विचित्र प्रतीत होनेवाली स्वस्थतापूर्वक सोमैया बोला—'लीजिए, होयसलराज !' और उसने अपने दोनों हाथ आगे बढ़ा दिए। हथेलियाँ फैला दीं। प्रत्येक हथेली में एक-एक आँख थी। उँगलियों के बीच—छेद से लहू टपक रहा था।

सोमैया का चेहरा, उसके कपड़े रक्त-रंजित हो रहे थे। दर्शक के लहू को बर्फ बना देने वाला था यह दृश्य, जितना भव्य उतना ही भयंकर !

'हे जगदम्बा ! हे माता वसुन्धरा ! आज तेरी पूजा के लिए मेरे पास दूसरी कोई चीज नहीं है, मेरे ये कमल स्वीकार करना ! तेरे धर्म के पालन में आज तक मेरा जीवन धन्य बना है। अब तू मेरी मृत्यु भी उतनी ही गौरवपूर्ण बना देना, माँ !'

कुछ देर चुप रह कर वह फिर से कहने लगा—'हे माता, हे जगदम्बा ! हे धर्म और सम्प्रदाय मात्र की जननी ! यदि तुझे मेरी स्वल्प सेवा स्वीकार हो तो कृष्णाजी को यशस्वी बनाना।'

और दोनों लम्बे हाथ फैलाये वह खड़ा था। दोनों हथेलियों में उसकी दोनों आँखें मानो सकल सभामंडल को अनिमेष देख रही थीं ! समस्त सभा इस भव्य और भयंकर दृश्य से स्तब्ध रह गई। कुछ ऐसा जादू फिर गया कि प्रत्येक व्यक्ति बुत बना खड़ा रह गया !

'हे श्रीमन्नारायण देव ! तुम वैष्णव हो, तुम शैव हो, तुम वीरशैव हो, तुम निर्गंठ हो, चाहे जो हो ! तुम जगदम्बा माता वसुन्धरा के स्वामी हो ! हे विश्वतात ! मेरी यह क्षुद्र पूजा स्वीकार करना। मेरी माता की लाज बचाना !'

और मानो लोगों के हृदय कुचल कर वह चल रहा है, इस प्रकार, एक कदम, दो कदम आगे बढ़ा—'हे विश्वतात ! आप कहाँ हैं ? मेरी माता की लज्जा ही मेरा जीवन-मरण है, मैं तुम्हारा बालक हूँ, क्या मुझे अपना मार्ग नहीं दिखलायेंगे ? क्या तुम मेरी माँ से इतने रुष्ट हो ? हे विश्वतात ! विश्वतात ! विश्वतात ! तुम कहाँ हो ?'

रंग-मंडप के स्तम्भ-स्तम्भ में, देवमंदिर के गुम्बज-गुम्बज में, गोपुर के गवाक्ष-गवाक्ष में यह पुकार घहरा उठी।

धीरे-धीरे और बहुत धीरे, साँचे में ढली पुतली की तरह, सभी की ओर पीठ दिए बैठी उदाली उठ खड़ी हुई। धीरे-धीरे वह आगे बढ़ी। सोमैया के सामने अपना आँचल फैलाकर, उसके चरणों की रज सिर पर चढ़ाकर कहने लगी—

'सोमैयाराज ! परम भागवत, परम शैव, परम जंगम, परम निर्गंठ—इन सबकी माता जगदम्बा के सुपुत्र ! मैं श्रीमन्नारायण प्रभु की महादेव-दासी उदाली ! अपने नेत्र मेरे आँचल में रख दो ! विश्वतात के पादपद्मों तक तुम्हारा यह पुजापा और तुम्हारी यह पुकार मैं पहुँचा दूँगी, मेरे राजा !'

तभी अचानक सभा के छोर पर कोलाहल सुनाई दिया। एक व्यक्ति उस छोर से मार्ग बनाता आगे बढ़ता आया।

कैसा था यह व्यक्ति ?

इसकी देह की वेशभूषा पर लम्बी यात्रा की धूल छाई थी और रक्त के गहरे धब्बे सूख कर काले पड़ गए थे। उसके केश बिखरे थे और इधर-उधर खड़े-से थे कि उनमें भी काफी धूल छाई थी। उसका चेहरा कठोर था और आँखें पथराई थीं। उसकी कमर पर नंगी तलवार झूल रही थी। उस पर भी लहू के सूखे धब्बे थे।

किसी आगोचर गुहा प्रदेश से जैसे भूतनाथ वीरभद्र अवतरित हुआ है, इस प्रकार, वह सभा के मध्य, होयसलराज की ओर बढ़ रहा था।

मंत्रमुग्ध-पाषाण प्रतिमा को, मानो क्षण भर के लिए, वाणी मिली—'कृष्णाजी नायक !'

'जी महाराज ! मैं वारंगल से आ रहा हूँ ! आपके लिए वारंगलराज प्रतापरुद्रदेव का संदेश लाया हूँ। यह रहा संदेश !'

और अपनी रक्त-रंजित बगल से उसने रक्त-सिंचित एक गठरी निकाली और उसे महाराज के सामने रख दी।

होयसलराज के कंठ से चीख निकल गई।

कृष्णाजी नायक ने महाराज के सामने रखा था—

वंशीय यादवराज प्रतापरुद्रदेव का मस्तक !

७ : वारंगल का घेरा

अपना रेशमी आंचल फाड़कर उदाली जिसकी आँखों पर पट्टी बाँध रही थी, उस रक्तरंजित सोमैया को कृष्णाजी नायक पहचान न सका। उसकी पूर्व-परिचित प्रतीत होती पीठ पर कृष्णाजी नायक की दृष्टि लगी रही।

कुछ देर वह मूक देखता रहा। अचानक उसके अन्तर में पहचान प्रकट हुई—'सोमैया, नायक सोमैया !'

होयसलराज आसन से उठ खड़े हुए। कृष्णाजी नायक को रोकते हुए कहने लगे—'रुको कृष्णाजी नायक, वहीं रुको ! यह सत्य है कि यह सोमैया नायक है और यह भी सत्य प्रतीत होता है कि आप हमारे वफ़ादार सामन्त होने के बजाय चक्रवर्ती के इस विद्रोही सामन्त के मित्र हैं ! राजद्रोही सामन्त से जैसा व्यवहार होना चाहिए, वही इससे किया जा रहा है। आपके साथ हमारा क्या व्यवहार रहेगा, यह बाद में निश्चित होगा, पहले आपका दूतकर्म पूरा हो जाए, श्रीकंठ !'

दण्डनायक श्रीकंठ आगे बढ़ा। घटित घटना से वह विह्वल था और उसे जो आदेश मिलनेवाला था, उससे वह व्यग्र-होता प्रतीत हो रहा था !

'श्रीकंठ दण्डनायक ! चक्रवर्ती का आदेश है कि कृष्णाजी नायक पर नज़र रखी जाए।'

होठ चबाकर श्रीकंठ कृष्णाजी नायक के पास आ खड़ा हुआ।

होयसलराज अपने आसन पर बैठते हुए बोले—'चक्रवर्ती का अनुमान

है कि इस राजसभा मे सोमैया ने आपके बारे में जो बातें बतलाई हैं, उनपर न्याय-विचार आवश्यक है। यह न्याय आगामीकल राजसभा में होगा। तब तक आप श्रीकंठ के अतिथि बनकर रहिए !'

'जी महाराज !' कृष्णाजी ने सिर झुकाया—'आपका आदेश स्वीकार है। अब यदि आपकी आज्ञा हो तो, वह संदेश सुनाऊँ, जो मैं वारगल मे लाया हूँ।'

'आप जानते हैं कि श्रीमन्नारायण के जन्म की घड़ी आ पहुँची है। इस घड़ी के आगमन से एक प्रहर पहले ही नृत्य, गान, तान, दान ध्यान आदि का आयोजन होना चाहिए। दाक्षिणात्य काल-गणना के अनुसार श्रीमन्नारायण के जन्म को ४३७९ वर्ष हुए हैं। हम इतने ही प्रदीप जलाएंगे'—श्रीकंठ ने कहा, 'नायक, आपका सदेश क्या इन सभी धार्मिक विधि-विधानो से भी महत्वपूर्ण है !'

'संदेश के महत्व और उसकी उपयुक्तता का निर्णय, सदेशवाहक भला कैसे कर सकता है ? संदेशा सुननेवाला ही निर्णय कर सकेगा।'

'अवश्य, हम यह सदेशा सुनेंगे और उसपर अपना निर्णय देंगे। कृष्णाजी नायक ! आप जो सदेश लाए हैं, सुनाइए उसे।' होयसलराज अपने आसन पर अधिक स्वस्थतापूर्वक बैठते हुए बोले।

'तब, सुनिए होयसलराज ! और सुनें सब सभासद, भागवत ! वारंगल के काकतीय वंशज यादवराज का संदेश मैं लाया हूँ—वह यों है—'

और इतना कहकर कृष्णाजी नायक ने अपनी कमर पर बँधी तलवार खीच ली उसकी मूठ एक हाथ मे और नोक दूसरे हाथ में थामकर, जरा ऊँची उठाई। तलवार पर रक्त के सूखे हुए धब्बे थे। चार हज़ार दीपकों की चार हज़ार बत्तियों के जगमग प्रकाश में तलवार चमक उठी। कभी वह ओझल हो जाती, कभी जगमगा उठती ! मेघाडम्बर आकाश मे दामिनी रेखा-सी वह तलवार चमक उठी !

कृष्णाजी नायक ने इसी तलवार को उठा कर कहा—

'जानते हैं, इस तलवार पर यह लहू किसका है ? जानते हैं किसने बहाया है यह लहू ? कर्नाटक के नागरिको ! इस तलवार पर लहू यह

महाराज प्रतापरुद्र का है। इस लहू को बहानेवाली भगवती का नाम है महामाता रुद्राम्मा। वे महाराज प्रतापरुद्र की माता हैं। आप तो जानते हैं, नागरजन, भगवती रुद्राम्मा की वय अस्सी वर्ष की है। तथापि उनका हाथ कम्पित न हुआ और एक ही झटके में उन्होंने अपने राजा—अपने पुत्र का शीश उतार लिया! नगरजनो! यह संदेश है, यह खड्ग है, यह महाराज प्रतापरुद्र का सिर है।'

'नगरजनो, ओ नगरवासियो! म्लेच्छ आ रहे हैं! आप में से कोई भी इस भ्रम धारणा में न रहे कि कलियुग के कालयवन का नाश हो जाने से अब म्लेच्छ कृष्णा नदी के पारवर्ती तट पर दृष्टिपात नहीं करेंगे अथवा उन्होंने सेतुबंध रामेश्वर तक अर्ध चंद्र वाला अपना हरा झंडा फहराने का विचार छोड़ दिया है। तातार, बलख, खुरासान, मकरान, कंदहार से आनेवाले उनके अमीर, सरदार, मलिक और उनके अनुयायी, दिल्ली के सुल्तानों को, म्लेच्छों का ध्वज दूर-दूर तक फहरा देने का स्वप्न भूलने नहीं देते!

'म्लेच्छ यदि आपस में कटकर मरना नहीं चाहते तो वे अवश्य तुम्हें मारेंगे। अखिल भारत में आज यदि लूटने योग्य कोई स्थान है, तो वह तुम्हारा प्रदेश है। यदि कहीं तोड़ने-योग्य कोई चीज़ बची है तो वह तुम्हारे मंदिर हैं! फिर भले, भागवतों के हों, शैवों के हों, वीरशैवों के हों, निगंठों के हों—चाहे जिसके हों! और कहीं जीतने-योग्य धरती बची है तो वह तुम्हारी धरती-माता है।

'उनके विनाशक आक्रमण का लक्ष्य तुम्हारी संस्कृति है। तुम्हारा साहित्य और तुम्हारे संस्कार हैं। नागरिको! इस बात को भूल न जाना। यहाँ आकर मैंने अपनी मृत्यु को निमन्त्रण दिया है, मैं इस तथ्य से परिचित हूँ। लेकिन प्रतिपल मरने को तैयार रहकर ही मैं महाराजा प्रतापरुद्र का संदेश तुम तक ला सका हूँ।

'आपसे मेरा निवेदन है कि उत्तरापथ के अनुभव से शिक्षा लें। बड़े-बड़े दुर्ग और राज्य म्लेच्छों के हाथों ध्वस्त हो चुके हैं! इस दशा में यदि भागवतों और शैवों के बीच भेद और फूट रहेगी तो अनेकता की इस दरार से प्रलय का पानी बहने लगेगा। इसी तरह निगंठों और वीरशैवों की फूट हमें रसातल को ले जाएगी।

'म्लेच्छों का सुलतान है गयासुद्दीन तुगलक, आप सब यह जानते हैं, किन्तु यह नहीं जानते कि तुगलक यह कौन है ? भारत में लूट के लिए तातार हैं। कालयवन मलिक काफूर का नाश करने वाला कुतुबुद्दीन मुबारक। मुबारक का वजीरेआजम खानखाना खुशरूखाँ गुजराती—नीच ढेड़जाति में इसने जन्म लिया और इस्लाम कबूल कर म्लेच्छ बना। सुलतान मुबारक को मार कर दिल्ली के तख्त का स्वामी बना !

'खुशरूखाँ जब वजीरेआजम था, उसने हिंदुओं के प्रति नरमी दिखलाई। महाराज प्रतापरुद्र ने कहा है कि इसी नरमी के कारण हम भ्रम के भँवर में फँसे। हमने समझा कि सुलतान का नीचकुलोत्पन्न वजीरेआजम हिंदुत्व के शेषावशेषों को त्रस्त न करेगा। उन्हें सताएगा नहीं।

'लेकिन जब खुशरूखाँ मुबारक को मार कर तख्तनशीन हुआ तो, समस्त भारत के हिंदुओं में आनन्द की लहर व्याप्त हो गई। तब एक दिन खुशरूखाँ इसी कर्नाटक देश में आया और उसने हमारे नेताओं के पैरों पड़कर भीख माँगी कि आप लोग मेरे कदम से कदम मिलाएँ। सभी वीर, लड़ाकू जातियाँ मेरा साथ दें और सब मिलकर, म्लेच्छों को भारतभूमि से सदा-सदा के लिए नाम शेष कर दें।

'लेकिन मैं आपसे पूछता हूँ नागरिको ! हमारे लोगों ने क्या सोचा—वीर क्षत्रिय यदि म्लेच्छ-ढेड़ का साथ देंगे तो धर्म रसातल में न चला जाएगा ?

'नतीजा यह हुआ कि मलिक गाजी गयासुद्दीन तुगलक से लडता हुआ मारा गया। मर गया उसकी चिन्ता नहीं। किंतु जाते-जाते वह धन्य हो गया ! ऊँच-नीच का भेद रखने वाले हम लोगों के सिर नीचे करता गया !

'गयासुद्दीन तुगलक हमारी कमजोरी जानता है। हमारी फूट का हाल उसे मालूम है। हमारे ईर्ष्या-द्वेष उससे छिपे हुए नहीं हैं। इसीलिए मैं आपसे कहता हूँ कि म्लेच्छ हममें से हरेक को एक-एक कर मारेंगे। वे जानते हैं—एक मरता रहेगा और दूसरा देखकर खुश होगा। एक दूसरे की सहायता और संगठन-एकता के वरदान से यह हिन्दू जाति वंचित है !

'नागरिको ! आज वही महाकालयवन गयासुद्दीन तुग़लक आ रहा है ! उसकी नरभक्षी सेनाएँ कूच का डंका वजा चुकी हैं ! देवगिरि, गुजरात, मालवा, रणथम्भौर, जेसलमेर आदि स्थानों के महान दुर्गों का पतन हो चुका है। और इन सभी स्थानों के म्लेच्छ सूवेदार अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर तुम्हारा संहार करने के लिए रात-दिन वढ़े आ रहे हैं !

'वे आ रहे हैं आपके वेटे-वेटियों, आपकी पुत्रियों और वहुओं को पकड़ कर ग़ुलाम वनाने के लिए। घरों में आग लगाने के लिए। खड़ी खेती को भस्म वना देने के लिए ! तातार, खुरासान, मकरान और हिन्दुकुश के पर्वतीय प्रदेशों से अलाउद्दीन खिलजी ने जितने भूखे-भिखमंगे, फटेहाल मलिक जुटा लिए थे, कुतुवुद्दीन मुवारक ने उनकी संख्या तीन गुना वढ़ा दी है। और यह अपार सेना नहीं आ रही है, इस भ्रम में आपमें से कोई न रहे। अपनी ज़मीन पर खेती करने के लिए, अपने लिए झोपड़े वना देने के लिए और अपने पशुओं की रखवाली के लिए मलिकों ने जिन लुटेरों को एकत्र किया है, उनकी धनलिप्सा, नारीलिप्सा और लहूलिप्सा शान्त करने के लिए मलिकों को आक्रमण करना ही पड़ेगा। लुटेरों की इस जमात का अगुआ है शाहजादा मलिक उलूग़खाँ। उसके साथ में है—भयंकर कालयवन, जिसकी तुलना में अहिंसक ठहराया जाए, ऐसा, शाहजादा फकरुद्दीन उर्फ़ शाहजादा शाह मुहम्मद। इसी शाह मुहम्मद ने खुशरूखाँ को धोखे से मारा है। आपमें से किसी ने इसे नहीं देखा। इसकी क्रूरता और भीषणता को आप भूल न जाना।

'दक्षिणापथ को नष्ट-भ्रष्ट कर देने के लिए कायर-क्रूर म्लेच्छों की यह मृत्युवाहिनी वारंगल तक आई।'—कृष्णाजी नायक ने दृष्टि दौड़ाई। उसने देखा कि वेदांतदेशिक महाराज आँखें वन्द किये वैठे हैं। होयसलराज का चेहरा रोष-भरा है। उदाली महादेवदासी निर्निमेष नयनों से महाराज प्रतापरुद्र के मुख को निरख रही है। सोमैया कान लगाए सुन रहा है। श्रीकंठ होठ दवाए वैठा है।

इस प्रकार सारी सभा उसी की ओर नज़रें लगाए स्तव्ध वैठी है।

तव कृष्णाजी आगे वढ़ा—

'वारंगल ऐसे में क्या करे ? छोटा-सा वारंगल ! देवगिरि, काम्पिल और कलिंग के उदाहरण देखते हुए या तो महाराज प्रतापरुद्र अपना राजकोष और राजपरिवार लेकर पलायन करें। यह असम्भव नहीं—क्योंकि, गुजरात के राजा ने यही किया, वक्त आया तो वह सबसे पहले भाग निकला। या महाराज प्रतापरुद्र भी यवनों को प्रणाम करें ? अपने ही महल मे म्लेच्छ मलिकों की खिदमत करें ? अपनी बेटियों और अपनी बहुओं का दासत्व अपनी आँखों देखें। नागरिको, यह न सोच लेना कि ऐसा नहीं हो सकता, देवगिरि के यादवराज रामचन्द्र ने यही किया है !'

—कृष्णाजी नायक की आवाज़ रंगमडप के प्रत्येक स्तम्भ का हृदय चीर कर गुम्बज में गूँजने लगी ! ऐसा प्रतीत होता था—मानो प्रत्येक नागरिक के शीश पर मेघगर्जना हो रही है ! नायक ने अपना हाथ फैलाया और होयसलराज की ओर उँगली उठाकर कहा—'देवगिरि के यादवराज और आपके इन महाराज होयसलराज ने भी किया है। नहीं किया है क्या ?'

सारी सभा मे कँपकँपी छा गई ! होयसलराज ने अपना मुँह ढँक लिया मानो किसी ने उनके दोनों गालों पर थप्पड़ लगाए हैं ! फिर रोषभरी आँखों से कृष्णाजी को देखते रहे। फिर भी इतना तो वे जान गए कि कृष्णाजी को चुप कर देना, उनके वस की वात नहीं है।

कृष्णाजी बोला—'कायर राजाओं के ये उदाहरण महाराज प्रतापरुद्र के सम्मुख थे और इनकी पृष्ठभूमि मे उनके सामने दो ही मार्ग थे। क्या आप लोग कोई तीसरा मार्ग बता सकते हैं ?'

'हाँ, यह तीसरा मार्ग दिखलाया दक्षिणापथ की जगदम्बा—महाराज प्रतापरुद्र की माता प्रातः स्मरणीया देवी रुद्राम्मा ने। उनकी आयु अस्सी वर्ष की थी। बीस वर्ष से रोग शैया पर वे लेटी थी—असहाय और अशक्त। लेकिन अवसर आया तो भवानी की तरह वाहर निकल आईं।

'नागरिको ! भगवान् श्रीकृष्ण ने जिस खड्ग से कस का सहार किया था, वंश परम्परा में वही खड्ग काकतीय यादवों को मिली है। वही खड्ग अपने करकमलों में धारण किए देवी रुद्राम्मा वाहर आईं और पुकारकर अपने बेटे को बुलाया—

टा ! समस्त दक्षिणापथ को जीवित रखने के लिए, उसकी एकता
नाए रखने के लिए, तेरे मरने की घड़ी आ गई है। यदि सचमुच तू
पुत्र है ! सचमुच तू यादवों का वंशज है तो इस घड़ी का
गत करना !'

महाराज ने महादेवी के हाथ से खड्ग ले लिया। अपने सभी साथियों
ौर दुर्गवासियों को एकत्र कर, कहा—'आज चार हज़ार वर्ष का हमारा
इतिहास धर्म संगम की रचना के लिए लाया है। आज जिसे मैदान छोड़-
कर जाना हो, वह चला जाय, कोई उसकी राह नहीं रोकेगा। और जो
रुक जाएगा, वह लौटकर जा नहीं सकेगा। अब तो देवलोक में ही हम
रहनेवालों का महामिलन होगा। और आज से हम में से कोई राजा-महा-
राजा नहीं, कोई रैयत-प्रजा नहीं। हम सब एक हैं, सब समान हैं। जिसके
मन में मरने की ललक हो वह आगे बढ़े। यह दुर्ग वीरों की श्मशान भूमि
बनकर धन्य होने को मचल रहा है। भाइयो, म्लेच्छ आ रहे हैं। हम उन्हें
दिखा देंगे कि भरतभूमि वीरविहीन नहीं है। मित्रो, जीवन एक बार है।
मृत्यु एक बार है। अमर होने का अवसर एक बार ही आता है। भारतमाता
की जय !'

'लेकिन महाराज की वीरवाणी और प्रार्थना सुनकर भीड़ में से ए
भी नागरिक वापस लौटा नहीं। सब लड़ने मरने को कटिबद्ध हो गए।

'और म्लेच्छ आए। झुण्ड के झुण्ड। टिड्डी दल की तरह उमड़ प
कहाँ छोटा-सा वारंगल ! कहाँ यह अपार सेना ! किन्तु वीरों का स
साका देखकर म्लेच्छ लगे भागने और उनके मलिक बार-बार लगे
बटोरने ! जहाँ तक मनुष्य की दृष्टि जा सकती है, वहाँ तक वारं
दुर्ग के चारों ओर म्लेच्छ मेदिनी दृष्टिगोचर होती थी। दीवारों पर
हुआ। दीवारों के रक्षकों में न तो कोई भागवत था, न शैव था, न
या निगंठ था। सब जातिभेद को भूले हुए, मात्र भारतीय थे,
रक्षक थे !

'और इस लिए शत्रु दुर्ग में प्रवेश न पा सका। एक मास
तीन मास। मास पर मास बीतते गए ! देवगिरि, झालोर

और अपराजेय चित्तौड़ गढ़ में छल-बल से प्रविष्ट होनेवाले म्लेच्छ वारंगल के देवदुर्ग के पाषाणों से सिर टकराते रह गए !

'किंतु भाइयो, दुर्ग का अन्न-भंडार घटता गया। निर्णय हुआ कि जब तक भंडार चलता रहे, तब तक युद्ध चलता रहे। अंतिम दिन माँ, बहनें और बहुएँ जौहर व्रत धारण करें और वीरवर मृत्यु का वरण करें।

'वारंगल-वीर तो इस महान् मुहूर्त की प्रतिक्षा में थे ही। तभी निगठ-नेता, दुर्ग के एक संरक्षण सम्प्रतिनाथ ने उपाय सुझाया—महाराज, हमारी नीति तो यह है कि वारंगल म्लेच्छ सेना को इस प्रकार उलझा ले कि वह दक्षिण मे आगे न बढ़ सके और तब तक दक्षिण अपनी रक्षा की तैयारी कर ले। अतएव अच्छा तो यह है कि हम मे से कुछ सैनिक प्रतिदिन दुर्ग के बाहर आएँ और दुश्मन के दाँत खट्टे करें। इस प्रकार अन्न-सामग्री बचती रहेगी और दक्षिण देश को दिवस भी मिलते रहेंगे। और दुर्ग से बाहर जाकर शत्रुओं से जूझने के लिए पहले आदमी के रूप मे मैं वारंगल की सेवा में अपना जीवन समर्पण करता हूँ। मैं पहले जाकर शत्रु का संहार करूँगा।

'सब ने धन्य-धन्य कहा। दूसरे दिन प्रातःकाल निगंठ शिरोमणि सम्प्रतिनाथ अपने अनुयायियो को लेकर, केसरिया वस्त्र धारण कर, तलवारें हाथ में लिए महाकाल की भाँति दुर्ग से बाहर पधारे और शत्रुसेना पर वज्र की तरह टूट पड़े ! ऐसा भयंकर संग्राम हुआ कि कोसों तक धरती शवों से पट गई। शवो के पर्वत खड़े हो गए और म्लेच्छो मे हाहाकार मच गया !

'इस प्रकार का महायुद्ध सम्प्रतिनाथ ने अन्न-जल ग्रहण किए बिना, दो दिन तक लड़ा ! दूसरे दिन वे मलिक उलूगखाँ की छावनी तक पहुँच गए, अब तो मलिक भाग चला !

'लेकिन अपार शत्रु-सेना ने उन्हें घेर लिया। दो दिन के निर्जल उपवासी वे महावीर वीरगति को प्राप्त हुए और जाते-जाते धरती को धन्य कर गए !

'उनके बाद विद्यानाथ ने शमशीर उठाई। वही विद्यानाथ कवि जिनके अपूर्ण नेमिचरित्र को अर्ध नेमिचरित्र कहकर आप मे से कई लोग उपहास करते हैं। उसी महाकवि ने कलम छोड़कर पहली बार तलवार हाथ में ली

और अच्छे-अच्छे वीर उसका रणोन्माद देखते रह गए ! दो दिन तक म्लेच्छों को इधर से उधर भागने की फिक्र रही। वे भी वीर गति को प्राप्त हुए।

'उनके पश्चात् भागवत आए। भागवतों में श्रेष्ठ, देवगिरि के यादवराज हरपालदेव के छोटे भाई वीरपाल देव आए। उन्होंने तीन दिन तक मलिकों की छावनियों के सामने मैदानों को कब्रस्तान बना दिए। वहाँ म्लेच्छों का इतना खून बहा कि उसकी धारा मलिक मुहम्मद फकरुद्दीन की छावनी से वह कर दुर्ग की दीवार के पाषाणों को धोने लगी ! वीरपालदेव का स्वर्गवास होने पर, चौथे दिन म्लेच्छ सेना इतनी थक गई कि दो दिन तक लड़ न सकी। पूरे दो दिन उसके सैनिक म्लेच्छों की लाशों को ढोते रहे।

'इसके उपरान्त तीन दिन तक रामैया नायक लड़ा। रामैया मेरा छोटा भाई। उसके महा संगर के विषय में मैं आपको क्या और कैसे कुछ कहूँ !

'इस भाँति दुर्ग के अन्न-भंडार का भार कम करने के लिए प्रतिदिन महारथी मैदान में आते रहे। इतना ही नहीं, अरे ओ नागरिको, इतना ही नहीं ! पुरुष वेश पहन कर, हाथों में भवानी लेकर एक सहस्र बालाजोगिनें आईं—हमारी माताएँ, बहनें, बेटियाँ और बहुएँ आईं। उनका रण-रास देखकर अच्छे-अच्छे वीर भी चकित रह गए। यों, दिन पर दिन निकलते गए। दक्षिणापथ को एक पल भी अधिक मिले, यही हमारा प्रयत्न रहा। मुझे मालूम नहीं, आप लोगों ने इस समय का सदुपयोग किया या नहीं ! खैर, हमारा काम नहीं कि इस बात का पता लगाएँ, हमारा काम तो वारंगल के एक-एक कण को अपने लहू से लाल कर देना था।

'दो मास बीते। फिर दुर्ग में न तो लड़ैया रहे, न अन्न ही रहा। कुछ स्त्री-बच्चे, महादेवी रुद्राम्मा, महाराज प्रतापरुद्र और मैं—सिर्फ़ इतने ही प्राणी शेष रहे।

'तब महादेवी रुद्राम्मा ने एक दिन कहा—'पुत्र प्रताप ! अपनी संतान से भी अधिक प्रिय, वारंगल के इतने बेटों को मैंने एक-एक कर मरने दिया। तुम्हें आज तक रणांगण में नहीं भेजा, इसका एक कारण है, वह कारण तुम्हें आज विदित हो जाएगा।

'कृष्णाजी, इतने वीर चले गए, तुझे मैंने न जाने दिया, इसके पीछे भी एक कारण है. यह कारण क्या था, तुझे आज ज्ञात होगा।

'पुत्र प्रताप! दक्षिणापथ को जीवित रहना है, तो उसे पर्याप्त वीरता दिखानी होगी और यथाशक्य बलिदान देना होगा। हमने अपनी दीवार बनकर सारी बाढ को, म्लेच्छों के सारे आक्रमण को अपने आप पर झेल लिया। लेकिन आज हमारी शक्ति का अंत आ गया है। फिर भी हमें इस बात का गर्व है कि हमने कर्तव्य का पालन किया और धर्मपथ से तिल-भर भी विचलित न होने की साधना की। और अतीत के पूर्वज और भविष्य के हमारे पुत्र—कोई हमें अपराधी न बताएगा।

'कृष्णाजी, तू वारंगल आया, वारंगल को अपना अमूल्य परामर्श दिया, समय-समय पर। किंतु तेरा उचित स्थान दक्षिणापथ मे है। तू तुरन्त वहाँ जा और दक्षिणापथ को मेरा सदेश दे।

'नागरिको, सुन लो नागरिको! इतना कहकर प्रातः स्मरणीया, परम पूज्या, परमपवित्रा महादेवी रुद्राम्मा ने महाराज प्रतापरुद्र के हाथ से तलवार ले ली और कहने लगी—'कृष्णाजी नायक! तू जाना कर्नाटक के महाराज होयसल वीर बल्लाल देव के पास और मेरा यह संदेश कह सुनाना: *आपको वारंगल पर अधिकार चाहिए, लीजिए। वारंगल का राजमुकुट लीजिए।* लेकिन आप यादव हैं—यह याद रहे, आप प्रताप की तरह मेरे पुत्र हैं। आप वारंगल और उसका राजमुकुट भी लें पर वारंगल के उज्जवल इतिहास को सदैव प्रज्वलित, प्रकाशित रखें।

'और भाइयो! इतना कहकर, महादेवी रुद्राम्मा ने अपने पुत्र वीरवर महाराज प्रतापरुद्र की ओर देखा। उनकी नजरें मिलते ही, महाराज राजमाता को प्रणाम कर, सिर झुकाकर पृथ्वी पर बैठ गए। अपने केश उन्होंने बाँध लिए फिर दोनों हाथ जोडकर प्रशान्त बैठे रहे!...जाने कहाँ से अस्सी वर्षीया वृद्धा राजमाता के हाथों मे वज्र की शक्ति आई कि उन्होंने तलवार के एक ही वार में अपने पुत्र का सिर उतार दिया। फिर मेरे हाथ में यह-वही सिर और तलवार सौंपकर बोलीं—

'जा रे कृष्णाजी, दक्षिणापथ में यादवों के शेषांश होयसलवंशावतंस
राज वीर वल्लालदेव से कहना, अपने पुत्र का यह सिर आपको सन्देश-
में भेज रही हूँ। इसका अर्थ और तात्पर्य आपको मैं समझाऊँ तो मैं
दव नहीं ! और आप न समझ पाएँ तो आप यादव नहीं। काकतीय
श की यह अनमोल सम्पत्ति महाराज प्रतापरुद्र का यह शीश, यह खड्ग—
वही पवित्र खड्ग, जिससे भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र ने कंस का वध किया था—
आपको सौंपती हूँ। यदि ये दोनों आपको कुछ कह न सकें, समझा न
सकें, तो संसार में दूसरी कोई शक्ति आपको कुछ नहीं समझा सकती। जा
बेटा, आँधी से पहले जा और तूफ़ान की गति से जा, जो कुछ यहाँ तूने
देखा, सब, सुना देना।'

'महाराज होयसलराज ! इस प्रकार मैं वारंगल में रहा और आपके
पास आया। वारंगल से प्रस्थान करते समय दुर्ग की प्रचण्ड अग्निज्वाला
देखी, महादेवी और शेष नारी समाज ने जौहर व्रत धारण किया ! फिर
एक भयंकर आवाज़ आई मानो भूकम्प आया है, इस बार देखा तो वारंगल
के दुर्ग के स्थान पर केवल धूल और धुएँ के गुब्बार ही बचे थे। सिर्फ मिट्टी
का एक ढेर रह गया !

'मैं आया हूँ महाराज, एक महान् दुर्ग की एक महान् राजमाता
आदेश था कि एक महान् बलिदान की गाथा आप तक पहुँचा दूँ। भग
जगदम्बा की यही आज्ञा थी !'

और कृष्णाजी ने अपना हाथ बढ़ा कर, खड्ग महाराज के हाथ में
दी। होयसलराज को ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वे धधकता हुआ
थाम रहे हैं, खड्ग उनके हाथ से छूटा और उसके गिरने की खनखन
सारी सभा में बड़ी देर तक भयपूर्ण सनसनाहट छाई रही।

८ : विराट दर्शन

होयसलराज की आँखें खुलीं ! उन्होंने चौककर इधर-उधर देखा, मानो गहरी नींद से जगे हैं !

विशाल रंगमंडप सर्वथा सूना था। उसकी सीमाओं में अंधकार छाया था और अब वह मानो अनंत और असीम बन गया था कि इतना विशाल और भरपूर लग रहा था। होयसलराज को लगा कि बढता हुआ अंधकार उन्हें घेर रहा है।

रंगमंडप मे स्तम्भों की पंक्ति-परम्परा थी। इनमे से कई स्तम्भों पर दीप जल रहे थे। उनकी बुझती हुई बातियाँ, तेल के अभाव में चट-चट कर रही थीं, ऐसे अगणित नृत्यो से रंगमडप की छत भी मानो नाच उठती थी।

महाराज वीर वल्लालदेव को ऐसा प्रतीत हुआ, मानो वे महान् भूकम्प की गोद में बैठे हैं और समस्त रंगमंडप इस भूकम्प से प्रकंपित हो रहा है !

चारों ओर डोलती उसकी दृष्टि अन्ततया श्रीमन्नारायण के निज मंदिर पर पड़ी। श्रीमन्नारायण के दोनों ओर अखंड रूप से जाने वाले दीपकों के अतिरिक्त निज मंदिर में दूसरा कोई प्रकाश न था। धुंधली ज्योति में ऐसा प्रतीत हो रहा था, मानो श्रीमन्नारायण की प्रतिमा अपने सम्पूर्ण मानवीय आकार-प्रकार में प्रकट हो रही है। और मानो पारलौकिक प्रकाश से प्रकाशित होकर यह सदेह संचरण के लिए तत्पर थी ! मूर्त्ति के शीश का मुकुट, चरणों में पड़े छः सामन्ती मुकुटों को तटस्थतापूर्वक देख रहा

...और आतताइयों को विनष्ट करने वाला, उसके कर-कमलों का
...क्र मानो पल भर में चलने ही वाला था !
...सलराज मूर्ति के ओज और तेज को निरंतर निरखते न रह सके ।
...राज इधर-उधर देखते रहे ।
...ार्थिव प्रतीत होनेवाले सत्त्व को देखकर महाराज क्षण भर के लिए
...में पड़ गए—'मैं कौन हूँ ? कहाँ से आया हूँ ? यह अनश्वर पुरुषोत्तम
... क्या चीज़ है ?'
...दर्शक की दृष्टि को अपने जादू में समेट लेनेवाली प्रतिमा को निरखने-
...ी महाराज की नज़र आगे बढ़ी, फिर रुक गई । रुकी वहीं, जहाँ बिना
...का शीश पड़ा था ।

महाराज का हृदय-स्पंदन जैसे बन्द हो गया मानो वे किसी अलौकिक
...ूमि पर आ उतरे हैं । श्वास की गति जैसे रुद्ध हो गई, आँखें आधी
...बन्द रहीं ।

"यह सब क्या है ? मैं कहाँ हूँ ? कोई ज़रा बतलाए । क्या मैं किसी
स्वर्णभूमि में अवतरित हुआ हूँ ? और स्वर्णदेहधारी यह प्रतिमा कैसी है
मेरे सामने ?"

दीपक की अकेली एक जोत अन्तिम मृत्यु-नृत्य पर लोप हो गई । महा-
राज ने देखा अंधकार में जैसे कटे हुए मस्तक से एक तेज़ धारा निकल कर
अजानी दिशा में ओझल हो गयी । उसी प्रकार वे विचित्र विचार और
दृश्य देखते रहे कि सहसा उनके मुँह से निकला—"अरे कोई है ?"

महाराज की आवाज़ रंगमंडप के स्तंभों से टकराकर लौट आई और
फिर तो उन्हें यह महसूस हुआ मानो वे—"अरे कोई है, अरे कोई है ?"
पुकार रहे हैं और कहीं से कोई उत्तर नहीं आ रहा है और एक खनखनाह...
से सारा रंगमंडप गूंज उठा है ।

महाराज ने नीचे झुक कर देखा उनके पैरों से जो चीज़ टकराई...
वह तो एक खड्ग था ! परखी न जा सके, ऐसी, जाने किस जमाने की...
से उसकी मूठ बनी थी । खड्ग इस तरह तप्त प्रतीत होता था, मानो ते...
...पी चुका हो । उस पर काले धब्बे पड़े थे लेकिन इन धब्बों के...

उसका पानी और चमकदार और तेजदार हो गया था। लगता था चींटियों की सेनाएँ उस पर से गुजर रही हैं।

क्षण भर बल्लालदेव इस पवित्र असिरानी को देखते रहे। पल भर के लिए उनके मनमें प्रश्न उठा कि खड्ग कहाँ से आया? और दूसरे ही पल मानो इस खड्ग का झटका उनके मन पर पड़ा हो, ऐसा महसूस हुआ।

लेकिन, अरे! यह तो वही खड्ग है, जिसे कृष्णाजी नायक लाया था। अब तो उनके बेसुध और विस्मयान्वित देह पर भी मानो चींटियों के कारवाँ चलने लगे। विस्मृति के गाढ़ अंधकार में उन्हें कुछ ध्यान न रहा। जिस तरह सागर के तटों पर ज्वार चढ़ता जाता है, उस तरह विस्मृति के बीच, अब स्मृति के ज्वार उभरने लगे!

यह खड्ग कृष्णाजी नायक लाया था। मुझे दिया गया था। किसलिए? क्यों?

उस समय मैं श्रीमन्नारायण के जन्मोत्सव के जलसे में भाग ले रहा था। मेरे सामने वेदान्तदेशिक महाराज विराजित थे। उनके सिवाय कई नागरिक भी थे। समारोह चल रहा था......

लेकिन वह-सब कहाँ ओझल हो गया?

मैं—बल्लालदेव इस समय अकेला था। सामने मस्तक रखा था। मेरे पैरों में एक खड्ग रखा था। शेष सब कहाँ गया?

महाराज ने इधर-उधर नजर दौड़ाई। धीरे-धीरे चारों ओर देखा।

हाँ, मैं था तो श्रीमन्नारायण के विशाल रंगमंडप में ही। अद्वितीय शिल्पकला से सुशोभित वे स्तम्भ थे तो रंगमंडप के ही! मूर्ति भी वही—वही थी, जिसके चरणों में अनेक बार प्रणाम किया है।

और यह प्रतिमा किसकी है?...मन्दिर के गर्भद्वार पर उच्चासन पर स्थित यह मूर्त्ति—यह प्रतिमा कहाँ से आई? आज से पूर्व, यहाँ कोई प्रतिमा नहीं थी।

वीर बल्लालदेव धीमे पैर बढ़ाकर आगे आये। प्रतिमा की ओर देखा। अरे, यह तो उदाली है! पाषाण-प्रतिमा नहीं, स्वयं महादेवदासी उदाल।

हाँ, आज महादेवदासी उदाली रंगमंडप में नृत्यगान करनेवाली थी।... किन्तु नृत्य के बजाय, वह मौन यों, क्यों बैठी है ? उसकी निर्निमेष दृष्टि जिस जगह लगी थी, महाराज ने वहाँ देखा। श्रीमन्नारायण के निज मन्दिर में प्रज्वलित अखण्ड-दीप-प्रकाश में महाराज ने देखा कि जिस पर उदाली की दृष्टि लगी है, वह है धड़रहित मस्तक ! वही मस्तक....! जरा झुककर महाराज ने देखा तो यह मस्तक वारंगल के महाराज प्रतापरुद्रदेव का था !

अब महाराज होयसलराज को सब कुछ याद आया।

आज का, जन्माष्टमी का उत्सव ! परम्परानुसार, श्रीमन्नारायण के दर्शनार्थ, पराजित सामन्त सोमैया नायक को स्त्रीवेश में लाया गया था !

और होयसलराज के कुलदेव के दर्शन करने के बदले, सोमैया नायक ने अपने हाथों अपनी आँखें नोच ली थीं। और सोमैया को गिरफ्तार कर लानेवाला—संगम कुरुम्बा अपनी तलवार फेंककर चला गया था, बजाय इसके कि महाराज का कृपाप्रसाद प्राप्त करता ! वह तो विमूढ़-सा खड़ा रह गया और अपना शस्त्र फेंककर चला गया !

और उसका सनकी लड़का हरिहर मुझसे आभीर-व्यवहार माँगने आया ! द्वंद्वयुद्ध उसने चाहा ! अन्त में वह भी चला गया, वारंगल के वनों में द्वन्द्व के लिए तैयार रहने की चुनौती देकर। मूर्ख, पामर !

वारंगल के वनान्तर ! वारंगल का दुर्ग ही कहाँ रहा ? और युद्ध कैसा ? कृष्णाजी नायक ने ही आकर बतलाया भी कि अब तो वारंगल में टूटे हुए पत्थर और धूल के ढेर ही शेष रह गए हैं !

—यही कहा था कृष्णाजी ने...नहीं, उसने और भी बहुत कुछ कहा था !

उसने कहा था, म्लेच्छ आ रहे हैं। भारत के स्मृति-अवशेष के समान दक्षिणापथ में आ रहे हैं। हमें सामन्त बनाने के लिए नहीं, गुलाम बनाने के लिए, हमारे गाँवों को उजाड़ने और नगरों को नष्ट कर देने के लिए !

धीरे-धीरे महाराज की दृष्टि प्रतापरुद्रदेव के मस्तक पर पड़ी। और धीरे-धीरे उन्हें ध्यान आया कि यह मस्तक एक संदेश है। यह खड्ग एक संदेश है।

यह भिजवाया था, महादेवी रुद्राम्मा ने।

और कृष्णाजी ने कहा था—"महादेवी ने कहा है, यदि यह मस्तक आपको कुछ समझा न सके, तो मेरे शब्द कुछ भी न समझा सकेंगे। यदि यह खड्ग आपके अपने भावी पथ का प्रदर्शन न करा सके, तो संसार में ऐसी कोई शक्ति शेष नहीं, जो आपकी मार्ग-दर्शिका बन सके।"

धीमे-धीमे वल्लालदेव आगे बढ़े। खड्ग को उठाकर, अपने आसन पर रख लिया। आगे बढ़े और उस मस्तक को पकड़ने के लिए, अपना हाथ बढ़ाया।

"यह कौन है, जो मेरे स्वामी के मस्तक को अपने स्पर्श से अपवित्र करना चाहता है?"

यह स्वर मानो पृथ्वी से नहीं, आकाश से आया था। सुनकर, महाराज के अंग-अंग से पसीना बहने लगा। वेगपूर्वक वे लौटे, एक खम्भे से टकराए। नीचे गिरे, गिरे ही रह गए।

उनकी फटी-फटी आँखें मूर्तिवत् स्थित, उस उदाली पर थम गईं। उदाली ने क्या कहा? क्या यह उदाली का ही स्वर था? अथवा, कोई पारलौकिक पुकार थी?

अब रंगमंडप में सघनतर अंधकार छा गया। महाराज उठने लगे। फिर दूसरे खम्भे से टकराए। अंधकार में ऐसा प्रतीत होता था, मंडप में सौ के बजाए सहस्र स्तम्भ हैं।

होयसलराज, कर्नाटक के चक्रवर्ती और उनकी यह दशा, कि इस अंधकार में बिना लड़खड़ाए एक कदम आगे नहीं चल सकते और कोई दास, कोई दासी, कोई सैनिक—कोई हाजिर नहीं!

भोर में देखेंगे, इन सबको!

तब तक तो यहीं रहना है!

वीर वल्लालदेव एक खम्भे से पीठ टिकाए बैठे रहे। दूर-दूर मानो बहुत दूर अंधकार के महादुर्ग से बाहर कदम रखते ही, श्रीमन्नारायण, अखंडदीप की जोत में उन्हें स्पष्ट दिखाई दिए।

यह सब परिवर्तन कैसे हो गया ? क्या वह स्वप्न में है, या कोई जादू हो गया है ? सहस्रों दास-दासियों के मध्य में रहनेवाले वे, इस अंधेरे एकान्त में अकेले बैठे हैं ! और इस एकान्त से अधिक सघन एकान्त की रचना करनेवाली उदासी और उसके सामने पड़ा निर्जीव शीश।

यह शीश—यह मस्तक न था। यह एक संदेश था।

म्लेच्छ आ रहे हैं, सामंत बनाने के लिए नहीं—संहार करने के लिए।

ये म्लेच्छ भी कैसे हैं। निरान्त से दिल्ली की सल्तनत का सुख खुद भोगते नहीं और न दूसरों को ही अपने राज्य का उपभोग करने देते हैं।

म्लेच्छों ने वारंगल पर विजय प्राप्त की और अब ऐसी स्थिति न रही कि हम वारंगल ले सकें ! अब ऐसी स्थिति न रही, कि इस जीवन में कभी उस सामंत चक्रचूड़ामणि बन सकें।

भला, जागते और सोते समय का मेरा स्वप्न—चक्रवर्ती बनने का स्वप्न यदि एक वार म्लेच्छ पूरा होने देते, तो उनका क्या बिगड़ जाता ?

लेकिन न वे खुद ही चैन से बैठते हैं, न बैठने देते हैं।

अब फिर से दक्षिणापथ में एक वार संहार का सृजन होगा।

गाँव-गाँव लूटा जायगा। गाँव-गाँव जलाया जाएगा। मंदिर-मंदिर टूटेगा। मूर्ति-मूर्ति को म्लेच्छों से छिपाने के लिए दौड़-धूप होगी...रंगनाथ की प्रतिमा को छिपाए रखने के लिए भगवान् सर्वज्ञ वेदांतदेशिक महाराज को कुछ कम कष्ट करना पड़ा था ? दिन और रात, धूप और अँधेरे में सप्ताहों और महीनों आचार्यश्री नीलगिरि और ब्रह्मगिरि पूर्वी-घाट और पश्चिमी-घाट की पहाड़ियों में, अथवा किसी झाड़ी में, किसी गुफा में, किसी खेत में दुबके रहते थे। और एक वार तो अनायास बाघ की गुफा में जा घुसे थे। अब फिर से वही भयंकर चक्र चलने लगेगा। नर-नारियों की भयंकर चीत्कारें, गुलामों की कतारें !

फिर से उत्तरापथ की ओर पंक्तिबद्ध गुलाम और दासों की भीड़ बढ़ेगी और उसके पीछे-पीछे म्लेच्छों के अत्याचारी सिपाही ! कदम-कदम पर किसी शिशु या वृद्ध का शव नजर आएगा और उस पर मँडराते चील-कौए।

ऐसा दूर-दृश्य उन्होंने एक वार देखा था...कब देखा था वह दृश्य ?

जब मलिक—ऐनुल्मुल्क देवगिरि आया था, तब! जब वह अलाउद्दीन खिलजी के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा और जब उसके सिपहसालार मलिक काफूर ने कर्नाटक पर चढाई की थी तब! और जब स्वयम् कर्नाटक के राजा के रूप में मलिक काफूर के पैरों पड़ा था तब।

सभी ने ये दृश्य देखे थे—हाँ, न देखे थे, एक अकेले कावेरी के पार स्थित पाड्य नायकों के प्रदेश ने...और उस प्रदेश के सरदार थे—सोमैया नायक और कृष्णाजी नायक। इन्होंने ये दृश्य न देखे थे। कावेरी के पार तमिलसंघ में भयंकर कालयवन मलिक काफूर भी पैर न रख सका था...

यह भला कैसे संभव हो सका?...तमिलों के वज्रसंघ को कालयवन भी भेद न सका।

और यह प्रश्न, होयसलराज रास सामंत चक्रचूड़ामणि महाराज वीर बल्लालदेव के सम्मुख पहली बार उपस्थित हुआ हो, इस भाँति वे इसका प्रत्युत्तर खोजने लगे। कैसा है यह कौतुक?...

बड़े-बड़े वीरोत्तम, नरोत्तम, नरसिंह, महारथी दुर्गपति और चक्रवर्ती नष्ट हो गए, परन्तु पांड्य नायक किस बल पर अडिग रह गए? पाड्यों की राजधानी मथुरा पर म्लेच्छों ने विजय पाई, वहाँ उसका सूबा रहने लगा। सूबा सुलतान बन गया। पाड्य-संघ के ठीक मध्य में यह कील आज बीस वर्ष से गड़ी पड़ी है....फिर भी...

यह महान् कौतूहलमय प्रश्न उनके मस्तिष्क में घूमने लगा....

आज तक किसी ने इस विषय में उसे कुछ कहा है? किसी धर्मात्मा वीरात्मा, महात्मा, भूतात्मा...किसी ने इस भेद का उद्घाटन किया है?...

कृष्णाजी नायक, भगवती रुद्राम्मा का संदेश लाया था। उसने कुछ कहा था?...क्या कहा था?....शैव और वैष्णव, निगंठ और वीरशैव ...एक हो जाओगे, तो जीवित रहोगे।....

लेकिन, बात यह बेकार है! वैष्णव और वीरशैव एक कैसे हो सकते हैं, जिनका भगवान् भिन्न, जिनकी भक्ति भिन्न, जिनके सम्प्रदाय भिन्न—उनके मन अभिन्न कैसे हो सकते हैं...और इनमें भी निगंठों की तो बात

यह सब परिवर्तन कैसे हो गया ? क्या वह स्वप्न में है, या कोई जादू हो गया है ? सहस्रों दास-दासियों के मध्य में रहनेवाले वे, इस अंधेरे एकान्त में अकेले बैठे हैं ! और इस एकान्त से अधिक सघन एकान्त की रचना करनेवाली उदासी और उसके सामने पड़ा निर्जीव शीश।

यह शीश—यह मस्तक न था। यह एक संदेश था।

म्लेच्छ आ रहे हैं, सामंत बनाने के लिए नहीं—संहार करने के लिए।

ये म्लेच्छ भी कैसे हैं। निरान्त से दिल्ली की सल्तनत का सुख खुद भोगते नहीं और न दूसरों को ही अपने राज्य का उपभोग करने देते हैं।

म्लेच्छों ने वारंगल पर विजय प्राप्त की और अब ऐसी स्थिति न रही कि हम वारंगल ले सकें ! अब ऐसी स्थिति न रही, कि इस जीवन में कभी सप्त सामंत चक्रचूड़ामणि बन सकें।

भला, जागते और सोते समय का मेरा स्वप्न—चक्रवर्ती बनने का स्वप्न यदि एक बार म्लेच्छ पूरा होने देते, तो उनका क्या बिगड़ जाता ?

लेकिन न वे खुद ही चैन से बैठते हैं, न बैठने देते हैं।

अब फिर से दक्षिणापथ में एक बार संहार का सृजन होगा।

गांव-गांव लूटा जायगा। गांव-गांव जलाया जाएगा। मंदिर-मंदिर टूटेगा। मूर्ति-मूर्ति को म्लेच्छों से छिपाने के लिए दौड़-धूप होगी...रंगनाथ की प्रतिमा को छिपाए रखने के लिए भगवान् सर्वज्ञ वेदांतदेशिक महाराज को कुछ कम कष्ट करना पड़ा था ? दिन और रात, धूप और अँधेरे में सप्ताहों और महीनों आचार्यश्री नीलगिरि और ब्रह्मगिरि पूर्वी-घाट और पश्चिमी-घाट की पहाड़ियों में, अथवा किसी झाड़ी में, किसी गुफा में, किसी खेत में दुबके रहते थे। और एक बार तो अनायास बाघ की गुफा में जा घुसे थे। अब फिर से वही भयंकर चक्र चलने लगेगा। नर-नारियों की भयंकर चीत्कारें, गुलामों की कतारें !

फिर से उत्तरापथ की ओर पंक्तिबद्ध गुलाम और दासों की भीड़ बढ़ेगी और उसके पीछे-पीछे म्लेच्छों के अत्याचारी सिपाही ! कदम-कदम पर किसी शिशु या वृद्ध का शव नजर आएगा और उस पर मँडराते चील-कौए।

ऐसा दूर-दृश्य उन्होंने एक बार देखा था...कब देखा था वह दृश्य ?

जब मलिक—गैरशास्प देवगिरि आया था, तब! जब वह अलाउद्दीन खिलजी के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा और जब उसके सिपहसालार मलिक काफूर नें कर्नाटक पर चढ़ाई की थी तब! और जब स्वयम् कर्नाटक के राजा के रूप में मलिक काफूर के पैरों पड़ा था तब।

सभी ने ये दृश्य देखे थे—हाँ, न देखे थे, एक अकेले कावेरी के पार स्थित पाड्य नायकों के प्रदेश ने...और उस प्रदेश के सरदार थे—सोमैया नायक और कृष्णाजी नायक। इन्होंने ये दृश्य न देखे थे। कावेरी के पार तमिलसंघ में भयंकर कालयवन मलिक काफूर भी पैर न रख सका था...

यह भला कैसे संभव हो सका?...तमिलों के वज्रसंघ को कालयवन भी भेद न सका।

और यह प्रश्न, होयसलराज सप्त सामंत चक्रचूड़ामणि महाराज वीर बल्लालदेव के सम्मुख पहली बार उपस्थित हुआ हो, इस भाँति वे इसका प्रत्युत्तर खोजने लगे। कैसा है यह कौतुक?...

बड़े-बड़े वीरोत्तम, नरोत्तम, नरसिंह, महारथी दुर्गपति और चक्रवर्ती नष्ट हो गए, परन्तु पाड्य नायक किस बल पर अडिग रह गए? पांड्यों की राजधानी मथुरा पर म्लेच्छों ने विजय पाई, वहाँ उसका सूबा रहने लगा। सूबा सुलतान बन गया। पाड्य-संघ के ठीक मध्य में यह कील आज बीस वर्ष से गड़ी पड़ी है....फिर भी...

यह महान् कौतूहलमय प्रश्न उनके मस्तिष्क में घूमने लगा....

आज तक किसी ने इस विषय में उसे कुछ कहा है? किसी धर्मात्मा वीरात्मा, महात्मा, भूतात्मा...किसी ने इस भेद का उद्‌घाटन किया है?...

कृष्णाजी नायक, भगवती रुद्राम्मा का संदेश लाया था। उसने कुछ कहा था?...क्या कहा था?....शैव और वैष्णव, निर्गंठ और वीरशैव ...एक हो जाओगे, तो जीवित रहोगे।....

लेकिन, बात यह बेकार है! वैष्णव और वीरशैव एक कैसे हो सकते हैं, जिनका भगवान् भिन्न, जिनकी भक्ति भिन्न, जिनके सम्प्रदाय भिन्न—उनके मन अभिन्न कैसे हो सकते हैं...और इनमें भी निर्गंठों की तो बात

अलग, जिनके पास कोई ग्रन्थ नहीं, वे ग्रन्थियों के बीच कैसे रह सकते हैं... इसलिए संगठन सम्भव नहीं।

वीर बल्लालदेव बारम्बार सोच रहे थे और एकता की बात किसने की थी ? जिनके धर्म-ध्यान, ग्रन्थ-भक्ति भिन्न उनकी एकता की चर्चा किसने चलाई थी ?....

कृष्णाजी नायक ने वारंगल से संदेश लेकर आनेवाले, कृष्णाजी नायक ने। उसीने वारंगल के महायुद्ध की बात की थी।...वाह, वारंगल वाह ! और वह युद्ध अम्बर के देवता जिसे देखने के लिए दौड़ पड़े...वारंगल भागवतों का धाम।

लेकिन....लेकिन...कृष्णाजी कहता था, कि जब वारंगल पर म्लेच्छों का आक्रमण हुआ और शौर्य के पंथ का अंत आया, तब मौत का पथ आरम्भ हो गया। जौहर की वेला आई।...तब भागवत्-राज्य के उस भागवत् दुर्ग के द्वार से बाहर रणांगण में सबसे पहले तलवार लिए आया —सम्प्रतिनाथ।...किन्तु, वह तो वणिक (सागर-पार व्यापार करनेवाला वहाणिक या वणिक)...निराहार, अन्न-जल बिना यह निगंठ वणिक महा-काल बनकर दो दिन तक म्लेच्छों का संहार करता रहा। वह दुबला-पतला बनिया...मैले कपड़े पहनने वाला, नंगे पैरों चलनेवाला, बगल में मोटी लाल बही और कान पर कलम और बार-बार छींकनेवाला या जँभाइयाँ लेनेवाला और सामने के दो टूटे हुए दाँतों से अरहंत-अरहंत की ध्वनि गुंजाने वाला....

उस वणिक को महाराज बल्लालदेव ने अपनी राज-सभा में कई बार देखा था। वह, दोनों हाथ जोड़कर, एक ओर खड़ा रहता था और कई बार उसके निगंठ होने के कारण महाराज ने, यानी मैंने....उससे कसकर महसूल वसूल किया था।

वह दरिद्र दृष्टिगोचर होने वाला सम्प्रतिनाथ भी अपना जौहर दिखला गया। वह सूखी लकड़ी-सा शरीर लेकर, खुरासानी म्लेच्छों के कुटिल कटक से लड़ने की भयंकर शक्ति...अरे, कोई बतलाए, वह शौर्य उसने कहाँ से पाया ? दो दिन तक म्लेच्छों की सेना के बीच कबड्डी खेलना, साधारण

बात नही है ! महाराज जानते है, म्लेच्छों के बीच मुट्ठी भर आदमी लेकर लड़ना हँसी-खेल नही है । और वारंगल की लडाई ने दक्षिणापथ को अपनी तैयारी के लिए समय दे दिया...एक रहकर, जीवित रहोगे । अनेक रहकर नष्ट हो जाओगे—भगवती रुद्राम्मा ने कहलाया था ।

बात सच है ।

म्लेच्छों की यह काल-सवारी कैसी छोटी-सी चीज से शुरू होती है—

दिल्ली के सुलतान के भतीजे गैरशास्प का विवाह सुलतान की शाहजादी से हुआ था । शाहजादी का मिजाज शाहजादी-जैसा था । अपने बाप की सल्तनत का नशा उसपर छाया था । कहती थी, गैरशास्प से—मेरे साथ रहकर, घर-बार बसाना चाहता है, तो मेरे बाप के घर आ, घर-जमाई बनकर—वरना, दिल्ली के सुलतान की शाहजादी तुझ-से भिखारी के घर नही आएगी !

गैरशास्प नाराज होकर, चला गया । साथ मे कुछ साथी लिए, कुछ अनुचर लिए । गुजरात पर आक्रमण किया । किसीने उसे रोका नही । इधर देवगिरि के यादवराज रामचन्द्र ने सारी सेना लेकर कर्नाटक पर चढाई की थी । वह कर्नाटक में उलझा था, कि गैरशास्प देवगिरि पर चढ़ आया । देवगिरि की लूट से अपार सम्पदा लेकर, वह दिल्ली आया । कई गुलाम खरीद लिए और अपने चाचाजान को कत्ल कर दिया । फिर अलाउद्दीन खिलजी उपनाम धारण कर, दिल्ली के तख्त पर बैठा । और एक दिन उसने देवगिरि की लूट से प्राप्त हीरे-मोती, मणि-माणिक्य, रत्न और सोने के ढेर के बीच अपनी बेग़म को बिठा दिया ।

देवगिरि का पतन ! यम ने द्वार देख लिया । अलाउद्दीन की चतुर दृष्टि ने यह देख लिया कि ये लोग कभी संगठित नही होंगे । उसने इस फूट का फ़ायदा उठाने की सोची और दूसरा सिकंदर बनने का स्वप्न देखा । इतना ही नही, उसने अपना नाम रखा—सिकंदर सानी और इस नाम के सिक्के ढलवाए ।

और जब जालौर, रणथम्भोर, महान् चित्तौड, जैसलमेर, देवगिरि और

अलग, जिनके पास कोई ग्रन्थ नहीं, वे ग्रन्थियों के बीच कैसे रह सकते हैं... इसलिए संगठन सम्भव नहीं।

वीर वल्लालदेव वारम्बार सोच रहे थे और एकता की बात किसने की थी ? जिनके धर्म-ध्यान, ग्रन्थ-भक्ति भिन्न उनकी एकता की चर्चा किसने चलाई थी ?....

कृष्णाजी नायक ने वारंगल से संदेश लेकर आनेवाले, कृष्णाजी नायक ने। उसीने वारंगल के महायुद्ध की बात की थी।....वाह, वारंगल वाह ! और वह युद्ध अम्बर के देवता जिसे देखने के लिए दौड़ पड़े....वारंगल भागवतों का धाम।

लेकिन....लेकिन...कृष्णाजी कहता था, कि जब वारंगल पर म्लेच्छों का आक्रमण हुआ और शौर्य के पंथ का अंत आया, तब मौत का पथ आरम्भ हो गया। जौहर की वेला आई।...तब भागवत्-राज्य के उस भागवत् दुर्ग के द्वार से बाहर रणांगण में सबसे पहले तलवार लिए आया —सम्प्रतिनाथ।...किन्तु, वह तो वणिक (सागर-पार व्यापार करनेवाला *वहाणिक या वणिक)...निराहार, अन्न-जल बिना वह निगंठ वणिक महा-*काल बनकर दो दिन तक म्लेच्छों का संहार करता रहा। वह दुबला-पतला बनिया...मैले कपड़े पहनने वाला, नंगे पैरों चलनेवाला, बगल में मोटी लाल बही और कान पर कलम और बार-बार छींकनेवाला या जँभाइयाँ लेनेवाला और सामने के दो टूटे हुए दाँतों से अरहंत-अरहंत की ध्वनि गुंजाने वाला....

उस वणिक को महाराज वल्लालदेव ने अपनी राज-सभा में कई बार देखा था। वह, दोनों हाथ जोड़कर, एक ओर खड़ा रहता था और कई बार उसके निगंठ होने के कारण महाराज ने, यानी मैंने....उससे कसकर महसूल वसूल किया था।

वह दरिद्र दृष्टिगोचर होने वाला *सम्प्रतिनाथ भी अपना जौहर दिखला* गया। वह सूखी लकड़ी-सा शरीर लेकर, खुरासानी म्लेच्छों के कुटिल कटक से लड़ने की भयंकर शक्ति...अरे, कोई बतलाए, वह शौर्य उसने कहाँ से पाया ? दो दिन तक म्लेच्छों की सेना के बीच कबड्डी खेलना, साबा-

बात नहीं है ! महाराज जानते हैं, म्लेच्छों के बीच मुट्ठी भर आदमी लेकर लड़ना हँसी-खेल नहीं है । और वारंगल की लड़ाई ने दक्षिणापथ को अपनी तैयारी के लिए समय दे दिया...एक रहकर, जीवित रहोगे । अनेक रहकर नष्ट हो जाओगे—भगवती रुद्राम्मा ने कहलाया था ।

बात सच है ।

म्लेच्छों की यह काल-सवारी कैसी छोटी-सी चीज से शुरू होती है—

दिल्ली के सुलतान के भतीजे गैरशास्प का विवाह सुलतान की शाहजादी से हुआ था । शाहजादी का मिजाज शाहजादी-जैसा था । अपने बाप की सल्तनत का नशा उसपर छाया था । कहती थी, गैरशास्प से—मेरे साथ रहकर, घर-बार बसाना चाहता है, तो मेरे बाप के घर आ, घर-जमाई बनकर—वरना, दिल्ली के सुलतान की शाहजादी तुझ-से भिखारी के घर नहीं आएगी !

गैरशास्प नाराज होकर, चला गया । साथ में कुछ साथी लिए, कुछ अनुचर लिए । गुजरात पर आक्रमण किया । किसीने उसे रोका नहीं । इधर देवगिरि के यादवराज रामचन्द्र ने सारी सेना लेकर कर्नाटक पर चढ़ाई की थी । वह कर्नाटक में उलझा था, कि गैरशास्प देवगिरि पर चढ़ आया । देवगिरि की लूट से अपार सम्पदा लेकर, वह दिल्ली आया । कई गुलाम खरीद लिए और अपने चाचाजान को कत्ल कर दिया । फिर अलाउद्दीन खिलजी उपनाम धारण कर, दिल्ली के तख्त पर बैठा । और एक दिन उसने देवगिरि की लूट से प्राप्त हीरे-मोती, मणि-माणिक्य, रत्न और सोने के ढेर के बीच अपनी बेगम को बिठा दिया ।

देवगिरि का पतन ! यम ने द्वार देख लिया । अलाउद्दीन की चतुर दृष्टि ने यह देख लिया कि ये लोग कभी संगठित नहीं होंगे । उसने इस फूट का फ़ायदा उठाने की सोची और दूसरा सिकंदर बनने का स्वप्न देखा । इतना ही नहीं, उसने अपना नाम रखा—सिकंदर सानी और इस नाम के सिक्के ढलवाए ।

और जब जालौर, रणथम्भौर, महान् चित्तौड़, जैसलमेर, देवगिरि और

वारंगल....सभी पराजित हुए।...कृष्णा नदी के किनारे तक सिकंदर सानी का झंडा लहराने लगा।...

...और अब सेतुबंध रामेश्वर तक यह झंडा पहुँच जाएगा...अरे, कोई बतलाए इस प्रलयंकर ज्वार को कोई कैसे रोक देगा...?

वारंगल....हमारा वारंगल !

अचानक वारंगल दुर्ग महाराज के सामने मुस्कराने लगा।

अचानक जैसे अखिल तमसपट भगवती रुद्राम्मा के आलोकपूर्ण वदनारविंद से प्रकाशमान् हो गया।

और आगे सोचने को विवश वीर बल्लालदेव धरती पर गिरे। नजर उठाकर, देखने की उनमें शक्ति न रही।

उस धरती के गर्भ से शत सहस्र नर-नारी रोते-कलपते, चीत्कार करते काँप रहे थे। यह करुणा-क्रन्दन सुन-सुनकर उसकी सुधि जाती रही।

और जब उसे सुधि आई, दिन का प्रकाश फैला-फैला था। उस प्रकाश में मानो सब कुछ परिवर्तित हो गया था। इस समय न था सामने, वारंगल का दुर्ग, न था किसी वृद्धा का विराट वदन ! वहाँ तो बैठी थी, अकेली एक उदासी। वैसी ही अस्थिर, मूर्तिवत्। निखिल निशा में उसने रज-मात्र भी अपना आसन नहीं बदला था। महाराज प्रतापरुद्रदेव के मस्तक को उसी, एक, निर्निमेष दृष्टि से देख रही थी।

और वीर बल्लालदेव ने गोपुर के मुक्त-द्वार से भगवान् सर्वज्ञश्री वेदांत देशिक महाराज को पधारते हुए देखा। उनके पीछे-पीछे राजरानी, राजकन्या मालादेवी, राजकुमार बल्लालविजय और दंडनायक श्रीकंठ आए।

सब ये महाराज को देखते रहे। महाराज इन सबको देखते रहे।

फिर आचार्यश्री कहने लगे —"राजन् ! गई रात श्रीमन्नारायण का उत्सव अपूर्ण रखकर, सब लोग, मेरे ही आदेश पर यहाँ से चले थे। उस समय आप मूर्च्छना-वश थे। पूरी रात वारंगल की स्मृतियाँ और संदेशावली लिए आप अकेले यहाँ बैठे थे। उस संदेश का उत्तर आपका अन्तर पा जाए, यह मेरी कामना थी। अब हम सब लौटे हैं। पूरी रात आपको यहाँ अकेले रहने देने का दोष यदि किसी पर है, तो मुझ पर।"

"जी, महाराज आचार्यश्री ! आपने उपकार किया।"

"राजन् ! अब महल में पधारिए। रात भर आपको यहाँ रखने के लिए मेरा मन राजी न था, लेकिन क्या करते, मुझे कुलगुरु का आदेश था।" राजरानी ने कहा।

"आपने उस आदेश का पालन किया। जानकर, मैं प्रसन्न हूँ, रानी !"

"पधारिए, राजन् ! जन्माष्टमी के पश्चात् उपहार की वेला है। सब आपकी प्रतीक्षा मे हैं।"

"रानी ! श्रीमन्नारायण का उपाहार आवश्यक है।"

"महाराज, मैं समझी नही।"

"अभी समझ में आ जायगा देवि।...श्रीकंठ..."

"जी, महाराज !"

"सोमैया नायक को बुलाओ और उन दो मूर्खों को भी बुलवाओ।"

"मूर्ख ?"

"वे दोनों कुटम्ब पिता-पुत्र।"

"संगमराय तो वारंगल के लिए रवाना हो गए हैं। लेकिन, मैं अभी सैनिकों को भेजता हूँ।"

"हाँ, उसे कहला दो, वारंगल में देखने-जैसा कुछ न रहा है। उसे बाँधकर, ले आओ।" होयसलराज ने आज्ञा दी—"साथ ही, उस मूर्ख लड़के को भी न भूल जाना, जिसने मुझे द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारा था। क्या था उसका नाम ?..."

"हरिहर !"

९ : गोपुर के नीचे

होयसलराज के कुलगुरु भगवान् वेदांतदेशिक महाराज, राजरानी, पुत्रियाँ और श्रीकंठ—सभी होयसलराज की कठोर मुखमुद्रा को ध्यान से देख रहे थे।

श्रीकंठ की आज्ञा से दो सैनिक-सोमैया नायक और कृष्णाजी को पकड़ लाए थे। कुछ घुड़सवार सैनिक संगमराय और हरिहर के लिए चल पड़े थे।

आचार्यश्री खड़े ही रहे। वे खड़े हैं, इस ओर होयसलराज की दृष्टि न गई। न उन्हें इस बात का ही ध्यान था कि उनका परिवार स्तब्ध खड़ा है। होयसलराज की दृष्टि और मन महादेवी उदाली की ओर लगी थी।

देवमंदिर में कोई आया है—उदाली को इस बात का भान नहीं था! उसकी साँस और उसके प्राण—उसकी आँखों में थे और उसकी आँखें प्रतापरुद्र के मस्तक पर लगी थीं। इन आँखों में कोई रंग न था, कोई भाव न था। कोई झलक न थी। एकदम अचल और स्थिर थीं!

किसी कुशल कलाकार की गढ़ी जीवंत प्रस्तर प्रतिभा-सी छवि थी उदाली की।

आचार्यश्री ने होयसलराज की ओर देखा। पिछले दस वर्षों से वह महाराज के मन का भाव, एक ही दृष्टि में जान लेते रहते हैं, लेकिन आज समझ में नहीं आ रहा था।

दृष्टि उठाकर उन्होंने उदाली को देखा। उसके पास गए। उसके कन्धे पर अपना हाथ रखा।

'उदाली'—उन्होंने धीमे से कहा।

'श्याम भारती' के विरुद से विख्यात उदाली ने अपनी उसी स्थिरता में उत्तर दिया—'मुझे कौन बुला रहा है ? किसलिए बुला रहा है ?'

'उदाली, यह मैं हूँ, व्यंकटनाथ, वेदातदेशिक'...

उदाली के रास से रंगवाले श्यामल। चेहरे पर, कही-कही लाल रेखाएँ प्रकट होने लगी।

'भगवन्, भले पधारे ! आशीर्वाद दीजिए।'

'किसलिए ?'

आज्ञा दीजिए, भगवन् ! आशीष दीजिए ! मैं अपने नाथ के साथ सती होना चाहती हूँ।'

'उदाली !' आचार्यश्री ने दबे हुए स्वर में कहा—'उदाली ! क्या तू अपने आपको, अपनी जाति को भूल गई है ? तू देवदासी—महादेवदासी, आल्वर, परन्तु है तो देवदासी—श्रीमन्नारायण के अतिरिक्त, दूसरा कोई तेरा नाथ नही हो सकता !'

'आचार्यश्री आप विद्वान् हैं ! कुलगुरु हैं ! सकल परम्पराओं के पंडित हैं। मैं स्त्री हूँ, देवदासी हूँ, फिर भी नारी हूँ ! मेरा नाथ यह रहा।'

प्रतापरुद्र के शीश की ओर उँगली का सकेत कर, उदाली बोली—'आचार्यदेव ! मैं नारी, जब जब यह कहती हूँ कि यह रहा मेरा स्वामी, तब क्या आप मेरे नारी-धर्म को अस्वीकार करेंगे ? मुझे आशीर्वाद नही देंगे ? मुझे यह इष्ट नही कि मैं आपकी आशीष से वंचित रहकर चली जाऊँ।'

—उदाली का स्वर निर्भाव, निष्कम्प था। प्रतिमा के समान उसकी देह में, किसी प्रकार की कोई गति न थी !

आचार्यश्री ने होयसलराज की ओर देखा।

होयसलराज आगे बढे—'उदाली !'

उदाली ने कहा—'महाराज ! आप तो जानते हैं, नारी के जीवन-धर्म और मृत्युधर्म के मार्ग मे कोई राज्यादेश बाधा नही बन सकता, यह हमारी परम्परा है।'

'हाँ ! और, आपके नारीधर्म के विरुद्ध कोई राज्यादेश देना नही चाहता ! मैं तो इतना ही कहना चाहता हूँ कि अपने विवाहित अथवा मन में स्वीकृत पति के साथ स्वर्ग के सोपान चढनेवाली सती जगदम्बा का अवतार

कही जाती है।...जगदम्बा ! आपकी कोई इच्छा शेष है ? कोई कामना है ?'

'नहीं, पर एक बात कहूँगी।'

'इसीलिए प्रार्थना कर रहा हूँ।'

'तो सुनो राजन् !'—साँचे में ढली प्रतिमा के समान उदाली धीरे-धीरे उठ खड़ी हुई—'इस संसार में मात्र एक देवता है। और इस धरती के अतिरिक्त, अन्य कोई देवता नहीं। सभी देवों की माता है धरती। इसलिए मानवमात्र का एकमात्र देव—देवी वसुन्धरा ! महाराज ! धरती धर्म के बल नहीं टिकती है, धर्म के लिए अपने सर्वस्व का बलिदान देनेवाले वीरों के त्याग से टिकती है। समाज के लिए अपने जीवन की आहुति देनेवाले त्यागियों के प्रताप पर धरती स्थित है। उनकी मृत्यु से धरती अपना नवजीवन प्राप्त करती है। माता की रक्षा करने पर मानव अमर हो जाता है। जो धरती को माता मानता है, वही सच्चे धर्म का आचरण करता है, जो उसे अपनी सम्पत्ति समझता है, वह पाखण्डी है। राजन् ! वही जीवित रहता है, जो सत्याचरण करता है। मैं आपको आशीर्वाद देती हूँ कि जगज्जननी माता वसुन्धरा आपको सत्याचरण और सत्यज्ञान के उपयुक्त बल दे !...अधिक कुछ कहना नहीं है। मेरे महाप्रयाण कीतैयारी करवाओ !'

सब वहाँ मूक और मूढ़ बने खड़े रह गए। तभी एक सैनिक अधिकारी आया और श्रीकंठ के कान में उसने कुछ कहा।

श्रीकंठ बोला—'महाराज ! राजबंदी आपके आदेश की प्रतीक्षा कर रहे हैं।'

'महाराज !'—वेदांतदेशिक महाराज ! ने कहा—'भगवती उदालीदेवी को अपने ध्यान में मग्न रहने दीजिए।' फिर श्रीकंठ की ओर देखकर कहा—'राजबंदियों को राजमहल में ले जाओ। महाराज वहीं उनका न्याय करेंगे।'

'क्षमा करें भगवन् ! किन्तु इन राजबंदियों का न्याय इसी देव-मंदिर में होगा, यही उपयुक्त है। उनके लिए जो दण्ड निश्चित किया है, वह, श्रीमन्नारायण के चरण-शरण में देना ही उचित है।...श्रीकंठ आचार्यश्री की अनुज्ञा प्राप्त करो और भगवती उदाली के ध्यान में विघ्न न आए, इस भांति, राजबंदियों को गोपुर के नीचे उपस्थित करो।....हम भी वहीं आ रहे हैं।'

१० : कदरुपट्टन

श्रीकंठ के सैनिकों की नंगी तलवारों के साये में राजबंदी खड़े थे। इनमें सोमैया नायक भी था जिसे पालकी में लाया गया था, वह कृष्णाजी नायक के कंधे पर हाथ रखकर जल्दी-जल्दी अपने पैर बढ़ाए रास्ता ढूंढ रहा था। इसकी आँखों पर पट्टियाँ बँधी थीं। पट्टियों पर खून के गहरे धब्बे पड़े थे।

संगमराय और हरिहर दोनों वहीं थे। वारंगल के लिए प्रस्थान करनेवाला यह नवजवान हरिहर होयसलराज को द्वन्द्व युद्ध की चुनौती दे चला था। वारंगल जाने के पहले वह अपनी माता शारदादेवी से आज्ञा लेना चाहता था। और संगमराय ने सोचा कि वह भी जरा पत्नी से मिल ले। सो, उनके घर पर ही दूसरे चार पुत्रों की उपस्थिति में श्रीकंठ के सैनिकों ने संगमराय और हरिहर को पकड़ लिया था। हरिहर से छोटा युवक यह देखने के लिए पीछे-पीछे आया था कि आगे क्या होता है, उसे माता का आदेश था।

महाराज वहाँ आए। उनके पीछे-पीछे राजरानी आईं, वह कि जो इतने वर्ष उनके साथ गृहसंसार बसाकर भी उनके मन का आरपार न जान पाई थी। साथ में राजकुमारियाँ भी थीं। देवमन्दिर के कर्मचारी भी एक ओर खड़े थे।

गोपुर के बाहर छोटी-सी भीड़ खड़ी थी और उसकी चौकियों पर चौकी पहरा था।

महाराज के पीछे-पीछे श्रीकंठ आया। श्रीकंठ व्यग्र था परन्तु राज-धर्म के पालन में उसकी तलवार म्यान से बाहर थी। जो कुछ हुआ और जो कुछ होने जा रहा है, वह उसे पसन्द है या नहीं, यह सोचने का समय नहीं था, शायद इसी कारण वह परेशान नज़र आता था। राजबन्दियों ने भी साधारण शिष्टाचार के रूप में प्रणाम किया।

सैनिकों के नायक ने सोमैया के कंधे पर हाथ रखकर कहा—"नायक सोमैया, चक्रवर्ती तुम्हारे सामने खड़े हैं उन्हें बन्दन करो।"

सोमैया ने अजब शान से जवाब दिया—"लिंगायतनाथ के सिवाय यह मस्तक किसी के सामने न तो झुका है और न झुकेगा।"

श्रीकंठ ने आग्रहभरे स्वर में सलाह दी—"सोमैया नायक, शिष्टाचार की माँग है कि आगन्तुक व्यक्ति चक्रवर्ती को प्रणाम करे। और तुम तो राजबन्दी हो।"

"श्रीकंठ नायक...तुम श्रीकंठनायक ही हो न, क्योंकि नज़रों से मैं तुम्हें नहीं देख सकता, केवल आवाज़ से पहचान सकता हूँ। नायक! पशुपतिनाथ के सिवाय यह मस्तक आज तक किसी नरपुत्र या नरनाथ के सामने न झुका है न झुकेगा ही।"

सुनकर होयसलराज ने कहा—"तुम्हारा यह अभिमान अपार है इसी-लिए तुम्हारे मुंह से अभिमानपूर्ण वचन निकल रहे हैं।"

"होयसलराज, अभिमान तो राजा रावण का भी नहीं रहा। अत-एव मैं किस पर अभिमान करूँ। आप स्वयं दक्षिणापथ के चक्रवर्ती। आपका भी जब अभिमान न रहा तो फिर मैं तो सामान्य पाण्ड्य नायक! धरती का एक छोटा-सा टुकड़ा जोत-बोकर पेट भरनेवाला। लेकिन मेरा व्रत मेरे इष्टदेव के हाथ है। मेरी धरती माता के हाथ है। अपने व्रत के लिए अपना शीश देना है। आप चाहे तो खुशी से तलवार के एक वार से इसे उतार सकते हैं किन्तु इसे झुका नहीं सकते।"

होयसलराज बोले—"मेरी इच्छा है कि तुम्हारे इस अभिमान की थाह लूँ। म्लेच्छों के आने तक राह देखूँ। देखता हूँ तुम्हारा माथा म्लेच्छों के सामने झुकता है या नहीं ?"

"महाराज ! मैं पंगु हूँ और मेरी शक्ति ही क्या ? लेकिन जब तक दक्षिणापथ में कृष्णा, कावेरी, पेन, ताम्रवर्णी जैसी नदियाँ हैं और तीन दिशाओं में महासागर है, तब तक तो सोमैया नायक जलसमाधि ले सकता है, पर, म्लेच्छों को 'म्लेच्छ' ही कहेगा मालिक नही।"

"ऐसी बात है यदि, तो तुम्हें दण्ड देना पड़ेगा।"

"मैं अकेला हूँ और आप अपने सैनिकों से सुसज्ज हैं। इसलिए चूहे और बिल्ली का यह खेल खेल सकते हैं।"

"तो सुन लो सोमैया नायक, मैं तुम्हारे दण्ड की घोषणा करता हूँ— तुम्हारा सिर जो आज तक किसी मनुष्य के सामने न झुका, वही मस्तक कभी एक बार झुकता है या नही, देखता हूँ।"

"वल्लालराज"—संगमराय ने व्यथित पर ऊँचे स्वर में कहा, "आपने सोमैया नायक को इस अपमानपूर्ण दशा मे रखकर मुझसे वचन भंग किया है। यदि इनके मुँह से आह नहीं निकलती तो इसका यह अर्थ नही कि इनके मन मे वेदना नही है ! आप तो इनके सिर पर भारी भार रखकर दूसरा अन्याय करने जा रहे हैं। आप राजा हैं या राक्षस ?"

हरिहर ने अपने पिता को रोकते हुए कहा—"पिताजी, जिस जगह मनुष्य के वचन का मूल्य नही वहाँ हमारा बोलना व्यर्थ है। जो व्यक्ति अपने ललकारने वाले के प्रति आभीर व्यवहार की पूर्ति नही करता उससे दूसरी क्या अपेक्षा रखी जा सकती है ! लादने दीजिए इन्हें सोमैया नायक के माथे पर भार। जो राजा प्रजा के मन पर राज्य नही कर सकता, वही प्रजाजनों के हाथ-पैर तोड़ता है और आँखें फोड़ता है।"

"तुम्हारी सम्मति उचित है। मुझे आशा है कि तुम्हारे पिता तुम्हारी बात मान लेंगे, क्योंकि दण्ड की तुम्हारी बारी भी आ पहुँची है, श्रीकंठ !'

"जी महाराज,"

"सोमैया नायक को मेरे सामने लाओ।"

"इसमें दण्डनायक श्रीकंठ को कष्ट देने की क्या आवश्यकता ? मैं स्वयं ही चला आता हूँ।" और वह चार कदम आगे बढ़ा।

होयलराज आगे बढ़े। अपनी तलवार उन्होंने म्यान से निकाली। सबकी साँस स्थिर रह गई! "सोमैया नायक, होयसलराज का यह खड्ग मैं तुम्हारे हाथ में देता हूँ। समस्त दक्षिणापथ का भार तुम्हारे सिरपर रखता हूँ।"

"महाराज।"

"हाँ सोमैया नायक, म्लेच्छ आ रहे हैं। म्लेच्छों के लिए समस्त दक्षिणापथ एक-सा है। उनकी नज़र में कर्नाटक या पांड्य, चेर या तमिल का कोई भेद नहीं। तो फिर मैं कहता हूँ आततायियों का सामना करने के लिए हम भी इस भेद को क्यों स्वीकार करें! क्यों न इसे दूर कर दें? आज से, सोमैया नायक, अखिल दक्षिणापथ की रक्षा का भार तुम पर है। पांड्य तुम्हारा है और कर्नाटक भी तुम्हारा है। तुम्हारे अधीन है।...जो मस्तक किसी इन्सान के सामने आज तक नहीं झुका, उस तुम्हारे मस्तक को मैं अपना शीश झुकाता हूँ। नायकवर, यह खड्ग स्वीकार करो। वारंगल की महादेवी रुद्राम्मा ने भेजा है यह खड्ग। इस खड्ग की गौरवगाथा तुमने कृष्णाजी नायक के मुँह से सुनी है। और वारंगल के अपूर्व बलिदान का साका भी सुना है। अब इस गौरववन्त बलिदान के संरक्षण और पोषण का भार तुम पर है।"

प्रत्येक श्रोता अचल-स्तब्ध रह गया।

वीर बल्लारदेव ने इधर उधर दृष्टि दौड़ाई। देखा कि आचार्यश्री आकर पीछे खड़े हैं। तभी कृष्णाजी नायक दौड़ा और बल्लालदेव के पैरों से लिपटकर कहने लगा—"महाराज, क्या यह, सोमैया नायक का अपमान करने का कोई नया तरीका आपने खोजा है, यदि ऐसी बात है तो मेरा सिर इस तलवार से अभी काट लीजिए। अन्यथा....

"अन्यथा?"

"अन्यथा आज, महाराज, दक्षिणापथ का भाग्योदय हुआ है।"

"तो सुनो सर्वजन! आज वीर बल्लाल का पुनर्जन्म हुआ है! मैं आज भगवती रुद्राम्मा का संदेश शीश पर चढ़ाता हूँ। आज श्रीमन्नारायण के सामने प्रतिज्ञा करता हूँ कि जब तक प्राण रहेंगे, दक्षिणापथ की रक्षा में

निरत रहेंगे। दक्षिणापथ की प्रजा को मुझमें विश्वास नहीं, क्योंकि मेरा पिछला इतिहास ही ऐसा है, लेकिन मैं शपथपूर्वक कहता हूँ कि पूर्व के उस कलंक को मैं अपने लहू से धो दूँगा। सोमैया नायक पर सबका विश्वास है इसलिए जो सहयोग मुझे नहीं मिलता, वह इन्हें मिल जाएगा। मैं जानता हूँ कि यह भार—प्रचण्ड भार है। लेकिन यह शीश भी समुन्नत और अमोघ है। यदि इस भार से यह शीश झुक जाएगा तो दक्षिणापथ में फिर किसी का सिर ऊँचा न रह सकेगा! सोमैया नायक, इस भार को स्वीकार कीजिए...और समस्त दक्षिणापथ के महाकर्णाधिप के रूप में, कर्नाटक देश का राजा, महाराजाधिराज होयसलराज वीर बल्लालदेव आपको सबसे पहले नमस्कार करता है।"

सोमैया नायक ने एक लम्बी साँस ली। मनोकष्ट से कंपित स्वर में कहा—"कर्नाटकराज किसलिए मुझे कष्ट दे रहे हैं? किसलिए मृगजल दिखाकर लुभा रहे हैं?"

इस पर, वेदान्तदेशिक महाराज आगे बढ़ आए—

"सोमैया नायक! मैं, श्रीरंगमठ का कुलपति, कर्नाटक के राज्य और कर्नाटक के राजकुल का कुलगुरु—मेरा नाम व्यंकटनाथ वेदान्तदेशिक आचार्य—ब्राह्मण जन्म से, ब्राह्मण कर्म से और ब्रह्मत्व की समस्त साधना को साक्षी रखकर कहता हूँ और विश्वास दिलाता हूँ, सोमैया नायक, यदि महाराज किसी प्रकार तुम्हारा अपमान या उपहास कर रहे हों, तो आज इस स्थान पर, सबसे पहले वेदान्तदेशिक की लाश गिरेगी। महाराज उपहास नहीं करते, इसलिए दक्षिणापथ के महाकर्णाधिप सोमैया नायक का मैं, कर्नाटकराज का कुलगुरु अभिवादन करता हूँ और आशीष देता हूँ।"

अपनी आँखों पर बँधी पट्टी पर दोनों हाथ धरकर, सोमैया नायक वहीं बैठ गया और उसके कंठ से एक महानिःश्वास निकला कि मानो रंगमंडप का प्रत्येक स्तंभ डोल उठा—

"हे महावसुन्धरा, आज तूने अमित उपकार किया। लेकिन इस घड़ी के आने से पहले मेरी आँखें लेकर तूने जाने किस जन्म के पाप का दण्ड

दिया है...महाराज, एक जन्म क्या हजार जन्म का वैर हो तो भी, आज अपनी महानता से आपने उसे धो दिया है। सोमैया नायक आपका जन्म-जन्म ऋणी रहेगा।...लेकिन महाराज, जरा सोचिए मैं क्या कर सकता हूँ, मैं पंगु हूँ। और महाराज, जब आपकी आँखें खुलीं तब मैं अंधा हूँ..."

"सोमैया नायक, आप अंधे नहीं हैं। मैं आपको आँखें भी दूँगा। अपनी पुत्री माला का विवाह आपसे कराता हूँ। यह तुम्हारी दृष्टि बनकर रहेगी।"

सोमैया के अंग-अंग में प्रकम्पन छा गया। तब वेदान्तदेशिक महाराज ने कहा—"आइए मालादेवी, कुलगुरु और कुलपति की आज्ञा है, आज की घड़ी से दक्षिणापथ के महाकर्णाधिप की आँखें बनकर रहो।"

लजाती हुई राजकन्या आगे बढ़ी। उसका हाथ वेदान्तदेशिक ने सोमैया के हाथपर रख दिया—"आज आपकी लग्नविधि पूर्ण होगी, परन्तु गांधर्व विवाह तो इसी समय हो गया है। दक्षिणापथ के महाकर्णाधिप की महादेवी आयुष्यमति, सौभाग्यवती यशवती बनें!"

"सोमैया नायक, मैंने आपको आँखें दी। मुझे विश्वास है अपनी बेटी में कि वह आपकी आँखों से अधिक सावधान रहेगी। अब मैं आपको एक दण्ड देता हूँ। मेरा ख्याल है, यह दण्ड आपके लिए एक आधार सिद्ध होकर रहेगा। आपका दाहिना हाथ बनकर रहेगा।"—इतना कहकर महाराज ने इधर-उधर देखा—"यहाँ एक ऐसे व्यक्ति हैं, जिन्हें एक क्या सहस्र मौतों का भय नहीं। उनमें एक तो आप हैं और दूसरा एक नौजवान है, इसे मैं आपको सौंपता हूँ—आज से यह दक्षिणापथ का दण्डनायक है, इसका नाम है हरिहर।"

हरिहर तो अपना नाम सुनकर उछल पड़ा। कृष्णाजी नायक और श्रीकंठ के सम्मुख उस जैसे नवयुवक को महाराज इस प्रकार स्मरण रखेंगे, इसकी उसे स्वप्न में भी कल्पना न थी!

"हरिहर"—महाराज ने कहा—"दक्षिणापथ में तुमसे अधिक समझदार व्यक्ति और भी कई हैं, लेकिन अब जो समय आ रहा है उसमें समझदारों का कोई उपयोग नहीं। तू मूर्ख है, महामूर्ख है, लेकिन अब मूर्खों और

महामूर्खों का ही समय आ रहा है। हरिहर, तू आज से दक्षिणापथ का दण्डनायक।..."

महाराज ने आगे कहा—"कर्नाटक देश के राजा के रूप में स्वतंत्र आदेश देने का मेरा अधिकार आज से पूर्ण होता है। स्वतंत्र कर्नाटकराज के पद से मेरा अन्तिम स्वतंत्रादेश यह है कि आज से कर्नाटक देश की राजधानी, दक्षिणापथ की राजधानी द्वार-समुद्र नहीं, कदरपट्टन* रहेगी।"

महाराज के पीछे से जैसे किसी चीज़ को फाड़ने की आवाज़ आई। महाराज ने पीछे देखा, वेदान्तदेशिक आचार्य अपने भोजपत्र फाड़-फाड़कर फेंक रहे थे। महाराज ने पूछा—

"भगवन्, यह क्या?"

"राजन्, तूने अपने राजधर्म का पालन किया। अब मैं अपना सेवाधर्म पूरा करता हूँ। भागवत और शैव, भागवत और वीर शैव, भागवत और निर्गंठ कितने भिन्न हैं और कौन बड़ा और कौन छोटा है, यह राग अलापने का कुअवसर अब नहीं रहा है, अतएव भिन्न भाव का गौरवगान गाने वाले अपने ग्रन्थ "शतदूषणी" को मैंने नष्ट कर दिया है।"...

कुछ देर चुप रहकर फिर वे कहने लगे—"मानव मानव से और सम्प्रदाय दूसरे सम्प्रदाय से कहाँ-कहाँ भिन्न है, यह देखने-परखने और भिन्न भाव की खाई को बढ़ाने के बजाए हमें यह देखना चाहिए कि ये मनुष्य और ये सम्प्रदाय कहाँ तक मिलकर काम कर सकते हैं और कहाँ तक एक ही पथ पर प्रयाण कर सकते हैं—यही यथार्थ साहित्यधर्म है।"

वेदान्तदेशिक आचार्य ने अपने भोजपत्रों के टुकड़े दोनों हाथों मसलकर कहा—"श्रीकंठ, जरा अग्नि लाओ और इन सब टुकड़ों को अशेष रूप से जला दो। देखना एक छोटा-सा टुकड़ा भी बाकी न बचे!"

---

*कदरपट्टन का अर्थ है घोड़े की पीठ यानी वीर बल्लालदेव ने घोड़े की पीठ को अपनी राजधानी बनाई। डॉ. सॉलिटर ने अपने ग्रंथ में इस कथन का उल्लेख किया है।

११ : अतिथि

द्वारसमुद्र के भद्रावती नामक द्वार से एक मुसाफिर नगर में प्रविष्ट हुआ। इस मुसाफिर की वेशभूषा से स्पष्ट था कि यह कोई साधारण व्यक्ति नहीं है। उसके शरीर पर तिरुपति की मलमल का बढ़िया उत्तरीय था। वह वारंगली मखमल की वंडी पहने हुए था। इस वंडी पर सोने के बटन लगे हुए थे। उसका उत्तरीय इस तथ्य का द्योतक था कि वह उच्च कुलोत्पन्न है, क्योंकि निम्नवर्ग के लोग उत्तरीय नहीं पहनते थे। और इसके बदन पर तो न केवल उत्तरीय ही था, श्रीमंतों की मखमली वंडी भी सुशोभित थी। वंडी के अतिरिक्त इसकी रईसी का प्रमाण थी खंभाती धोती। पैरों में कीमती पदत्राण भी थे। उस समय साधारण जन जूते नहीं पहनते थे सिर्फ नाचनेवालियाँ और रईस लोग पैरों में चप्पल पहनते थे। राजा भी अपनी राजसभा में लकड़ी की खड़ाऊँ पहनते थे, जिन पर हीरे जवाहरात जड़े रहते। उस मुसाफिर ने नीलगाय के चमड़े के बड़े-बड़े जूते पहन रखे थे। इससे उसकी शाहखर्ची जाहिर होती थी और सिद्ध था कि यह उच्च-वर्ग का शौकीन तरुण है।

उस काल में सामान्य शिकारी नीलगाय का शिकार नहीं कर सकते थे। इस नियम का उल्लंघन करनेवालों के हाथ काट लिए जाते थे। कम से कम एक गाँव का अधिपति ही नीलगाय का शिकार कर सकता था। और नील गाय का शिकार कोई हँसीखेल नहीं। वन के अन्य प्राणियों की अपेक्षा नीलगाय बहुत ही चपल और तेज़ गति वाली प्राणी है। वनचरों में चीता

बड़ा चालाक और तेज माना गया है, लेकिन बिफरी हुई नीलगाय के सामने यह चीता भी कोई चीज नहीं। और अपनी दौड़ से, तो नीलगाय को पीछे छोड़ दे, ऐसा कोई अरबी घोड़ा, इस देश में कोई सौदागर आज तक नहीं लाया।

इससे यह ज्ञात होता है कि नीलगाय के चर्म से बने जूते कितने महँगे होने चाहिए। मुसाफिर के कान में हीरे के कुण्डल थे। उँगलियों में हीरे की अँगूठियाँ थीं। कमर पर तलवार लटकती थी, जिसकी मूठ और म्यान पर हीरे जड़े थे। उसके सिर पर ऊँची, कामदार टोपी थी। टोपी की दोनो किनारियाँ मोतियों से भरी थी।

यह मुसाफिर लगभग तीस साल का था। दुबला-पतला था, मुँह कुछ लम्बा था। चेहरे पर भोलापन था, पर उसके पीछे छद्मता छिपी थी। आँखों में कुटिलता और क्रूरता थी।

ऐसा यह मुसाफिर, एक महँगे घोड़े पर सवार होकर, द्वारसमुद्र की सड़कों पर आगे बढ़ रहा था। अब तक उसके अरबी घोड़े की चाल मस्तानी थी। जरूरत पड़ने पर यह घोड़ा दक्षिण के पठारों में दौड़ सकता था। पहाड़ की किनारियों पर दौड़ जाना उसके लिए आसान था। अपने सम्पूर्ण यौवन-मद में मदमाती नदियों को पार कर जाना उसके लिए बड़ी बात नहीं थी। यही आकर्षण था कि उन दिनों अरबी घोड़ों की भारी माँग थी।

अरबी घोड़े के इस सवार ने दोरा समुद्र के भद्रावती द्वार से नगर में प्रवेश किया। और उसने समस्त दक्षिणापथ की परम प्राचीन नगरी का दर्शन किया। और सचमुच, कर्नाटक की राजधानी द्वारसमुद्र अत्यन्त प्राचीन नगरी थी। इतिहास के अति प्राचीन काल में द्वारका के यादव यहाँ आ बसे थे।

द्वारका प्रदेश में यादवों के गृह-कलह के पश्चात् प्रलय का रेला आया और जल इतना ऊँचा चढ़ा कि सोमनाथ के देवमंदिर के सर्वोच्च शिखर भी जल में तिरोहित हुए। और प्रलय देवता भगवान सोमनाथ का मंदिर बहा ले गए। अखिल प्रभास पाटनपुरी प्रलय-प्रवाह में बह चली। उधर सरस्वती नदी का जल चढ़ने लगा और इस दशा से भयभीत होकर यादव

लगे भागने। उन्होंने अत्यन्त दीन-मलीन मन होकर, अगस्त्य मुनि की प्रार्थना की। अगस्त्य ने सबको एक प्रवहण में बिठा कर पार किया। बहता-बहता प्रवहण पोत, सागर के तट के समान्तर दीवार की तरह तने हुए सह्याद्रि की छाया में, सागर में बहता गया। आखिर, एक जगह मिली, जहाँ, पर्वतमाला के प्रत्यंत का यह अभंग कोट पूरा होता था। वहां से मानो माया की अन्तरभूमि में, दक्षिणापथ में प्रवेश करने का द्वार उपस्थित था।

यादव वहीं उतर गए। देखा कि सुन्दर, सुहावनी भूमि फैली है। रमणीय और प्रशान्त है यह प्रदेश। वहीं अनाम एक नदी बह रही है। उन्हें अपनी भद्रा नदी का स्मरण हो गया और उसी के नेह में गदगद् होकर उन्होंने इस नदी को भी 'भद्रा' नाम दिया।

यह प्रदेश पश्चिमी घाट का दाक्षिणात्य अन्त था। इससे कुछ ही दूर से ब्रह्मगिरि का आरंभ होता था। बीच के स्थल पर यादवों ने द्वारिका की याद में एक नगरी की स्थापना की। इस नगरी का महत्व बढ़ा, क्योंकि समस्त दक्षिणापथ के यात्रियों और व्यापारियों के लिए, पश्चिम समुद्र का सहज मार्ग यही नगरी थी। सह्याद्रि और ब्रह्मगिरि के मध्य में मुक्त द्वार की तरह उसकी स्थिति थी। कालान्तर में यह नगरी द्वारिका, द्वारसमुद्र और द्वारसमुद्र से दोरासमुद्र आदि नाम पाती गई।

इसी पुण्य नगरी से यादवों ने आन्तर भारत में प्रवेश पाया। दूर तक वे बढ़े। ठेठ जिंजी और मयलापुर, पूर्व समुद्र के छोर तक चले गए। इधर उत्तर में भद्रा को पार कर, तुंग और भद्रा के संगम को पार कर उत्तर-पश्चिम में कृष्णा के परले पार सुदूर देवगिरि तक पहुँचे। इसी प्रकार उत्तर पूर्व में कलिंग देश की सीमा का स्पर्श किया। वारंगल तक उनका विस्तार हुआ।

फिर कब इन यादवों में आपसी फूट फैली, किसी को मालूम नहीं। संभव है महागुजरात की यादवस्थली के गृह-कलह की करुण कहानी का वारसा ये लोग, यहाँ भी, अपने संग लाए। इसके अतिरिक्त पांड्यों से भी उन्हें युद्ध लड़ना पड़ा। चोलों, चौलुक्यों और वाकाटकों से भी उनकी भिड़ंत हुई।

अन्त यहीं नहीं था ! भयंकर तूफान की तरह कलभ्र आए। ये कलभ्र कहाँ से आए, कोई नहीं जानता। बस यों समझिए, एक दिन अचानक जैसे श्मशान में भूतों की सेना उठ खड़ी हुई हो, उस तरह अचानक जाग उठे। फिर तो समस्त दक्षिणापथ में झंझावात बनकर डोलने लगे और इनके पीछे-पीछे विनाश के कागा बोलने लगे। कई प्राचीन राजकुल नष्ट हुए। कई पुराने धर्मों का अन्त आया। लगभग पचास साल तक धरती के धैर्य में सेंध लगा कर ये पाताल में समा गए। और यह भी अज्ञात ही रहा कि ये कैसे और कहाँ विलीन हो गए। परन्तु, जाते-जाते ये अपने साथ ले गए—तंजौर के पाण्ड्यों को, पश्चिम समुद्र के चेरों को, कृष्णा तटवासी सातवाहनों को, कांची के चोलों को और तमिलनाड के तमिलों को। उनके अस्ताचल पर शेष रहे सामंतों के तीन भाग यों थे, देवगिरि के यादव, कर्नाटक के होयसल यादव और वारंगल के काकतीय यादव।

इतिहास ने मानो; अपना सारा पुराना हिसाब निपटाकर, नया पृष्ठ लिखने का निर्णय किया हो, इस प्रकार, लाल लकीर की तरह कलभ्र बढ़े, रुके और मिट गए।

और आज दक्षिण के बलवान, पर, फूट के शिकार हिंदू राजाओं, सामन्तों, नायकों और सरदारों की धरती पर अचल मेरु की तरह, मदुरा में मुस्लिम सल्तनत खड़ी थी। सागर में जैसा छोटा-सा द्वीप हो, लहरें उस पर आक्रमण करती हों, तूफान उस पर वार करता हो, लेकिन द्वीप तो अचल खड़ा रहता है, उसी प्रकार, दक्षिणापथ के हिन्दू-साम्राज्य के मध्य में मदुरा का मुस्लिम सूबा खड़ा था।

सैंकड़ों, सहस्रों वर्षों की परम्परा मुसाफिर के स्मृति-लोक में उदय हुई। उसकी जाने कितनी शुक्ल और कृष्ण पटभूमियाँ उसके सामने आकर चली गईं। तिरस्कार के भाव से उसके अधर खुले और जुड़े।

राजमार्ग पर वह बढ़ता जा रहा था और सतदुर्गों से समन्वित राजपुरी की शोभा निरखता जा रहा था। नगरी के प्रशस्त मार्ग *बीस हाथ चौड़े* थे। दोनों ओर शेट्टियों (श्रेष्ठ, सेठ या व्यापारी) पाचालों (धातु के कारीगर) और पाँचकारकों (पत्थर और मिट्टी के कारीगर) की दूकानें और

पेढ़ियाँ थीं। बीच-बीच में निगंठों के बासीदा, वैष्णवों के भागवत धाम और श्रीधाम शैवों के शिवधाम सुशोभित थे। दूकानों पर देशी और विदेशों में जावा, चीन, अरबस्तान, ईरान और रोम से आयात की गई वस्तुएँ बिक रही थीं। निर्यात के सौदे हो रहे थे। बाज़ार के बीच में शेट्टियों के महाजन वीर वणिक का महा कार्यालय स्थित था। कार्यालय पर बगुलों के दो पंखों के चित्रवाला ध्वज लहरा रहा था। प्रति दस दण्डिन (घड़ी) पर एक भाट—वीर वणिक के कार्यालय के सम्मुख तीन बार शंखनाद गुँजाता। महाजन को अपना ध्वज और अपना शंख रखने का अधिकार था। मार्ग में होलेयों (व्यापारियों का दास) पालेरों (कृपक का दास) और वेसीवागाओं (घर का दास) की दौड़ धूप से काफ़ी चहल-पहल थी। सिर से पैर तक एक सलंग वस्त्र से सजी नागरिकाएँ बड़ी ठसक से आ-जा रही थीं। न तो उनके मुख पर घूंघट की छाया थी, न ही किसी प्रकार का पर्दा था। उनके आभूषणों का पार न था। पैरों में लकड़ी या चर्म के चप्पल थे। कानों में हीरे के कुण्डल, फूलों की वेणियाँ और जूड़े अपनी सुगन्ध फैला रहे थे। सिंगार का अन्त न था कि पान खाते रहने से सदा के लाल होठ सदा के लिए लाल हो गए थे।

मुसाफिर ने देखा कि राजनगर का दैनिक व्यवहार नियमित, अभंग और अनुत्तेजित रूप में समधार चल रहा है, तो उसके होठ की कोरें एक बार और खिंच गईं।

चलता-चलता मुसाफिर राजतोरण-द्वार तक पहुँचा।

राज-द्वार का पहरेदार गुरुड़ नंगी तलवार लिए सन्नद्ध खड़ा था। मुसाफिर ने उसे, एक नज़र डालकर, देखा और कहा—'अरे मसाया (भाई, महाशय का अपभ्रंश ?) ज़रा होयसलराज को सूचना दे दे कि सुंदर पांड्य आपसे मिलने आए हैं।'

सुंदर की रईसी की तड़क-भड़क की वंदना करते हुए गुरुड़ ने कहा—

'महाराज ब्रह्मपुरी पधारे हैं। वहाँ राजगुरु-भगवान वेदान्तदेशिक महाराज की सेवा में उपस्थित हैं।'

'वेदान्तदेशिक...वेदान्त...दे...शि...क...यह कौन है ?'—मुसाफिर के चेहरे पर तिरस्कारपूर्ण हँसी छा गई—'अरे हाँ, वही व्यंकट...भीख माँगते-माँगते वह साधु यहाँ राजगुरु कबसे बन बैठा ?'

राजमहल के कार्यकर्त्ता की शालीनता सहित गुरुड़ ने उत्तर दिया—'यह तो अब आप उन्ही से पूछ लीजिएगा। ज्ञात हो जाएगा।'

'जरूर पूछूँगा, मेंसाया। वह तो मेरा आश्रित था। अच्छा, यह तो बता, इस समय वेदान्तदेशिक महाराज कौन से धाम की शोभा बढ़ा रहे हैं ?'

'श्रीमन्नारायण के श्रीधाम में विराजमान हैं। महाराज भी वहीं हैं।'

'सामने जो नजर आ रहा है, वही है क्या श्रीधाम ?'

'जी, हाँ !'

सुंदर पांड्य ने घोड़े की रास मोड दी।

पीछे-पीछे गुरुड़ सुन्दर पांड्य को रोषपूर्वक और उसके घोड़े को सराहनापूर्वक देख रहा था !

१२ : सुन्दर की भिक्षा

श्रीधाम के गोपुर के वाहर, वीस वर्ष का एक नौजवान वैठा था।

सुन्दर पांड्य इस जवान को पहचानता न था। लेकिन जवान ने इस तरह वात की, मानो वर्षों से इसे जानता है—

'पधारिए, सुन्दर पांड्य !'

'तुम...तुम...मेरा नाम जानते हो ?'

'मैं आप ही की प्रतीक्षा कर रहा था।'

'मेरी प्रतीक्षा...किसलिए ?...मैं तो तुम्हें नहीं जानता।'

'यह ज्ञात होने पर कि आप आनेवाले हैं, प्रतीक्षार्थ मुझे यहाँ नियुक्त किया गया।'

'किसने नियुक्त किया ?'

'हमारे दण्डनायक ने।'

'दण्डनायक ने ? तुम भूल रहे हो !'

'जी नहीं, आप ही सुन्दर पांड्य हैं न ?'

'हाँ'....सुंदर पांड्य इस जवान को क्रोध और विस्मयपूर्वक देखता रहा —'लेकिन तुम्हारे दण्यनायक को कैसे यह मालूम हो कि मैं आनेवाला हूँ !'

'आप उन्हीं से पूछ लेना।'

दूसरी वार, दूसरे व्यक्ति से भी, यह उत्तर पाकर सुन्दर को चिढ़ आ गई।

कहने लगा—'आजकल तुम्हारे देश में यह क्या हो रहा है ? छोटे-बड़े का कोई भेद नहीं रहा ? कोई समझ, विवेक, मर्यादा—कुछ न रहा !'

जवान चुप रहा।

इस पर सुन्दर बोला—'चुप क्यों हो ? जानते हो, मैं कौन हूँ ? बल्लालदेव से मैं तुम्हारी शिकायत करूँगा।'

'मुझे आदेश है कि मैं आपको वहाँ तक ले जाऊँ। उनसे साक्षात्कार होने पर, आप जो कुछ कहना चाहें, कह दें।'

'कहूँगा, इसमें तुम्हारी अनुज्ञा नहीं चाहिए।' सुन्दर ने होंठ चबाया। उसकी कुटिल-दृष्टि जवान को सिर से पैर तक देखती रही।

जवान की वेशभूषा और उसके राजचिन्हों से प्रकट था कि वह होयसल राज्य का एक 'देशिक' (समस्त राज्य में जिसका अधिकार शासन चलता है) है।

सुन्दर के मन में शंका पैदा हुई। फिर से कुटिल भाव उसके चेहरे पर झलकने लगे। जवान से वह कहने लगा—

'अब समझा मसाया ! रसिक राजा की सेवा करते समय, वय और अवस्था बाधा नहीं बनती। होयसलराज की नई राजरानी क्या तुम्हारी बहन है ?'

नौजवान की आँखों से ज्वालामुखी फूटा। परन्तु अपने क्रोध पर अंकुश रखते हुए, उसने कहा—'जी, मेरी कोई बहन नहीं कि होयसलराज की राधा बने या किसी सिपहसालार की दंडकणिका* बने !'

नाजुक टहनी पर लगे फूल को जैसे किसी ने तलवार के एक झटके से काट दिया हो, उस तरह सुन्दर के नकली चेहरे की नकली मुसकान कट कर, ओझल हो गई और उसका चेहरा रक्तविहीन और फीका पड़ गया। पल भर के लिए उसकी आँख में, खून करने का जुनून छलक आया, परन्तु उसे रोक कर, जहरीले नाग की फुंकार में हृदय के भार के साथ कहने लगा—'तुम्हारी

*दंड अर्थात् एक घड़ी। कणिका यानी वेश्या—कुछ समय के लिए, जो किसी की प्रिया या रखैल बनकर रहे।

उम्र छोटी है और जीभ लम्बी है। तुम्हारा नाम याद रखना होगा !"

"मेरा नाम—नागदेव।"

"नागदेव, अब यकीन रखना, तुम्हारा यह नाम भूलूंगा नहीं।"

"जी"—नागदेव ने सारा विनय समेट कर कहा—"जी, मेरा नाम नागदेव। मैं सभा में अमाराय (सेना में एक हजार सैनिकों की टुकड़ी का अधिनायक) हूँ।"

"तुम अमाराय ! अभी उम्र में बहुत छोटे हो। शायद वेदान्तदेशिक महाराज की पहचान से नौकरी मिल गई है ! पहले तो ये महाराज घर-घर भीख मांगते थे अब राजगुरु बन बैठे। ब्राह्मणों का क्या, उन्हें लड्डू खिला दो और दोस्ती पक्की। ये लोग अपने बीवी-बच्चों को भूल सकते हैं पर लड्डू नहीं भूल सकते।"

"लेकिन भगवान वेदान्तदेशिक भागवत-सिवाय किसी दूसरे की भिक्षा ग्रहण नहीं करते।"

"तो क्या तुम भागवत नहीं; शैव ही हो ?"

"जी, न तो मैं शैव हूँ, न वैष्णव।"

"तो वीर शैव होगे। सुना है आजकल इन्हीं की तूती बोल रही है।"

"मैं वीर शैव भी नहीं हूँ।"

"फिर कौन हो ?"

"मैं जैन हूँ।"

"जैन, जैन !....वीर बल्लाल के भागवत राज्य में जैन अमाराय कब से बनने लगे ?" सुन्दर के विस्मित चेहरे पर उलझन की काली बदली छा गई—

"नागदेव, आपसे एक सवाल पूछूं तो, आपकी राजभक्ति में बाधा तो नहीं आएगी ?"

"आपका सवाल-सुने-बिना यह कैसे कह सकता हूँ ?"

"होयसलराज बल्लालदेव ही....कर्नाटक के राजा हैं, या दूसरा कोई राजा बन बैठा है ? अच्छा अब चलें तुम्हारे राजा के पास।"

"चलिए, मुझे यही आदेश है।"

नागदेव आगे-आगे चलने लगा।

सुन्दर के चेहरे पर तनिक विस्मय, तनिक चिढ़, तनिक तिरस्कार और तनिक रोष छाया था।

गोपुर से गुजर कर स्फटिक की सीढ़ियाँ चढ़कर, वे सभा-मण्डप में आ पहुँचे। मन्दिर से आगे बढ़े, जहाँ पीछे की ओर कुछ कमरे थे। द्वार पर एक गुरुड बैठा था। नागदेव कमरे में गया।

"महाराज, अतिथि आ पहुँचे हैं। आपके दर्शन की प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

कक्ष में काठ के एक आसन पर राजगुरु बैठे थे। दाहिनी ओर वीर बल्लालदेव आसीन थे। जब सुन्दर कमरे में पहुँचा तो बल्लालदेव ने उसे एक आसन पर बैठने का सकेत किया। यह आसन ऐसी जगह पर स्थित था कि न तो इससे किसीका मान ही बढ़ता था न अपमान ही होता था। लेकिन सुन्दर के मन में तो यह आशा थी कि सब उठकर उसका सम्मान करेंगे, किन्तु अपने लिए स्वयं ही, माग कर मान चाहनेवालों की जैसी दुर्गति होती ,वैसी सुन्दर की हुई। इस स्थिति में बैठा सुन्दर यह सोच रहा था कि एक दिन आएगा, जब वह अपने इस अपमान का बदला लेगा और इन महाराज और राजा को एक पाठ पढाएगा।

'कुशल है, बल्लालराज ?'—सुन्दर ने पूछा।

"हाँ, समय के अनुसार कुशलता है। आप सकुशल हैं न ?"

"जी महाराज, मैं भी समय के प्रमाण में सकुशल हूँ।"

फिर सुन्दर ने अर्ध-ध्यान-मग्न वेदान्तदेशिक आचार्य पर नजर डाली। और एक अनजान पर, निर्लज्ज स्वर में कहा—"कौन व्यंकटनाथ, आप साधु महाराज यहाँ कहाँ से आ पहुँचे ?...बाहर आपका वह छोकरा—लड़की जैसा अमाराय कहता था कि आप तो, यहाँ अमाराय बन बैठे हैं ?"

सम्पूर्ण शान्ति और स्वस्थतापूर्वक आचार्यश्री ने उत्तर दिया—"महाराज की इच्छा थी।"

"अच्छा हुआ। वैसे तो कहते हैं कि साधु तो चलते भले, लेकिन अच्छा आसन मिल जाए तो बैठ जाना भी क्या बुरा है!"

"हाँ, साधु का धर्म-कर्म संसारी व्यक्ति की समझ से बाहर है।"

सुन्दर चुप रह गया। तभी उसकी नज़र होयसलराज की ओर गई। आश्चर्यपूर्वक कहने लगा—"महाराज ! राजन् ! क्या बात है ? आज आपके हाथ में बाजूबन्द नहीं, वस्त्र भी सूती हैं, कान में कुंडल नहीं और सिर के केश भी खुले हैं। शोक की कोई बात है ?"

"हमारे यादव कुलसूर्य महाराज प्रतापरुद्र का अवसान हुआ है और उनके पीछे, देवी उदाली सती हुई हैं।"

"क्या वारंगल के काकतीय यादवराज का देहान्त हो गया ?"

"क्यों इसमें आश्चर्य की क्या बात ? आप तो वारंगल के घेरे में थे।"

सुन्दर ने दाँत पीसे। लगता है, ये लोग उसके प्रत्येक कार्य से परिचित हैं। उसका यह अनुमान न था कि होयसलराज इतने चतुर हैं। घबराकर उसने कहा—"क्या कह रहे हैं ? वारंगल के घेरे में था ?"

"थे। वारंगल पर हमला करनेवाली म्लेच्छ सेना के पूर्वी भाग के मनसबदार आप ही थे। आप इस बात से अनजान हैं, सुनकर विस्मय होता है।"

सुन्दर हँसने लगा। उसने देख लिया कि अब कुछ नकटापन ज़ाहिर कर देना ज़रूरी है—"आपको विस्मय होता है, उससे अधिक मुझे है कि वारंगल के प्रतापरुद्र से आपका सम्बन्ध कब से स्थापित हुआ ?"

"मसाया ! सम्बन्ध तो सत्तर पीढ़ी तक कहीं नहीं जाता। आज हमने यादवकुल प्रथमोत्तम महाराज प्रतापरुद्र का श्राद्ध किया है।"

"आपने उनका श्राद्ध किया, पिंडदान दिया, ये सब विस्मय का विषय है और इससे अधिक अजीब बात तो यह है कि देवदासी उदाली ने उनके संग सहगमन किया ! लेकिन महाराज, आपके शासन में इतना अंधेरा है, यह सब से अधिक आश्चर्य की चीज़ है।"

"मैं तुम्हारा अन्तिम आशय नहीं समझा।"

"प्रतापरुद्र से आपका सम्बन्ध कैसा रहा है—यह तो, यहाँ से दिल्ली-तक सब लोग जानते हैं....लेकिन वारंगल का राजा आपके दुर्ग में प्रविष्ट होकर छिपे-छिपे मन्दिर की देवदासी के साथ, घर-संसार बसा जाए, यह तो अजब चीज़ है और इसका अर्थ यही है कि आप लोग गफलत में रहे।"

बल्लालदेव ने जरा गरम होकर कहा—"अनामंत्रित हो तुम, फिर भी हमारे अतिथि हो, वरना महासती उदाली के ऐसे अपमान के कारण तुम्हारी जीभ बाहर खींच लेता।"

"राजन, आप मेरा अपमान कर रहे हैं। ज्यों-ज्यों मैं अपमान को पचा रहा हूँ त्यों-त्यों अपमान करने की आपकी वृत्ति बढ़ती जा रही है।"

"आपका अपमान करने की मेरी कोई इच्छा नहीं। देवगिरि के म्लेच्छ दरबार में रहनेवाला व्यक्ति आर्यत्व की महिमा को नहीं समझ सकता, यह स्पष्ट है। और देवगिरि के म्लेच्छों से आपका काफ़ी सम्बन्ध रहा है।"

"यदि मैं भूलता नहीं तो, राजन्, केवल मेरा ही नहीं, आपका भी काफी सम्बन्ध रहा है। और इस सम्बन्ध का आरंभ इसी धाम में हुआ है। पूछिए आचार्यश्री से।"

"आचार्यश्री तो भगवान के आदमी हैं महाराज। इनका क्या, यहाँ से दूसरी जगह चले जाएँगे लेकिन संसारियों के लिए बड़ी कठिनाई है। एकबार बनाए हुए सम्बन्ध आसानी से नहीं टूट सकते।"

"भगवन्", बल्लालदेव ने हाथ जोड़कर आचार्यश्री से कहा—"सुन्दर पांड्य बिना बुलाए आए हैं, फिर भी हमारे अतिथि हैं। आप इनकी कथनी का बुरा न मानना। साधुजनों का, भिक्षा ग्रहण करना लज्जा की बात नहीं यह तो आर्यत्व का दिया महामोल अधिकार है। और भीख माँगना लज्जा की बात है—इस चीज को सुन्दर पाण्ड्य के सिवाय दूसरा कौन भलीभाँति जान सकता है।"

सुन्दर का मुँह लाल हो गया। उसने देख लिया कि अब यहां अपनी कोई चाल चलने वाली नहीं। तुरन्त चेहरे का भाव बदल कर कहने लगा—"सच है राजन्, क्या करें गृहस्थी को कभी-कभी भीख भी माँगनी पड़ती है। संसार का मायाजाल ऐसा ही है। सच पूछिए तो, मैं भी भीख माँगने के लिए ही आपकी सेवा में हाजिर हुआ हूँ।"

"कहिए। आज हमारे कुलोत्तम महाराज प्रतापरुद्र देव और महासती उदाली का श्राद्ध-दिवस है। आज के परम गंभीर और पुण्य कार्य अवसर

सुन्दर चुप रह गया। तभी उसकी नज़र होयसलराज की ओर गई। आश्चर्यपूर्वक कहने लगा—"महाराज ! राजन् ! क्या बात है ? आज आपके हाथ में बाजूबन्द नहीं, वस्त्र भी सूती हैं, कान में कुंडल नहीं और सिर के केश भी खुले हैं। शोक की कोई बात है ?"

"हमारे यादव कुलसूर्य महाराज प्रतापरुद्र का अवसान हुआ है और उनके पीछे, देवी उदाली सती हुई हैं।"

"क्या वारंगल के काकतीय यादवराज का देहान्त हो गया ?"

"क्यों इसमें आश्चर्य की क्या बात ? आप तो वारंगल के घेरे में थे।"

सुन्दर ने दाँत पीसे। लगता है, ये लोग उसके प्रत्येक कार्य से परिचित हैं। उसका यह अनुमान न था कि होयसलराज इतने चतुर हैं। घबराकर उसने कहा—"क्या कह रहे हैं ? वारंगल के घेरे में था ?"

"थे। वारंगल पर हमला करनेवाली म्लेच्छ सेना के पूर्वी भाग के मनसबदार आप ही थे। आप इस बात से अनजान हैं, सुनकर विस्मय होता है।"

सुन्दर हँसने लगा। उसने देख लिया कि अब कुछ नकटापन ज़ाहिर कर देना ज़रूरी है—"आपको विस्मय होता है, उससे अधिक मुझे है कि वारंगल के प्रतापरुद्र से आपका सम्बन्ध कब से स्थापित हुआ ?"

"मसाया ! सम्बन्ध तो सत्तर पीढ़ी तक कहीं नहीं जाता। आज हमने यादवकुल प्रथमोत्तम महाराज प्रतापरुद्र का श्राद्ध किया है।"

"आपने उनका श्राद्ध किया, पिंडदान दिया, ये सब विस्मय का विषय है और इससे अधिक अजीब बात तो यह है कि देवदासी उदाली ने उनके संग सहगमन किया ! लेकिन महाराज, आपके शासन में इतना अंधेरा है, यह सब से अधिक आश्चर्य की चीज़ है।"

"मैं तुम्हारा अन्तिम आशय नहीं समझा।"

"प्रतापरुद्र से आपका सम्बन्ध कैसा रहा है—यह तो, यहाँ से दिल्ली तक सब लोग जानते हैं....लेकिन वारंगल का राजा आपके दुर्ग में प्रविष्ट होकर छिपे-छिपे मन्दिर की देवदासी के साथ, घर-संसार बसा जाए, यह तो अजब चीज़ है और इसका अर्थ यही है कि आप लोग गफलत में रहे।"

बल्लालदेव ने जरा गरम होकर कहा—"अनामंत्रित हो तुम, फिर भी हमारे अतिथि हो, वरना महासती उदाली के ऐसे अपमान के कारण तुम्हारी जीभ बाहर खींच लेता।"

"राजन, आप मेरा अपमान कर रहे हैं। ज्यों-ज्यों मैं अपमान को पचा रहा हूँ त्यों-त्यों अपमान करने की आपकी वृत्ति बढ़ती जा रही है।"

"आपका अपमान करने की मेरी कोई इच्छा नहीं। देवगिरि के म्लेच्छ दरबार में रहनेवाला व्यक्ति आर्यत्व की महिमा को नहीं समझ सकता, यह स्पष्ट है। और देवगिरि के म्लेच्छों से आपका काफी सम्बन्ध रहा है।"

"यदि मैं भूलता नहीं तो, राजन्, केवल मेरा ही नहीं, आपका भी काफी सम्बन्ध रहा है। और इस सम्बन्ध का आरंभ इसी धाम में हुआ है। पूछिए आचार्यश्री से।"

"आचार्यश्री तो भगवान के आदमी हैं महाराज। इनका क्या, यहाँ से दूसरी जगह चले जाएँगे लेकिन संसारियों के लिए बड़ी कठिनाई है। एकबार बनाए हुए सम्बन्ध आसानी से नहीं टूट सकते।"

"भगवन्", बल्लालदेव ने हाथ जोड़कर आचार्यश्री से कहा—"सुन्दर पाड्य बिना बुलाए आए हैं, फिर भी हमारे अतिथि हैं। आप इनकी कथनी का बुरा न मानना। साधुजनों का, भिक्षा ग्रहण करना लज्जा की बात नहीं यह तो आर्यत्व का दिया महामोल अधिकार है। और भीख माँगना लज्जा की बात है—इस चीज को सुन्दर पाण्ड्य के सिवाय दूसरा कौन भलीभाँति जान सकता है।"

सुन्दर का मुँह लाल हो गया। उसने देख लिया कि अब यहा अपनी कोई चाल चलने वाली नहीं। तुरन्त चेहरे का भाव बदल कर कहने लगा—"सच है राजन्, क्या करें गृहस्थी को कभी-कभी भीख भी माँगनी पड़ती है। संसार का मायाजाल ऐसा ही है। सच पूछिए तो, मैं भी भीख माँगने के लिए ही आपकी सेवा में हाजिर हुआ हूँ।"

"कहिए। आज हमारे कुलोत्तम महाराज प्रतापरुद्र देव और महासती उदाली का श्राद्ध-दिवस है। आज के परम गंभीर और परम कर्म अवसर

पर वल्लालदेव जितना दे सकता है, अवश्य देगा। और अपने वचन से वदलेगा नहीं। आज हमारी सीमा में आया कोई अभ्यागत खाली हाथ नहीं लौटेगा। अब कहिए, आपकी क्या अभ्यागति है ?"

"राजन, उसके लिए, आपसे कुछ समय का एकान्त चाहता हूँ।"

"आचार्यश्री से हमारी कोई वात छिपी नहीं है। ऐसा कोई रहस्य नहीं, जिसे श्रीजी नहीं जानते।"

"महाराज, आपके तो ये गुरु हैं। ऐसी वात नहीं कि मेरा इनसे परिचय न हो। लेकिन वह परिचय गुरु-शिष्य का नहीं। एक समय था, जब ये मेरे आश्रित थे, इस सत्य को ये भूल सकते हैं, परन्तु मैं नहीं भूल सकता।"

भगवान सर्वज्ञ वेदान्तदेशिक महाराज अपने आसन से उठ खड़े हुए। बोले—

"राजन, शब्दों का ये चक्र तो यों ही चलता रहेगा। और इसका परिणाम भी कुछ न निकलेगा। मैं पास के कक्ष में अपने नित्यकर्म पूरे करता हूँ, तव तक आप सुन्दर पाण्ड्य से वार्तालाप करें।"

"जी" कहकर महाराज खड़े हो गए।

होयसलराज वल्लालदेव एक समय के महा नास्तिक, एक वार के निगंठ, एक वार सरस्वती के सिवाय किसी को न माननेवाले राजा, इस भिखारी ब्राह्मण की ऐसी गहरी छाया के नीचे कैसे आ गया, सुन्दर के लिए, यह एक अनवुझ पहेली थी।

आचार्य चले गए।

सुन्दर को लगा कि आचार्य और वल्लालदेव की संयुक्त जोड़ी से जैसे एक अकल्पनीय और अपरिचित प्रभा प्रकट हो रही है। और इस प्रभा का पार पाना उसे असंभव प्रतीत हुआ।

लेकिन वह अपनी हठ का पक्का है।

आचार्यश्री पास के कक्ष में चले गए तो, कहने लगा—

"मैंने इस व्यंकट को देखा था मदुरा के श्रीरंग मंदिर में। सिर धुन कर यह रो रहा था। इसे मैंने देखा है अर्धविक्षिप्त भूत की तरह भटकते

हुए। मैंने इसे देखा है देवगिरि की गली-गली में भीख माँगते हुए। आज वही व्यकट—आचार्यश्री भगवान सर्वज्ञ बन बैठा है। क्या पाखंड चल पड़ा है। लेकिन, होयसलराज आप इतने चतुर और इस पाखंडी की जाल में कैसे फँस गए ?"

"क्षमा करें, हम इस विषय पर चर्चा नहीं करेंगे। आज हमें कई महत्वपूर्ण कार्य पूरे करने हैं। अतएव, आप अब अपनी बात कहें तो अच्छा है।"

"विस्तारपूर्वक कहूँगा, यदि आप चाहें तो, और आप कहेंगे तो, देर तक महत्व का मूल्य भी समझाऊँगा और संक्षेप में तो यही कहना है कि मैं आपसे भीख माँगने आया हूँ। राजन, यदि आप मुझे यह भीख देंगे, तो मेरा काम बन जाएगा और आपका भी कल्याण होगा।"

"क्या है आपकी भिक्षा ?"

"राजन, भिखार्थी हूँ—अपनी पुत्री मालादेवी का ब्याह मुझसे कीजिए।"

१३ : सुन्दर !

सुन्दर ने देखा कि वल्लालदेव ने उसकी माँग पर आवश्यक ध्यान नहीं दिया है और वातचीत के वक्त भी, उनका मन किसी दूसरी ओर लगा है, यह उनके चेहरे से प्रकट हो रहा था। फिर भी सुन्दर को दुख न हुआ, क्योंकि उसे अमित आनन्द की आशा तो थी नहीं, थोड़े वहुत विरोध की आशंका ही थी। लेकिन उसे इस वात की तनिक भी शंका न थी कि कोई उसके कथन को नज़रंदाज़ कर सकता है।

संभव है कि कोई सुन्दर पाण्डच की वातों पर हर्षोन्मत्त न हो जाए, परन्तु समस्त दक्षिरणापथ में, आज तक ऐसा कोई न हुआ जो सुन्दर पाण्डच के निवेदन की ओर उपेक्षा दिखलाए। अतएव वल्लालदेव का रुख देखकर उसे यह विदित हो गया कि उसे महाराज से वाग्युद्ध लड़ना पड़ेगा। और उस युद्ध में वह उन्हें हरा देगा इसमें कोई शंका नहीं थी। भला दक्षिरणापथ में किसे यह मालूम न था कि समस्त दक्षिरणापथ में सुन्दर पाण्ड्य अपनी विजय का दांव अपनी जेव में लिए रहता है !

इसी आधार पर उसने वल्लालदेव से वाग्युद्ध के लिए तत्परता दिखलाई। साम, दाम, दण्ड और भेद के साज सजाए।

कहा उसने —"आप मेरी वात का जवाव देने के पहले, ज़रा मेरा निवेदन तो सुनिए।"

"कहो, जो तुम्हें कहना हो, खुशी से कहो।"

"पहले मेरी वात, फिर आपकी। उसके वाद दक्षिरणापथ की और आजकल आप के सिर पर जो यह जोगी सवार है उसकी वात।"

"मेरी एक बात मानेंगे ?" बल्लालदेव ने कहा, "दोनों हाथ जोड़कर तुमसे कहता हूँ, आचार्य वेदांतदेशिक महाराज हमारे कुलगुरु हैं। जब तुम इनका उल्लेख करो तो सम्मानपूर्वक अथवा विनयपूर्वक करो, इससे हमारे मन को शान्ति मिलेगी। यदि ऐसा नही कर सकते तो, तुम उनके विषय मे एक भी शब्द मत बोलो, तुम्हारी चर्चा में धर्म जैसी कोई चीज़ कहीं निहित है, यह मुझे आज तक प्रतीत न हुआ।"

"हो सकता है लेकिन मेरा इस जोगी से क्या मतलब ? यह तो सनकी आदमी है। सांसारिकता से अपरिचित। बचपन से ही मांग कर खाने के सिवाय इसने कोई काम नही किया। ऐसे आवारा और भटकनेवाले जोगी को राजनीति की बातो में टाँग न अड़ानी चाहिए, यही मैं बार-बार आपसे कहता हूँ। ख़ैर जाने दो, हम दो राजन मिले हैं तो काम की बात करें। जिसका गाँव में घर नही, खेत की बाड़ नही ऐसे भिक्षुक की चर्चा में क्यों उलझे ?"

"आप अतिथि हैं और निवेदन करना चाहते हैं, तो पहले अपनी ही बात कहिए।"

"तो सुनिए, मेरी बात बहुत छोटी है। अपनी पुत्री मालादेवी का विवाह मुझसे कीजिए। और हाँ-ना कहने से पहले इस सम्बन्ध के गुणदोष देख लीजिए !" इतना कहकर सुन्दर कुछ और निकट आया। खाँसकर कहने लगा—"आप जानते हैं, मुझे जो अनुभव हुआ है वही आपको भी हुआ है। तुर्कों का बल दुर्दम्य है और समस्त भरतखंड पर राज्य करने का निर्णय मन में लेकर, ये लोग आए हैं। आपने दक्षिणापथ के कालयवन को अपनी नजरों देखा है। भला उसकी असीम शक्ति का सामना करने का साहस किसमें रहा है ? अरे ! कलभ्रो का उल्कापात भी कालयवन और उसके तुर्कों के आक्रमण के सामने कुछ भी नही।"

"तुम्हारा कथन यथार्थ है, तुम तो उनके प्रेमपात्र रहे हो।"

"हाँ, आप हमारे इतिहास से अनजान नहीं। और आप मुझसे भी अपरिचित नही। मैं सुन्दर पाण्ड्य—कालानाग हूँ। अपना वैर कभी भूलता

नहीं। अपना विष कभी छोड़ता नहीं। मेरा अपना सगा भाई—वीर पाण्ड्य मदुरा का नायक था। मैंने एक दिन उससे कहा अब मैं भी बालिग हो गया हूँ आप मदुरा का आधा राज्य मुझे दे दीजिए। किन्तु वह दुर्दैवग्रस्त मन्द-बुद्धि मेरी बात क्यों समझने लगा! उसने अस्वीकार किया। आगे तो आप जानते हैं मैंने क्या किया। जानते हैं न?"

"दक्षिणापथ में कौन नहीं जानता? और वह नाचनेवाली....नाम उसका..."

सुन्दर ने भयंकर, विषमय अट्टहास किया।

"नाम तो मुझे भी याद नहीं रहा लेकिन नाईन थी वह, इतना मुझे याद है और अब नाचनेवाली की जात ही क्या?"

"हाँ, उसी नर्तकी की हवेली में तुमने अपने बड़े भाई वीर पाण्ड्य को धोखे से बुलाया और वहीं तुमने अपने बड़े भाई का, अपने राजा का कटार से खून किया। ठीक है न?"

"आप इसे खून कहिए, परन्तु कुटुम्बी लोगों के लिए हम जिन शब्दों का उपयोग करते हैं, राजकाज में उनका उपयोग नहीं हो सकता। उसने मुझे मेरा हक़ न दिया तो मैंने उसे दण्ड दिया।"

"इसके बाद तुम मदुरा के राजा बने लेकिन राज्य न कर सके।"

"हाँ, कई मूर्खों ने मेरे अधिकारों की इस लड़ाई का ग़लत अर्थ लिया और मेरा विरोध किया। और आप तो जानते हैं, उन बेवकूफों ने मुझे इतना परेशान किया कि अपने पिता का राज्य और अधिकार छोड़कर मुझे प्राण बचाकर भागना पड़ा।"

"हाँ, मुझे यह याद है। तुम मेरे पास आए थे।"

"मैंने आपसे अपनी बहन के हाथ के लिए प्रार्थना की थी और उस विवाह के बाद मदुरा का राज्य लौटा लाने के लिए युद्ध में सहयोग देने का निवेदन भी किया था।"

"हाँ यह भी मुझे याद है।"

"आपने मदुरा-विजय में मेरी मदद करने का वचन दिया था और कहा था कि पहले मदुरा जीत लें तब व्याह हो।"

बल्लालदेव ने कहा—"हाँ, चाहे वचन कह दीजिए। उस वचन का पालन करना पड़े ऐसा अवसर नहीं आया और वीर पाण्ड्य के बाद सामन्तों ने उनके बालपुत्र को मदुरा की राजगद्दी पर बिठा दिया। मैंने मदुरा-विजय के लिए तुम्हें सेना दी, जिसकी सहायता से तुम मदुरा तक गए परन्तु तुम्हारी हार हुई और मुझे भारी क्षति पहुँची। और जब तुम भटकते हुए मेरे पास लौट कर आए तो मुझे मालूम हुआ कि मेरी सेना का नाश और पराजय हुआ है।"

बल्लालदेव के इन शब्दों में कोई कटाक्ष छिपा है, सुन्दर इस रहस्य को समझ न सका। सहज ही उसने कहा—"हाँ, मैं तो अपना राज्य लेने गया था, मरने नहीं गया था। मेरी चतुराई तो इसी में है कि जीता लौट आया।"

"ठीक है, ठीक है।"

"आपने मुझे दूसरी बार पैदल सेना दी। इस बार मैंने आपके उस बेवकूफ सेनापति से कहा कि इस आक्रमण से पहले मदुरा राज्य के गाँवों को एक-एक कर जलाते-बरबाद करते जाएँ, लेकिन वह सनकी कुछ समझा नहीं। ज्ञान की बातें बघारने लगा, बोला कि मैं गाँवों को जलाने के लिए नहीं, जनता को सताने के लिए नहीं, युद्ध के लिए आया हूँ। सो वह पागल युद्ध के लिए चला तो चला नगाड़े बजाता हुआ। सो नतीजा यह हुआ कि उसके पाँच-पच्चीस सैनिक भले जीवित लौटे हों। उस बेवकूफ ने मेरी बात मान ली होती, तो लोग भय के मारे भाग जाते और राजधानी के आसपास के राजमार्गों पर शरणार्थियों की भीड़ जमा हो जाती कि मदुरा की राज-सेना हम तक पहुँच नहीं पाती।"

बल्लालदेव ने कहा—"इसमें उसका कोई कसूर नहीं। मैंने ही उसे आदेश दिया था कि वह तुर्कों की तरह युद्ध न करे।"

"तुर्क जिस ढंग से युद्ध लड़ते हैं, वही विजय-प्राप्ति का एक मात्र मार्ग है। लोगों की भगदड़, राजधानी की तरफ बढ़ने से, सेना के गमनागमन में कठिनाई आती है, और हमारा काम सरल हो जाता है। अरे, कर्नाटक-राज, राजा होकर आप यह छोटी सी बात नहीं जानते! जिस तरह दो का शौर्य देखकर पाँच का साहस बढ़ता है उस प्रकार दो की भयभीति

देखकर पांच पलायन करते हैं। राजन्, भय के समान संक्रामक रोग दूसरा नहीं।"

"होगा।"

"होगा नहीं, है। सो तुम्हारी इस दूसरी सेना का भी नाश हुआ। मैंने सोचा कि कर्नाटक का राजा मेरी सहायता करना चाहता है लेकिन मन से यह वेदान्ती है। लड़ाई का मतलब लड़ाई और जैसे बने, उसे जीत लेना है, यही हमारा एक लक्ष्य होना चाहिए। फिर इसमें लोग और जनता, गाँव और छावनी का भेद करना बेकार है। इसके बाद मैं निराश होकर कालयवन के पास गया। उस समय वह देवगिरि में था—" इतना कहकर सुन्दर दो पल मौन रह गया। फिर कहने लगा, "कैसे कहूँ, क्या कहूँ! कालयवन की उदारता अहा हा! उसने मुझे मदुरा का राजा स्वीकार किया और दिल्ली सुल्तान के मण्डलेश्वर के रूप में प्रतिष्ठा की। उसने मेरी सहायता के लिए गेरशास्प नामक तुर्क मलिक को भेजा।"

"सो, गेरशास्प को युद्धकला तुमने सिखाई कि वह खुद ही जानता था?"

"अरे, भोले आदमी। तुर्कों को युद्ध-कला कोई सिखा सकता है? यह तो माँ के पेट से ही सेनापति बनकर जन्म लेते हैं। गेरशास्प ने तो मदुरा की सीमा में प्रविष्ट होते ही लोगों को लूटना, गाँवों को जलाना और जवान लड़कियों को पकड़ना शुरू किया। बस! इतना करना था कि मदुरा के वीर लगे भागने। सब के सब मदुरा नगर में आ घुसे। नगर में इतनी भीड़ हो गई कि राह चलना मुश्किल और खाद्य सामग्री का सर्वथा अभाव हो गया। इधर आक्रमणकारी चाहे जो करे या न करे, लेकिन शरणार्थी कहने लगे, अब हमें लड़ना नहीं है। उन्होंने तो नगर के द्वार ही खोल दिए।"

"तभी तुम्हें मदुरा का राज्य सहज ही मिल गया।"

"नहीं, इसमें भी कुछ गड़बड़ हो गई। मल्लिक खुद ही मदुरा का मालिक बन बैठा।"

"तब तो तुम्हारी सारी मेहनत बेकार गई।"

"मेहनत कभी बेकार नहीं जाती। मैंने नहीं कहा, मैं काला नाग हूँ। मैं ऐसा आदमी हूँ कि खा न सकूँ तो बिखेर देता हूँ। लेकिन दूसरे को कभी

न खाने दूंगा—यह मेरा स्वभाव है। आप तो जानते हैं और कुछ नहीं तो मैंने अपने भतीजे बाल पाण्डच का राज्य तो छुड़वाया।"

"हाँ यह सच है। फिर मैंने यह भी सुना था कि तुमने उस नाचनेवाली नाइन मंदांगी से विवाह कर लिया था।"

"विवाह तो ठीक है। नाई की जात, विवाह हो न हो क्या बात है। उस नर्तकी के मन में गृहस्थी की लालसा जगी थी, सो मैंने ज्यों-त्यों कर पूरी की। बेचारी खुश हो गई।"

"हाँ, बड़े आदमियों को छोटों का मन रखना ही चाहिए।"

"और जब तक मदुरा का राज्य न मिले, मैं आपके पास लौट कर कैसे आ सकता हूँ।"

"यह भी सच है।"

"परन्तु महाराज, अब यह सभव प्रतीत होता है। संभव ही नहीं, आप सत्य मान लीजिए कि मैं ही मदुरा का राजा हूँ। अब दक्षिणापथ में मेरे सम्बन्ध बढ जाएंगे। कई लोग मुझसे सम्बन्ध बढ़ाने के लिए ललचाएँगे। आखिर क्यों न ललचाएँ ? मदुरा की राजगद्दी पर अपनी वेटी को विराजित देखकर कौन माँ-बाप खुश न होंगे। लेकिन लोग नहीं जानते कि जिस प्रकार, सुन्दर पाण्ड्य की शत्रुता भयकर है, उस प्रकार उसकी मित्रता भी वज्रलेप जैसी है। अतएव मैंने मन ही मन कहा, कुछ भी हो, बल्लालदेव ने पिछले दिनों अपनी सहायता की थी। फिर चाहे बेकार और बेवकूफ सैनिक क्यों न दिये हों, इसलिए मैंने सोचा कि मैं अपने साथ सम्बन्ध स्थापित करने का पहला अवसर आपको दूँ।"

"आपका आभारी हूँ।"

"नहीं, इसमें आभार की क्या बात है ? व्यवहार की चीज है यह। और बड़ों के वचन कभी मिथ्या नहीं जाते। बाद मे मुझे मालूम हुआ कि कई दिनों तक मेरी राह देखने के उपरान्त आपने अपनी बहन का ब्याह कलिंग-राज से कर दिया। खैर, आपकी बहन नहीं तो आपकी कन्या से ही मेरा ववाह हो सकता है।" फिर मुस्करा कर सुन्दर कहने लगा—"मैंने तो

मालादेवी की प्रशंसा सुनी है और आपको भी मुझसा सुपात्र जामाता मिलेगा, इतना ही नहीं, समस्त दक्षिणापथ आप और हम बांट लेंगे।"

"यह प्रस्ताव मेरी समझ में नहीं आया।"

"सीधी बात है राजन् ! कालयवन गया उसके बाद सुलतानी शासन में कुछ अंधेर गर्दी शुरु हो हुई। राजदण्ड निर्बल हुआ और दक्षिणापथ नामशेष। मदुरा का मालिक दिल्ली के सुलतान से स्वतंत्र होकर स्वयं एक सुलतान बन बैठा। पिछले दिनों तातार से नए मलिक के आगमन पर सुलतानी व्यवस्था में सुधार हुआ है। सुलतान ग़यासउद्दीन बड़ा उग्र आदमी है। उसने प्रतिज्ञा की है कि हिन्दुस्तान में जहाँ-जहाँ एक बार भी तुर्कों के पैर पड़े थे, उस समस्त देश-प्रदेश को वह अपनी सलतनत में मिलाकर ही रहेगा। उसका बड़ा बेटा, शाहज़ादा मलिक उलूग़ खाँ देवगिरि का सूबेदार है। प्रतापरुद्र को हराकर, वारंगल से वह पारावार सम्पत्ति ले गया। अगणित नरनारियों को दास बना कर ले चला। और अब तो कृष्णानदी को पार कर, दक्षिणापथ में आने की उसकी तैयारी है।"

"अच्छा ! वह आनेवाला है, क्या यह बात सच है ?"

"तब क्या झूठ ? और उसे चाहिए भी क्या ? सिर्फ़ तावेदारी, सिर्फ़ खिराज और कुछ रुपया ! यदि यही देने में हम आनाकानी करते हैं तो हमारी कठिनाइयाँ कितनी बढ़ जाती हैं ? ये लोग दो-चार मन्दिर तोड़ दें, सो अच्छा या सैकड़ों गाँव लूट लें यह अच्छा ? कुछ दे-दिलाकर विदा कर देना उचित है या हजारों लोगों को पकड़ ले जाएँ वह उचित है ? महाराज, यह तो नाश का मार्ग है। हम इस पर नहीं बढ़ सकते और मैं तो आपसे भी कहता हूँ कि अच्छा है, सुलतान दो-चार मन्दिर तोड़ दें। यदि आप ईश्वर को न मानते हों तो मन्दिर तोड़ने में क्या हर्ज़ है और यदि आप आस्तिक हैं तो दो-एक मन्दिर टूट जाएँ तो इससे ईश्वर का क्या बिगड़ जाता है ? और मेरे जैसे तो यह भी पूछना चाहेंगे कि यदि ईश्वर स्वयं अपने ही मन्दिर की रक्षा नहीं कर सकता तो, भला वह दूसरों के मन्दिरों की रक्षा क्या करेगा ? वल्लालराज ! मेरी बात मानिए, यह तो महाकाल आ रहा है। दिल्ली के सुलतान के सामने, उसके तातारों और

सुरासानी मलिकों के सामने महादेव के त्रिशूल और विष्णु के शंखचक्र बेकार हैं।"

"क्या आज तक किसी ने सुलतान से बड़ा युद्ध लड़ा है ?"

"किसी ने नहीं लडा, न लड़ ही सकेगा, घर जलाकर तीरथ करना, यह किसने सिखाया है ? सबल को अबल दण्डवत करता है, इसमें आश्चर्य क्या ?"

"लेकिन मेरा ख्याल है अभी सबल-अबल का निर्णय नहीं हुआ है।"

"महाराज बल्लालदेव, इस बात में कोई सार नहीं। आज की बात नहीं, पिछले दो सौ सालों से तुर्क इस देश में अलग-अलग मैदानों में जंग लड़ते रहे हैं लेकिन किसी भी मैदान में वे पराजित नहीं हुए। अब उनके शौर्य का सूर्योदय हो रहा है महाराज, उसके सम्मुख सिर झुकाने में ही बुद्धिमानी है।"

"जिसका अनुमान हो कि तुर्कों का उदय हो रहा है, उनके लिए दूसरा उपाय नहीं।"

"हाँ, अब आपने सही समझा। मुझे दिल्ली सुलतान ने मदुरा का नायक बनाया है और एक फरमान भी लिख दिया है। इसलिए, इस विषय में आपके लिए संशय को स्थान नहीं। आज तो ऐसा समय है महाराज, ईश्वर के विचार मिथ्या सिद्ध हो सकते हैं तुर्कों के वचन-विचार खाली नहीं जा सकते। तभी कहते हैं न "दिल्लीश्वरो जगदीश्वरो वै' और अब तुर्क इधर आने ही वाले हैं और आएँगे और विजय पाएँगे। अतएव आप मुझे दिये-गए अपने वचन का पालन कीजिए और अपनी पुत्री का ब्याह मुझसे कर दीजिए।"

"मलिक उस्मा की दण्डकणिका दासी बनने के लिए ?"

सुनकर सुन्दर का चेहरा तमतमा उठा—"महाराज, एक नाचनेवाली नाइन के साथ, आप स्वयं अपनी पुत्री की तुलना कर रहे हैं ?"

"बात सच्ची है। भले यह सच हो फिर भी मुझे मजाक नहीं करना चाहिए।"

"अब आपकी समझ में आया मुझे क्या जवाब देते हैं ?"

"दूसरा जवाब क्या ! लेकिन मेरी पुत्री का ब्याह हो चुका है।"

"राजन्, जो मुझसे वचन-भंग करता है अथवा मेरा अपमान करता, उसे मैं अच्छी तरह दिखा देता हूँ कि मैं कौन हूँ। मैंने आपसे कहा है कालानाग हूँ।" सुन्दर पाण्ड्य दाँत पीसकर बोला—"मेरे पीछे तुर्कों वल है। सुलतान का बड़ा शाहजादा मेरा साथी है। मुझे ऐसा-वैसा जवा देने से पहले सोच-विचार कर लीजिए। आपको मालूम है कि एकबार आप इसी स्थान पर अपना राजमुकुट तुर्कों के चरणों में रखकर अपने राज्य को बचा सके हैं। इस वार यह न होगा।"

"शायद।"

"तो होयसलराज, ध्यान में रखिएगा। तुर्कों की सेना का नेता बनकर, मैं अपनी पत्नी माला को लेने के लिए यहाँ आऊँगा। उस समय किसी तरह की दया-माया की आशा न रखना।"

"न रखूँगा।"

"मैं समूचे कर्नाटक में आग लगा दूँगा।"

"हाँ; हाँ।"

"मैं तुम्हारे मन्दिरों को तोड़ दूँगा। तुम्हारी देवमूर्तियों को पीस-पीस-कर चूना बनवाऊँगा। तुम्हारे राज्य के सभी नरनारियों को गुलाम बनाकर जाऊँगा। राजन, मैं हूँ कालानाग अपनी जरूरत की चीज पाने में मैंने अपने सगे भाई की भी शर्म न रखी।"

"हाँ, शर्म रखने से इस दुनिया में कुछ भी नहीं मिलता, यह तो मैं भी ...ता हूँ और आपको तो इसका पूरा अनुभव है।"

सुन्दर रोष में उठ खड़ा हुआ—"आप मेरी मजाक करते हैं, जरूर ...ए। इस वार आप काफ़ी बदल गए हैं। कौन जाने उस लंगोटीधारी ...ने आपको भरमा दिया है। किन्तु महाराज उसकी लंगोटी तो कहीं ...की नहीं, हाँ, दो हजार साल का, आपका पैतृक राज्य चला जायगा।"

...सुन्दर कुछ देर चुप रहा—"आप जिस लंगोटिये को वेदान्तदेशिक ...हैं, उसका नाम है व्यंकट। यह उस रामानुज की लड़की का लड़का ...अपने नाना के नाम पर कमा खाता है। और हमारे मदुरा ...ठ में बैठा है। यह मेरे भाई का गुरु था। उसे उल्टी-सीधी ...रता था। यह मेरा विरोधी रहा है। जब तुर्क आए तो यह ...

भाग चला और श्रीरंग की मूर्ति अपने साथ लेता गया। छिप-छिपाकर देवगिरि पहुँचा और वहाँ घर-घर भटकने लगा। लोग कहते हैं, बीच में किसी कालमुख आचार्य विद्याशंकर या ऐसे ही किसी भिखारी के पास रहा। भटकता हुआ यह मदुरा आया तो सुलतान ने इसे जेल में डाल दिया, लेकिन मेरी उसी रसेलिया अर्धपत्नी मंदागी को दया आई और उसने इसे छुड़ा दिया।" सुन्दर के मुँह पर कुटिल भाव आते-जाते रहे—"यों भटकता हुआ यह जाने कैसे यहाँ आया और आप लोगों पर जाने क्या जादू किया! किन्तु महाराज! इसकी बात मानकर आप अपने नाश को निमंत्रण देंगे तो फिर लौटने के लिए कोई मार्ग न मिलेगा। इसीलिए कहता हूँ, अब भी वक्त है—अपनी पुत्री का ब्याह मुझसे कीजिए। यह निश्चित है कि तुर्क लोग दक्षिणापथ का राज्य मुझे सौंप देंगे। मेरे साथ आप भी सुखी होंगे। बिना किसी प्रयास के ही, सप्तसामन्त बनने की आपकी महेच्छा पूरी हो जायगी और मैं उसकी पूर्ति कर सकता हूँ, यह आप जानते हैं। अब बतलाइए आपका क्या उत्तर है?"

"मैंने कह दिया न, मेरी पुत्री मालादेवी का विवाह हो चुका है।"

"तो राजन्..." रोष में बिफरा हुआ सुन्दर पीठ फेरने जा रहा था कि आगंतुक से टकराया—"अरे कौन अंधा है?" सुन्दर पाण्ड्य ने आनेवाले को देखा—"कृष्णाजी नायक?" सुन्दर को कुछ भी न कहकर, कृष्णाजी ने वक्र दृष्टि से उसे देखा। और बल्लालदेव के निकट आकर उन्हें प्रणाम किया—"मुझे याद किया है, महाराज।"

"हाँ, जरा मेरे पास बैठिए।"

कृष्णाजी की समझ में कुछ न आया। वह बल्लालदेव के सामने बैठ गया। अपने निकट रखा आच्छादन हटाकर बल्लालदेव ने एक राजमुकुट हाथ में उठाया—"कृष्णाजी एक बार अभिमान में पूर्ण व्यंग्य और उपहास में मैंने यह राजमुकुट बनवाया था, जानते हैं किसलिए? वारंगल के महाराज प्रतापरुद्रदेव के मिट्टी के पुतले को पहनाने के लिए। आज व्यंग्य में नहीं, उपहास में नहीं, माँ का ऋण चुकाने के लिए, पुत्रधर्म का पालन करने के लिए, यह महामुकुट मैं तुम्हारे मस्तक पर, भगवान श्रीमन्नारायण की साक्षी में रखता हूँ।"

"महाराज, मेरे माथे पर !" कृष्णाजी को आश्चर्य हुआ ।

"हाँ, महासती भगवती उदाली जब महाराज प्रतापरुद्र के साथ सती हो गईं तब उन्होंने अन्तिम आदेश दिया था—"राजा मेरे स्वामी का मस्तक शत्रुओं के बीच से सुरक्षित मुझतक लाकर, पाण्ड्य कृष्णाजी नायक ने मेरे प्रति अपने पुत्रधर्म का पूर्णरूपेण पालन किया है। आज से आप इसे मेरा औरस पुत्र मानना और वारंगल का राजसिंहासन उसे देना ।"

कृष्णाजी नायक स्तब्ध रह गया लेकिन सुन-सुनकर सुन्दर का सिर फटने लगा । चीखभरे स्वर में वह बोला—"अरे, आप लोग यह कैसे बच्चों के खेल लेकर बैठे हैं ? तुर्कों के आने पर क्या किसी के सिर पर मुकुट सलामत रह सकेंगे ?"

कृष्णाजी नायक ने राजमुकुट नीचे रख दिया। उसका गद्गद् कण्ठ भर आया। आंखों से आनन्द के आँसू बहने लगे—"राजन्, मेरा जीवन धन्य है कि महासती ने मुझे अपना बेटा माना। महाराज, चाहता हूँ कि अपने परमवीर पिता और महासती माता के पवित्र नाम की कीर्ति बढ़ानेवाली हो मेरी मृत्यु ।"

इस वार्तालाप को तमाशे की तरह देखनेवाला सुन्दर पाण्ड्य कहने लगा—"यह सब सच है या झूठ ! यथार्थ है या व्यंग्य ! भयंकर प्रलय की महाधारा गर्जन करती हुई आ रही हैं और आप लोग कुकुरमुत्ते जैसे यह मुकुट पहनकर बहक रहे हैं। अच्छा होगा अपनी यह वीरता तुर्कों को दिखलाएँ।"

बाहर से, लाठी का सहारा लिए कोई आ रहा है, ऐसी आवाज़ आई। सुन्दर पाण्ड्य ने पीछे देखा—सभा मण्डप की सीढ़ियाँ चढ़कर, एक व्यक्ति आ रहा था। अंधे की तरह पथ पर अपनी लकड़ी ठोकता जा रहा था। उसका दूसरा हाथ एक बाला के कंधे पर था। उसकी वेशभूषा से वह उच्च वर्ग का व्यक्ति प्रामाणित होता था। बाला भी उच्च वर्ग की महिलाओं जैसी एक साड़ी पहने थी। यही एक वस्त्र उसकी देह पर था। कंधे से पैर तक उसकी देह इसी साड़ी से ढँकी थी।

सुन्दर ने उपेक्षा की दृष्टि से उन्हें देखा फिर दूसरी दृष्टि न उठाई, मानो ऐसे लोगों के लिए दूसरी नजर की जरूरत नहीं। लेकिन वह अंधा और वह बाला, दोनों जब कुछ निकट आ गए तो सुन्दर को लगा कि वह इनसे पूर्व-परिचित है।

सुन्दर पाण्ड्य स्तब्ध रह गया। एक चीत्कार उसके मुँह से निकली—"कौन....कौन...सोमैया नायक !"

सोमैया इस चीत्कार को सुनकर खड़ा रह गया। अपनी अधी आँखों पर हाथ फिराते हुए उसने पूछा—"कौन....कौन है ? मुझे यह आवाज परिचित लगती है।"

सुन्दर ने सवाल का कोई जवाब न दिया। सोमैया से उसकी नजर, सोमैया का दाहिना हाथ थाम कर खड़ी हुई, बाला पर पड़ी और वहीं बल्लालदेव खड़े हो गए।

"आइए जमाईराज," उन्होंने कहा। अपना हाथ बढ़ाकर उन्होंने सोमैया के लकड़ीवाले हाथ को सहारा दिया।

"जमाईराज !" सुन्दर पाण्ड्य बल्लालदेव और बाला को बारी-बारी से देखने लगा।

"हाँ," बल्लालदेव ने कहा—"यह है मेरी पुत्री मालादेवी और ये हैं उसके पति....मैंने आपसे कहा था, मेरी पुत्री का ब्याह हो गया है। सोमैया नायक को पहचानते हैं न ?"

सुन्दर का अधर दाँत से दबा था। उससे खून बहने लगा। उसकी हाथ की बँधी मुट्ठी में उँगली पर रक्त की बूँदें उभर आईं। अपना फीका चेहरा लिए वह सोमैया को देखता रह गया।

बल्लालदेव बोले—"जमाईराज सोमैया नायक, आपको यह आवाज परिचित प्रतीत होती है, उसमें कौनसी विशेषता है, क्योंकि यह आवाज आपके भाई सुन्दर नायक की है।"

"सुन्दर सुन्दर, तू यहाँ कहाँ ? क्या भगवान विरूपाक्ष ने आखिर में तुझे सत्पथ दिखाया।"

सोमैया की ओर पीठ फेर कर, सुन्दर ने बल्लालदेव से कहा—"बल्लालदेव, आपको इस अपमान का बदला चुकाना पड़ेगा। मैं सुन्दर पाण्ड्य हूँ, सुन लीजिए बल्लालदेव....और सुन ले सोमैया, तू मेरा भाई है, लेकिन जन्म के सयोग से। आज तो मैं जा रहा हूँ लेकिन लौटकर आऊँगा, तब—जिसे मैं अपनी पत्नी बनाने के लिए आया था वह, यह माला, भले आज मेरे भाई की औरत बन कर रहे, मेरी नर्तकी बनकर रहेगी।"

१४ : महासमिति की मंत्रणा

कृष्णाजी नायक उछलकर खड़ा हो गया और उसने अपना खड्ग खींच लिया।

बल्लालदेव ने उसे रोक कर कहा—"शान्त रहिए कृष्णाजी, आज महासती उदाली का श्राद्ध दिवस है। आज हमें जगदम्बा का आशीर्वाद प्राप्त करना है। आज हम आततायी के रक्त से भी अपने हाथ रँगेंगे नहीं। मुझे विश्वास है कि अवसर आने पर मेरी पुत्री भी महामार्ग का अनुसरण करेगी। जाओ सुन्दर पाण्ड्य, बातचीत का तुम्हारा तरीका, दक्षिणापथ के भद्र समाज की अपेक्षा, तुर्कों के दरबारों में अधिक शोभा देगा। वहीं जाओ, जहाँ तुम्हारे वे मलिक और मालिक बसते हैं।"

सुन्दर पाण्ड्य दाँत पीसता हुआ, आँखें निकालता हुआ पीठ फेर कर वेगपूर्वक सभास्थल छोड़कर चला गया। कुछ ही देर में, दौड़ते हुए उसके घोड़े के टाप सुनाई दिए।

टाप की टपटप जब तक बन्द न हो गई, सब लोग चित्रवत् खड़े रहे। और प्रत्येक के मन में मदुरा की कुछ विगत कथाएँ रमती रहीं—

आज से लगभग पंद्रह वर्ष पूर्व, मदुरा में वाली पाण्ड्य राज्य करता था।

वाली पाण्ड्य की दो रानियां थीं, एक चहेती, एक अनचहेती। अनचहेती का नाम था श्यामाम्मा और चहेती का नाम जानकी। श्यामाम्मा चाहे अनचहेती थी, लेकिन पहली रानी होने के कारण, पटरानी थी। उसके पुत्र का नाम रखा गया, सोम—सोमैया।

सोमैया के जन्मोपरान्त पाण्ड्यराज वाली ने दूसरा विवाह किया। कांची के एक पाण्ड्य की पुत्री जानकी, उस काल मे नृत्य और संगीत कला की प्रसिद्ध कलाकार थी वह। जानकी के दो पुत्र हुए—बड़े का नाम वीर और छोटे का नाम सुन्दर।

रानी जानकी ने हठ पकड़ी कि मेरे बेटे को ही राज्य मिले। लेकिन अनचहेती श्यामा पाण्ड्यकुल के प्रसिद्ध राजपरिवार तंजौर के पाण्ड्यनायक की प्रिय पुत्री थी। इसलिए इस बलशाली राजकुल को कष्ट करना, वाली पाण्ड्य के बूते के बाहर था, इसलिए वह निरुपाय था। लेकिन यह परवशता चहेती रानी जानकी और महाराज के प्रेम-पंथ मे काँटा बनकर कसकने लगी।

इधर तंजौर के पाण्ड्य वीरशैव होते हुए भी राम के अनुयायी थे, रामायण के भक्त थे। श्यामा के पिता ने स्वयं ही वाल्मीकि रामायण का तमिल में अनुवाद किया था। ऐसे विद्वान और शीलवान पिता की पुत्री श्यामा ने अपने पुत्र से जलाजली रखवाई—"मैं अपने पिता को प्रसन्न रखूँगा, उनकी कामना पूरी हो, अपनी राजरानी को वे प्रसन्न रख सकें, इसलिए मैं सोमैया नायक अपने छोटे भाई वीर पाण्ड्य को सदा के लिए युवराजपद देता हूँ और अपना अधिकार छोड़ता हूँ।"

इसके कुछ ही दिनों बाद श्यामाम्मा माता का अवसान हो गया और सोमैया ने अपनी उपस्थिति मे वीर पाण्ड्य को मदुरा का युवराज बनाया और अभिषेक का प्रसाद भी ग्रहण किए बिना, तुरन्त मदुरा राज्य की सीमा छोड़कर चला गया। तंजौर के महाराज को, राज्य छोड़कर आनेवाले अपने भाँजे का यह व्यवहार पसन्द न आया, फिर भी उन्होंने उसके लिए दो खेतों का प्रबन्ध किया।

और इस प्रकार वीर पाण्ड्य मदुरा के सिंहासन पर बैठा।

लेकिन जब मदुरा के बाद तंजौर पर म्लेच्छों का आक्रमण हुआ तब, तंजौर के पाण्ड्यों को अपने भाँजे के प्रबल पराक्रम की परछाईं मिली। दक्षिण के समस्त पाण्ड्य समाज में सोमैया की प्रशस्तियाँ प्रचलित हुईं। यद्यपि वह किसी गाँव का स्वामी न था, फिर भी जनसमाज हृदय से उसे सोमैया नायक कहकर पुकारने लगा!

जब सुन्दर अपने भाई वीर पाण्ड्य के विरुद्ध आक्रमणकारी तुर्कों को ले आया तब, सोमैया अपने सौतेले भाई की सहायता के लिए तलवार बाँध कर तैयार हो गया। लेकिन शेष पाण्ड्य आगे न आये। आपसी मतभेद और छोटे-बड़े अधिकारों की माँगें वे पेश करने लगे। परिणाम यह हुआ कि पाण्ड्यों के एक होने से पहले ही मदुरा का पतन हुआ, तंजौर का पतन हुआ, कांची का पतन हुआ और पलायन के पथ पर पाण्ड्य समाज का विनाश हुआ।

सोमैया अकेला जीवित बचा सो वह श्रीलंका की ओर चला गया।

पाण्ड्यों के पराजय का यह पीड़क प्रकरण था। पारस्परिक फूट ने पाण्ड्यों का विनाश किया, लेकिन देश का विभीषण सुन्दर भी खाली हाथ रहा। स्वयं गैरशास्प मदुरा का राजा बन बैठा और मदुरा का राजा या सुलतान बनते ही उसने पहला काम यह किया कि सुन्दर पाण्ड्य को मदुरा की सीमा छोड़ देने पर मजबूर कर दिया। उस दिन गेरशास्प ने, खचाखच भरे दीवाने-आम में सुन्दर को इस प्रकार दुत्कार दिया—'जो शख्स अपने सगे भाई से भी बेईमानी करता है, उसका एतबार कौन करेगा ?'

सुन्दर ने नाचनेवाली नाईन मंदांगी को अपनी पत्नी बना लिया और उसके साथ चल पड़ा।

उस दिन के बाद, दस वर्ष बीत गए, आज पहली बार वह प्रकट हुआ। ये बातें सब लोग जानते थे। इसलिए सब को इनकी याद आई, लेकिन इसमें नया कुछ न था—देशद्रोह की यह, वह कथा थी जिसे दक्षिणापथ के घर-घर में हरेक आदमी जानता था। दक्षिण का द्वार तुर्कों के लिए सुन्दर पाण्ड्य ने लोभ और वैर की चाबी से खोल दिया था और इस लोभी व्यक्ति के लोभ की चिनगारियाँ अब भी प्रज्ज्वलित थीं।

भाल से पसीना पोंछते हुए कृष्णाजी नायक ने अपनी समस्त कटुता उँडेल कर आवश्यक विनम्रतापूर्वक कहा—"राजन्, आपने अपात्र पर दया दिखलाई है, और वह भी उस व्यक्ति पर, जिसका विश्वास उसके अपने आकाओं और मलिकों तक ने न किया......आज का दिन आततायी का

वध-दिवस था और सारे दक्षिणापथ को मालूम हो जाता कि यह है देश-द्रोह का परिणाम, आपकी आज्ञा हो तो अभी भी......."

"नहीं कृष्णाजी, अपने खड्ग को म्यान में रख दो। आततायी के वध के लिए दूसरा कोई अवसर आएगा और आज तो महासती का श्राद्ध दिन है और हम एक महान निर्णय करने के लिए, एकत्र होनेवाले हैं, इसलिए इस समय हम पूजा के अपने हाथों को वध के लहू से लाल न होने देंगे।"

दो पल चुप रह कर होयसलराज महाराज वीर बल्लालदेव कहने लगे—"कृष्णाजी, आचार्य भगवान वेदान्तदेशिक महाराज से जाकर कहो कि आततायी चला गया है। भगवान की आज्ञा हो तो उनसे इसकी सभी बातें कह देना। उनसे यह भी कहना कि मैं आत्माराम नागदेव को आदेश दे रहा हूँ कि आज की महासमिति के लिए आमन्त्रित अतिथियों की नामावली जो उसके पास है, उसे छोड़ कर शेष लोगों के लिए मन्दिर के द्वार बंद रखे।"

- "जो आज्ञा।" कह कर कृष्णाजी चला गया।

बल्लालदेव ने सोमैया का हाथ पकड़ कर आसन पर बिठाया—"आइए जमाई राज!" सोमैया के पार्श्व में मालादेवी बैठी।

. इस दम्पति की वय में पर्याप्त अन्तर था। राजाओं और नायकों के परिवारों में, पति-पत्नी के बीच इस प्रकार का आयु-अन्तर असामान्य न था। सोमैया की वय चालीस के लगभग थी, इन चालीस वर्षों में उसके बारह वर्ष इधर-उधर भागते रहने में बीते थे, और कष्ट के इन दिनों का भावमुद्रण उसके चेहरे पर स्पष्ट अंकित था। सब जानते हैं कि पाण्ड्यों की धरती पर यह अकेला धीर-वीर ताडवकारी—तुर्कों से अकेला ही जूझता था। पदवीधर नायक और स्वामीजन एक ओर दुबक रहे थे और जिसका किसी गाँव से लेना-देना नहीं था वह अनागरिक सोमैया हथेली पर प्राण रखे तुर्कों को अपना रण-कौशल दिखला रहा था। इसी कौशल का प्रतिफल प्रसाद था कि सोमैया पाण्ड्य जाति, पाण्ड्य समाज और पाण्ड्यों के पाण्ड्य देश में सचमुच का नायक बन गया था। देश में वीरों का एक जूथ बना—कुछ होलेय आए, कुछ पालेय मिले, कुछ पाण्ड्य

युवक वढ़े और कुछ निगंठ जवान चले और यों, इस जूथ का नाम तिर्यंक-दल पड़ा। और सोमैया तिर्यंकराज कहलाया। उसके भीमभैरव पराक्रम की प्रवल कथा पाण्ड्य माताएँ अपने पुत्रों को सुनातीं। और तिर्यंकों की सहायता से सोमैया ने तंजोर का दुर्ग तुर्कों से छुड़ाया। पचास तिर्यंकों के सहयोग से सोमैया ने कई हज़ार तुर्कों को कावेरी के सामने वाले किनारे पर रोक रखा। उसने तुर्कों के विरुद्ध, पाण्ड्य प्रदेश का मार्ग वन्द कर दिया। उसके अथाह साहस और असीम पराक्रम ने तीस ही वर्ष की आयु में उसे दादैया (दादा या भगवान शंकर का अवतार) की उपाधि दिलवायी थी। यद्यपि वह कट्टर वीर-शैव था फिर भी पाण्ड्य प्रदेश में सदियों से रहनेवाले निगंठ परिवार उसके पीछे पागल थे। वह अविवाहित ही 'दादा' वन गया।

ऐसी दशा में इस दादा सोमैया की तुलना में मालादेवी तो मात्र मुग्धा ही थी। प्रेम क्या चीज़ है, यह जानने के पूर्व ही, पिता के प्रायश्चित रूप में उसे दान में दे दिया गया। परन्तु यह दान और सम्वन्ध मालादेवी को पसन्द न हो, सो वात नहीं थी।

कर्नाटक का राजा तुर्कों का सामंत था और सोमैया तुर्कों का शत्रु था। उसके वीर चरित्र की किंवदंतियों, वैरभाव के कारण भी कर्नाटक के घर-घर तक आई थीं। ऐसे पराक्रमी पति की वह पत्नी है, यही मालादेवी का सन्तोष था, यद्यपि पति अन्धा था और उसकी आँखें माला की देखती आँखों चली गई थीं। और इस पराक्रमी योद्धा के जीवन में अव वह उसकी आँखों का स्थान लेगी, इस वात का मानों इस वाला के मन में आनन्द और उत्साह था। उसके वदन या वदन में कहीं भी आत्मग्लानि का अंश तक न था। राजगुरु के आशीर्वाद से पवित्र वने हुए जीवनपथ पर डग भरती हुई, वह चली जा रही थी और मानो उसे अपनी मंज़िल का विश्वास था और स्वयं पर आत्मश्रद्धा थी।

कृष्णाजी नायक आया और उसके पीछे-पीछे आए आचार्यश्री।

उनके आसन ग्रहण करने से पहले ही गोपुर से सीढ़ियाँ चढ़ता हुआ आमाराम नागदेव सभा मण्डप की ओर आया। उसके पीछे एक वृद्ध

साधु आ रहा था। साधु का सिर मुंडा हुआ था यानी 'केशलोचन' किया हुआ था। वह श्वेत वस्त्रधारी था, उसका चेहरा सात्विक और स्वस्थ था। यद्यपि वह वृद्ध था, उसकी चाल युवा व्यक्ति जैसी थी।

नागदेव आगे बढ़ा। प्रणामपूर्व कहने लगा—"निगंठनाथ भगवान नागकीर्ति महाराज पधार रहे हैं।"

सरस्वती की आराधना और तप की साधना के निमित्त अति प्रसिद्ध यह नाम सुनकर उपस्थित समुदाय एकदम खड़ा हो गया। वेदान्तदेशिक महाराज तुरन्त आगे बढ़े। दोनो हाथ जोड़कर साधुजी को प्रणाम किया—"पधारो महाराज।"

निगंठों के तत्कालीन आचार्य नागकीर्ति महाराज अपने समय में अद्वितीय ज्ञानी थे। बहुमत समाज मे उनकी कीर्तिकला फैली थी। 'धर्मलाभ' प्रदान कर वे भागवत आचार्य श्री के पास मे बैठ गए। फिर दोनों परस्पर कुशलक्षेम पूछने लगे और 'विद्यालय' आदि विषयों पर संक्षिप्त वार्तालाप करने लगे। फिर से गोपुर का द्वार खुला और एक काषाय वस्त्रधारी वृद्ध साधु भीतर आया। उसके हाथ में एक प्रलम्ब दण्ड था। वह सीढ़ी चढ़ रहा था कि नागदेव ने दौड़कर, घोषणा की—"श्रीमद् परमहंस परिव्राजकाचार्य शृंगेरी मठ के शंकराचार्य महाराज श्री क्रियाशक्ति विद्यातीर्थ पधार रहे हैं।"

जगद्गुरु आए। सबको आशीर्वाद देते हुए उन्होंने आसन ग्रहण किया। उनके लिए व्याघ्रचर्म का आसन-विशेष बिछाया गया।

अब एक-एक दो-दो के बजाय अतिथिगण चार-चार आठ-आठ के समूहों में आने लगे।

संगमराय आया।

दण्डनायक हरिहर आया।

काम्पिलगढ़ के महाराज काम्पिलदेव आए।

कांची के पाण्ड्यनायक आए।

चन्द्रगिरि के कर्नाटकी दुर्ग का दुर्गपाल विजय चालुक्य आया।

उदयगिरि के कर्नाटकी प्रदेश का दुर्गपाल आया।

दक्षिणापथ की उत्तरी सीमा पर स्थित देवगिरि के यादवराज के विनष्ट राज्य के ध्वस्त दुर्ग का बड़ा दुर्गपाल आया। देवगिरि पर हुए तुर्कों के आक्रमण और युद्ध के पश्चात् उदयभान कर्नाटक चला आया था। सो वह भी आया।

जैसलमेर पर जब तुर्कों आक्रमण हुआ था, उस युद्ध में जैसलमेर की हार हुई। बाद में दुर्गपाल गोपालभट्टी दक्षिण में चला आया था और कर्नाटक के वनवासी दुर्ग का दुर्गपाल बना, सो गोपभट्टी भी आया।

कर्नाटक के पृथ्वीश्रेष्ठि और वीर जैनों का अग्रगण्य निर्गठश्रेष्ठि वाया-भागा आया।

दूर-दूर के लिंगायत धाम से वीर शैवों के जंगमश्रेष्ठ तोताचार्य आए।

"नागदेव!" वीर बल्लालदेव ने कहा, "बस, अब कोई अतिथि शेष नहीं रहा। गोपुर के द्वार बन्द कर दो। गरुड़ों से कह दो कि द्वितीय आज्ञा तक भगवान श्रीमन्नारायण के देवधाम में किसी भाविक, भक्त या दर्शनार्थी को न आने दें। आदेश देकर जल्द लौट आओ, इस महासमिति में भी स्थान है।"

इस समिति की विचित्र नियमावली देखकर सब को विस्मय था और विस्मय की बात थी कि बल्लालदेव ने इतनी उतावली में सबको आमंत्रण दिया। आगन्तुकों को यह भी ज्ञात नहीं था कि उनमें से प्रत्येक के अतिरिक्त दूसरे किसी और को भी बुलाया गया है। इस प्रकार तेरह अतिथि समिति के लिए उपस्थित हुए।

आमंत्रितों को यह ज्ञात नहीं था कि उन्हें किसलिए बुलाया गया था। इसलिए अपने यजमान की समिति के वार्ता-विषय के प्रति सबके मन में उत्सुकता थी। और महाराजाधिराज का निमंत्रण आया है तो सबको आना ही पड़ता है। धर्माचार्य अस्वीकार नहीं करेंगे। दुर्गपाल कैसे इनकार कर सकते हैं? पड़ोस के छोटे-छोटे राजा भी बहाना नही बना सकते, क्योंकि बड़े राजा की कोप दृष्टि से बचे रहकर ही वे अपना अस्तित्व बनाए रह सकते हैं। इसलिए वे भी आये थे और सब के मन में समान प्रतीक्षा थी।

आज तक ये भिन्न-भिन्न वर्ग और विचार के व्यक्ति किसी एक मण्डप

या मंच की छाया में एकत्र नहीं हुए थे। ये तो परस्पर लड़ते-झगड़ते रहे थे और परस्पर की लड़ाइयों ने इन्हें विदेशी आक्रमणकारियों का शिकार बनाया था—एक नहीं अनेक बार। और मण्डली में उपस्थित भिन्न मत और वादों के धर्माचार्य तो कभी, कहीं एकत्र नहीं हुए थे।

इन धर्माचार्यों का समस्त जीवन पारस्परिक रागद्वेष और एक दूसरे का दुर्गुण ढूंढ़ने में बीता था। उनके मन में मुक्ति की खोज की उतनी ललक न रही होगी, जितनी विरोधी मत या पक्ष के आचार्य और उसके अनुयायियों की त्रुटियाँ पा लेने का प्रयास। भगवान वेदान्तदेशिक के कई ग्रंथ आज भी प्रचलित थे। सारे दक्षिण में यह बात सर्वविदित थी कि वेदान्तदेशिक अतिग्रन्था (शैव सम्प्रदाय में अनेक ग्रन्थ हैं। अतएव उसे अतिग्रन्था सम्प्रदाय कहते हैं) और निग्रन्था (सबसे कम ग्रंथ जैनों के पास होने से विरोधी इन्हें निग्रन्थ कहते हैं। बाद में इसी से निगठ शब्द बना) सम्प्रदायों के विरुद्ध 'शतदूषणी' ग्रंथ की रचना कर रहे हैं जिस में इन सम्प्रदायों के दोषों का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसी प्रकार वीर शैवों और शंकराचार्य के भेद थे। जैनों से विरोध था। कहते थे कि चाहे मार्ग में मदमत्त गजराज मार क्यों न डाले, प्राणरक्षा के लिए पास के जैन मंदिर में शरण नहीं लेनी चाहिए।

और निगंठनाथ नागकीर्ति भी कुछ कम न थे कि इस साम्प्रदायिक बुद्धिद्वंद्व में पीछे रह जाएँ। इन्होंने तमिल, तेलुगु और कन्नड़ में साहित्य की धारा बहा दी। संस्कृति के प्रचंड विद्वान और विरोधी पक्ष के विद्वद्वर क्रियाशक्ति महाराज इन्हें *निर्ग्रन्थ वृहस्पति* और नवीन चार्वाक कहकर इनका उल्लेख करते।

ऐसे ही अनेक धर्माचार्य एक समिति में, एक राजा के एक ही समान निमंत्रण पाकर एकत्र हों, यह विचित्र बात थी।

कुछ देर विराम और विश्राम के पश्चात् होयसलराज ने सबको धन्यवाद दिया। फिर खड़े होकर काम्पिलदेव और काची के नायक को उठाकर अपने स्थान पर आगे बिठाया और स्वयं पीछे बैठ गए।

रेशमी आच्छादन उठाकर ताम्बुलपात्र से एक-एक पान-बीड़ा सबको दिया। सबके पश्चात् खुद ने भी लिया और पात्र को मध्य में रख दिया। पड़ोसी राजाओं की अवहेलना न हो, धर्माचार्यों को अविनय न प्रतीत हो, दुर्गपालों को सत्ताशीलता का प्रताप भारी न महसूस हो, इस हेतु महाराज बल्लालदेव ताम्बुलपात्र के पास समिति के बीच में बैठ गए।

फिर वे शान्त, स्वस्थ, प्रसन्न और विनीत वाणी में यों कहने लगे—"हम लोग यहाँ राजा या प्रजा के रूप में उपस्थित नहीं हुए हैं। अतिथि या यजमान, दुर्गपाल या राजसेवक के रूप में भी नहीं आए हैं...

"फिर किसलिए आए? हम सब भाइयों के रूप में एकत्र हुए हैं। अतएव इस प्रकार बैठे हैं, एक दूसरे का मुख देख सकें और एक-दूसरे की बात सुन सकें।...

'मैंने आपको बहुत कष्ट दिया। दूर-दूर से आपको बुलाया, लेकिन मुझे प्रतीत हुआ कि कष्ट-देने जैसा समय आ गया है। मैंने अतिथियों को इसलिए नहीं बुलाया कि वे ज्ञानी हैं, ध्यानी हैं, या विज्ञानी हैं, वे पण्डित, महाजन, सैनिक या दुर्गपाल हैं, वरन् इस कारण मैंने सादर निमंत्रण दिया कि हम सब मनुष्य हैं और मनुष्य के रूप में सम्मानपूर्वक जीना चाहते हैं। मैंने यह नियंत्रण मानवता की ओर से दिया है...."

सब चकित रहकर एक-दूसरे को देखने लगे। अवसर की गंभीरता जानकर सब चुप रह गए। तभी महाराज आगे बढ़े—

"समिति का कार्यक्रम क्या होगा, यह शीघ्र ही स्पष्ट हो जाएगा। मैं भी कुछ निवेदन करूँगा लेकिन उसके पूर्व, आप कृपा कर, वारंगल के राजा महाराज कृष्णाजी नायक की बात सुनिए।"

तत्क्षण कांची का पाण्ड्यनायक कहने लगा—

"क्षमा करें होयसलराज, किन्तु तिरुपति नामक छोटे से गाँव का रहनेवाला एक नायक, वारंगल के यादवराज की काकतीय देशान्तर्गत राजगद्दी को कैसे सुशोभित कर सकता है? क्या होयसलराज ने वारंगल पर विजय प्राप्त कर, कृष्णाजी का राजतिलक किया है?"

"आप सब कृष्णाजी नायक की बात सुनेंगे तो, मेरा अनुमान है कि आप

को अपने प्रश्न का प्रत्युत्तर प्राप्त हो जाएगा। कृष्णाजी, धर्माचार्यों की आज्ञा प्राप्त कर, इस समिति की सेवा में कहिए कि तुम्हारा और वारंगल का क्या सम्बन्ध है?"

तब आचार्यों की आज्ञा और आशीष पाकर कृष्णाजी ने मेघमन्द्र, गुरुगम्भीर वाणी में वारंगल पर हुए म्लेच्छों के आक्रमण, वारंगल के घेरे, महादेवी रुद्राम्मा, महाराज प्रतापरुद्र का शौर्य, महासती उदाली के सती होने, और महासती की अन्तिम आज्ञा के विषय में अथेति तक चर्चा की।

समिति इतनी शान्तिपूर्वक सुनती रही कि सुई गिरे तो भी सुन लिया जाए।

कृष्णाजी की बात पूरी हुई। समिति स्तब्ध रह गई। कोई कुछ न बोला। बोलने जैसी बात ही नही थी।

समाधि से जगे हों, इस प्रकार क्रियाशक्ति विद्यातीर्थ महाराज बोले—"वारंगल का राजशासन कृष्णाजी नायक के हाथों मे रहे, इस हेतु प्रस्तुत समिति की रचना हुई है। महाराज यादवराज प्रतापरुद्र के धर्मपुत्रवत् पाण्ड्यनायक कृष्णाजी को हमारे आशीर्वाद।"

• तुर्कों ने देवगिरि पर आक्रमण किया और सारा राज्य लूट-पाट और अग्निकाण्ड से विनष्ट कर दिया तब देवगिरि के समुद्रतट पर स्थित होनावर दुर्ग का दुर्गपाल उदयभान था। उदयभान ने म्लेच्छों को सिर न झुकाया और अपना हठ न छोड़ा कि म्लेच्छों का राज्य होने पर वह सागर में एक नौका मे रहने लगा और होनावर के दुर्गपाल के रूप मे आधा डकैत जीवन व्यतीत करने लगा और म्लेच्छ उसकी छाया भी न छू सके।

उछल कर उदयभान खड़ा हो गया। क्रियाशक्ति महाराज जब तक बोलते रहे, वह कठिनाई से अपने धैर्य की परीक्षा देता रहा। विद्यातीर्थ जी का प्रवचन पूरा होते ही वह उठ खडा हुआ। तड़ित वेगपूर्वक उसने अपनी तलवार खींच ली और उसे अपने लम्बे हाथ में उठाकर कहने लगा—

"वारंगल को; महाराज कृष्णाजी को मैं पहला प्रणाम करता हूँ। महादेवी रुद्राम्मा, महासती उदाली और जगदम्बा देवी की शपथ

लेकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि यह खड्ग, जब तक इसको धारण करनेवाले की देह में रक्त का एक बिन्दु भी रहेगा, तब तक कृष्णाजी महाराज की अधिकार की रक्षा में तत्पर रहेगा।"

जैसलमेर का गोपभट्टी गर्जन करने लगा—"तुर्कों का आक्रमण कैसा दावानल है, यह मैं जानता हूँ। जैसलमेर को सुलगता हुआ छोड़कर आया हूँ। समय आने पर वारंगल की होली भी देखूँगा लेकिन वारंगल के महाराज, मैं राजस्थान से आया हुआ आपका अतिथि हूँ, कर्नाटक महाराज का सेवक हूँ, लेकिन गोपभट्टी का यह म्लेच्छ-भक्षी-खड्ग अवसर आने पर कदापि म्यान में न रहेगा।"

चन्द्रगिरि का दुर्गपाल विजयादित्य कुछ कहने जा रहा था कि उसे निवार कर, होयसलराज कहने लगे—

"उपस्थित वीरवर दुर्गपालों की वारंगल विषयक वाणी सुनकर मेरे मन में भी इच्छा जगी है कि कुछ और कहूँ।"....

"आप सब मेरा अतीत जानते हैं। इसलिए इस समय मैं उसका उल्लेख करूँ यह जरूरी नहीं। आप सब जानते हैं और मैं भी मानता हूँ कि मेरा यह अतीत उज्ज्वल नहीं है। इस अतीत में मैंने अपने सिवाय किसी का ध्यान नहीं रखा। मनुष्य प्रत्येक संभव-असंभव प्रकार और उपाय द्वारा जीवित रहना चाहता है। स्वार्थ लेकर जीता है तो उसका स्व-अर्थ भी पाप बन जाता है और परमार्थ लेकर जीता है तो उसका स्वार्थ भी पुण्य बन जाता है। मैं अपने पापों को स्वीकार करता हूँ और उनका प्रायश्चित करने को प्रस्तुत हूँ। अपने धर्म की रक्षा के निमित्त सोमैया नायक जैसा वीर सहज ही अपनी आँखें निकाल सकता है, महाराजा प्रतापरुद्र जैसा प्रतापी वीरगति के लिए सन्नद्ध होता है। अपने धर्म के लिए इस देवधाम की महादेवदासी प्रसन्नमुख सती होती है.... तो मेरे मन में भी विचार आया....मैंने राजगुरु वेदान्तदेशिक महाराज से कुछ निवेदन किया। भगवान ने मुझे इस समिति के आयोजन का आदेश दिया।"

दो-चार पल समिति के सदस्यों को बारी-बारी से देखकर बल्लालदेव

आगे बढ़े—"केवल वारंगल की रक्षा के लिए ही नहीं, समस्त दक्षिणापथ को म्लेछों के आक्रमण से रक्षित रखने के लिए।"

"तो क्या तुर्क दक्षिणापथ में आनेवाले हैं?" नागकीर्ति महाराज ने पूछा।

"अचानक आज सुन्दर पाण्ड्य यहाँ आया था।"

"सुन्दर! उस कुलकलंक से आपका क्या काम? क्या उसे भी आपने निमंत्रण दिया था?" कांची के नायक ने अधीर होकर पूछा।

"नहीं महाराज, मैंने उसे निमंत्रण नहीं दिया था। वह मेरे पास दो प्रार्थनाएँ लेकर आया था, जिन्हें मैं स्वीकार न कर सका। कहता था, वह अब तुर्कों का प्रेमपात्र बना है और कहता था दिल्ली का सुलतान उतना ही पानी पीता है, जितना सुन्दर उसे पिलाता है। और सुलतान का युवराज देवगिरि का सूबेदार है और इसके अतिरिक्त मालवा, गुजरात, सागर, गुलबर्गा आदि देशान्तरों का अधिपति है। युवराज का नाम है उलुगखाँ। वह सुन्दर पाण्ड्य को मामा साहब कहकर पुकारता है। और यह मामा साहब मुझे धमकी देकर, गए हैं।"

"ओहो!" मर्मभय मुसकानपूर्वक कांचीनायक बोला। होयसलराज ने सुंदर पाण्ड्य की सहायता की थी, इस बात को देशप्रेमी पाण्ड्य भूले न थे। इसी कारण, कांचीराज कहने लगा—"ओहो! अब समझा। आपकी रक्षार्थ इस समिति की रचना हुई है।"

सोमैया नायक धीमे-धीमे कहने लगा—"कांचीराज, आपके समझने में भूल है। यदि अकेले होयसलराज की रक्षा का प्रश्न होता तो इन्हें किसी सहायता की जरूरत न थी। तुर्क, सुन्दर पाण्ड्य और होयसलराज दोनों के बीच सारा दक्षिणापथ बाँट देना चाहते हैं, शर्त यह है कि दोनों उनके सामंत बनें। इस विषय की मुझे पूरी और गुप्त जानकारी है।"

"कौन, यह दादैया सोमैया बोल रहे हैं?"—काम्पिलदेव ने कटाक्ष किया—"नहीं भूल है, यह तो जमाईराज सोमैया बोल रहे हैं।"

"काम्पिलदेव," मालादेवी ने मंजुल परंतु उग्र शब्दों में कहा—"प्रेम

पति बनकर कोई वीर पुरुष कायर बन जाए, इस आशय के कटाक्ष करने के पूर्व आपने इस प्रकार का कौन-सा तत्व मुझमें देखा है ? या सुना है ? देखा-सुना हो तो कह दीजिए।"

काम्पिलदेव ने हाथ जोड़ लिए—"क्षमा करें देवी, आप पर कटाक्ष करने की मेरी कोई कामना नहीं, पुरुषों के पारस्परिक मतभेद के मध्य महिलाओं पर कटाक्ष करना मेरी रीति-नीति नहीं, मेरा धर्म नहीं।"

मालादेवी रोष में कुछ कहने जा रही थी कि हाथ उठाकर भगवान वेदान्तदेशिक ने उसे रोक दिया। वे कहने लगे—"काम्पिलदेव, मैंने अभी कहा था और बल्लालदेव ने भी आप सबको बतलाया है कि यह समिति मेरी सूचना पर बुलाई गई है। अतएव समिति के विषय में आपको जो कुछ कहना हो, वह मुझ से कहिए।" समिति का वातावरण गरम होने जा रहा था कि निगंठनाथ नागकीर्ति ने उसे रोकने का प्रयास करते हुए कहा—"मेरा खयाल है कि इस तरह टुकड़ों में बातचीत करने से मतमेल होने के बजाय मतभेद बढ़ेगा। यदि इस समिति को आचार्यजी की ओर से आमंत्रित किया गया है तो उचित यही है कि इसकी व्यवस्था स्वयं आचार्यजी करें। हम सब आचार्यजी का कथन शान्तिपूर्वक सुनेंगे।"

निगंठनाथ के निवेदन पर धर्माचार्यों ने मौन रहकर सम्मति दी। काम्पिलदेव और कांचीनायक शंका की दृष्टि से वेदान्तदेशिक महाराज को देखते रहे। बल्लालदेव अपने दाँतों से अपनी मूँछें दबाते रहे। काम्पिलदेव पर मालादेवी को जो क्रोध आया था, उससे उसका चेहरा लालसुर्ख हो गया था।

भागवत आचार्य ने निगंठनाथ के निवेदन की सहायता की।

भागवत आचार्य वेदान्तदेशिक महाराज आगे कहने लगे—"यह स्पष्ट है कि तुर्क आ रहे हैं। दावानल जब तक नहीं बुझता, बुझाया जाता नहीं तब तक उसे जलाने पर ही हमें संतोष हो सकता है। तुर्क या तो हमें नष्ट कर देंगे या वे आपस में लड़कर नष्ट हो जाएँगे—यह उनके विषय में एक कहावत है। यदि हम एक होकर अभंग और अडिग रहेंगे तो उनमें फूट पड़ जाएगी और उन्हें पलायन का पथ पकड़ना पड़ेगा। महादेवी और महाराज प्रतापरुद्र ने अपने कर्तव्य का पालन किया, परन्तु अब बारी आई है बल्लाल-

देश की कि वे अपना जौहर दिखलाएँ, धर्म का पालन करें।"

"सच है, होयसलराज अपने धर्म-कर्तव्य का पालन करते हैं तो इस सुकर्म से उनका जय-जयकार होता है। परन्तु इसमें हमारी कौन-सी ज़रूरत आ पड़ी है? इसमें हमारा काम ही क्या?" जंगमनाथ तोता आचार्य ने पूछा।

सोमैया ने पूछा—"जंगम प्रभु, आपतो बहुजन समाज के गुरु हैं। आप इस प्रकार कैसे कह सकते हैं?"

जंगमनाथ ने उत्तर दिया—"सोमैया नायक, पाण्ड्य भूमि और वीर शैव समाज में, एक समय था, आप वीर और महावीर माने जाते थे। लेकिन आज आप को लिंगायत आँखों नही देखते। अब तो आप अपनी पत्नी की आँखों से देखते हैं और आपकी पत्नी होयसलराज की कन्या है अतएव आप इस समय मेरी बात नहीं समझ सकते। मैं तो पूछता हूँ, तुर्क आ रहे हैं, तो उन्हें आने दीजिए। आएँगे वे तो राजाओं के राज्य लेंगे, मठधारियों के मन्दिर लेंगे लेकिन हमसे क्या ले जाएँगे?"—तोता आचार्य ने क्रियाशक्ति महाराज की ओर देखा—"सच-सच कहिए जगद्गुरु! तुर्कों के आने पर भागवतों के मन्दिर टूटेंगे और भागवत राजाओं के परिवार सुल्तान के जनानखाने में जाएँगे लेकिन इससे मेरा और आपका क्या सम्बन्ध? शंकर के मदिर में रखा ही क्या है कि वे कुछ ले जाएँ?"

"जगमनाथ"—विद्यातीर्थ ने कहा—"आपकी यह बात भ्रममूलक है। प्रश्न मंदिरों का नहीं, मंदिर तोड़ कर वे मूर्तियाँ ले जाएँ, इसमें कोई आपत्ति नही। परन्तु मूर्तियों के साथ भाविकों की श्रद्धा भी ले जाएं तो प्रश्न मदिरो का नही, मूर्तियो का नही, भाविकों की श्रद्धा का भी है। मदिर टूटेंगे तो नए बन जाएगे, मूर्तियाँ टूटेंगी तो नई गढ़ ली जाएँगी, लेकिन जब तक मदिर हैं तब तक उनके पुजारियों के मन मे यह श्रद्धा है कि हम अभय हैं, हम पर ईश्वर की छाया है। यदि इन मूर्तियों और मदिरो के साथ भावना और भक्ति भी आहत हुई तो सारा दक्षिणापथ म्लेच्छ बन जाएगा। यदि आज आप श्रद्धा के भजकों को नही रोकेंगे तो आगामी कल तुम्हारे बहुजन समाज की श्रद्धा इन्हीं भंजकों की पूजा करेगी।"

"स्वामीजी महाराज, तुम्हारे ये मंदिर, ये मूर्तियाँ और ये श्रद्धाएँ मेरी समझ के वाहर है। मेरा तो एक ही कहना है, यदि तुर्कों से लड़कर, हमारा एक वीर मरता है तो अवश्य ही वह अपने पाँच भाई-वहनों को वचा लेता है। इसके विपरीत यदि एक भी व्यक्ति अपनी प्राण-रक्षा के सम्वन्ध में चिन्तित होगा और कायरता दिखलाएगा तो वही दूसरे पांच प्राणियों के प्राण ले लेगा।"—अव तक चुप रहा संगमराय वोला।

"आप कुरुम्व जैसे लगते हैं।" काम्पिल देव ने कठोर कटाक्ष किया।

"कुरुम्व तो हूँ ही, क्योंकि जन्म और वर्ण से मैं अपने माता-पिता की संतान हूँ।"

"इसीलिए आपका गणित ठीक नहीं। राजपुत्र होने पर, राज्य के लाभ-हानि पर विचार किए विना आदमी चुप न रहेगा लेकिन आप तो कुरुंव की औलाद। सो अव हम क्या कह सकते हैं? काम्पिल देव आवेश-पूर्वक वोला।

इस पर शिशिर के हिम–जैसी शान्तिसहित हरिहर ने कहा—"जी ये मेरे पिता हैं। हममें कुरुंवों का वीर्य है। फिर भी हमारा आवास तो दक्षिण ही है। हममें आभीर व्यवहार की परम्परा है। लेकिन जव से वीर राज-पूतों का वीरत्व तिरोहित हुआ तव से...." हरिहर ने कहा—"इतने-इतने वुजुर्ग वैठे हैं तव आगे क्या कहूँ?"

काम्पिलदेव ने इसका जवाव दिया नहीं, परन्तु उसने आचार्य वेदान्त-देशिक के कान में वहुत धीमे से पूछा, "यह लड़का कौन है?"

"यह वड़ा तेजस्वी है कर्नाटक का दण्डनायक। एक वार तो इसने स्वयं कर्नाटक महाराज को आभीर का आमंत्रण देकर, द्वंद्व युद्ध की माँग की थी।"—वेदान्तदेशिक महाराज ने कहा।

"और महाराज ने इसे दण्डनायक वना दिया?"

"हमारे महाराज ऐसे ही व्यक्तियों को ढूंढते हैं और उन्हीं को साथी वनाते हैं।"

"एक विशाल राज्य के राजा के लिए, यह अनुचित है कि वह एक कुरुंवपुत्र से विनम्र व्यवहार करता है।"

"महाराज के सामने आज समस्त दक्षिणापथ है, केवल अपना राज्य और राजत्व नहीं। जो लड़का भरे दरबार में राजा को द्वंद्व युद्ध के लिए ललकारता है वह भले, छोकरा ही क्यों न हो, तुर्कों से कभी डर नहीं सकता।"

"हाँ यह सच है किन्तु..."

"किन्तु, क्या ?"

"भागवतानुयायी राजा में ऐसी दूरदृष्टि कैसे उत्पन्न हुई, यह आश्चर्य की बात है। परन्तु मुझे याद आ गया कि आपके शिष्य बनने के पूर्व, *महाराज वीर शासन के अनुयायी थे।"*

वार्ता दो व्यक्तियों की थी। धीमे स्वर में हो रही थी, तथापि सोमैया के कान में पहुँच गई। उसने कहा—"तो महाराज नागकीर्ति देव ! वेदान्त-देशिक महाराज जो करते हैं, वही आप कीजिए। बल्लालदेव के मन में आज एक ही कामना है, भूतकाल में इन्होंने जो भूलें की उन्हें भूल जाएँ, उनका प्रायश्चित करें और आगे भविष्य में उन्हें दुहराएं नहीं। अब उनका निर्णय है कि किसी भी दशा में तुर्कों के समाने सिर न झुकाएँगे। यदि इन्हें अपने कर्नाटक राज्य की ही चिन्ता होती तो मैं इनका साथ छोड़कर पाण्ड्य प्रदेश में चला जाता, परन्तु इनका मन साफ़ है। ये समस्त दक्षिणापथ को जीवित रखना चाहते हैं, जाग्रत रखना चाहते हैं और तुर्कों से मुक्त रखना चाहते हैं। न ये भागवत-सम्प्रदाय का प्रचार करना चाहते हैं और न ही वीर शासन अथवा शैवों से द्वेष रखना चाहते हैं। यदि आज अखिल दक्षिणापथ सगठित हो जाए, तो ये अपना सिर श्रीमन्नारायण को झुकाते हैं या भैरवनाथ या निगठनाथ, पारसनाथ या शंकरनाथ को झुकाते हैं, इसकी मुझे कोई परवाह नहीं।"

"समझा यह तुर्कों से जंग लड़ना चाहते हैं तो अवश्य लड़ें हमें विश्वास है कि वीरवर इनका साथ देंगे। लेकिन ऐसी युद्धचर्चा के लिए धर्माचार्य का कर्तव्य युद्ध करना नहीं है, युद्ध को रोक देना या टाल देना है, दक्षिणापथ के लोग यदि तुर्कों से लड़ते हैं तो हम उन्हें यह न कहने जाएँगे कि न लड़ें वे। न वे हमारी ऐसी बात ही मानेंगे"—यह तोता आचार्य की बात थी।

बल्लालदेव हाथ जोड़कर उठे और तोता आचार्य के निकट जाकर प्रणामपूर्वक कहने लगे—"भगवंत, अपनी बहत्तर पीढ़ियों की शपथपूर्वक कहता हूँ कि मेरे मन में न तो कर्नाटक राज्य की लालसा है और न ही

दक्षिणापथ समस्त पर अधिकार करने की लिप्सा। तुर्कों की चढ़ाई भारत की सीमा में बढ़ती आ रही है। दक्षिणापथ के लिए मेरी यही कामना है कि वह तुर्कों से रक्षित रहे और तुर्क आगे न बढ़ सकें। उनकी गति रुक जाए। उनका प्रलयंकर प्रवाह सदा के लिए वापस लौट जाए और तुर्कों को पराजित कर, पीछे धकेल कर उन्हें पलायन के लिए मजबूर कर, दक्षिणापथ की ध्वजा को उन्नत करनेवाले सेवकों में मेरा नाम पहले लिखा जाए। इसके सिवाय मेरे मन में कोई मनीषा नहीं।"

"प्रशंसनीय है यह पुरुषार्थ।" तोता आचार्य ने सिर झुकाकर बैठे हुए बल्लालदेव के सिर पर हाथ रखकर कहा—"राजन्, तुम्हारी यह मनीषा पूर्ण हो, इसके कारण भागवत सम्प्रदाय को जो यश और सिद्धि प्राप्त होगी, उसे देखकर मेरे मन में कोई ईर्ष्या उत्पन्न न होगी।"

गोपभट्टी ने दोनों हाथ जोड़कर कहा—"मैं तो इस समिति का बहुत छोटा-सा आदमी हूँ। ऐसे-ऐसे विद्वानों, ज्ञानियों और महासमर्थ धर्माचार्यों के सामने मेरा अज्ञान ही मेरा कवच है कि मैं आप लोगों का साधारण सेवक बना रहूँ। मेरा तो इतना ही कहना है..." गोपभट्टी ने इधर-उधर नज़र डालकर देखा—

"इतना ही कहना है कि हमारे सिर पर घोर आपत्ति मँडरा रही है। क्या ऐसे वक्त पर भी हमारे बीच की साम्प्रदायिक दीवारें ऊँची उठी रहेंगी? क्या अब भी आप-जैसे समर्थ धर्माचार्य, तपस्वीजन धर्मविशेष में जैन, वैष्णव, शैव जंगम वर्गों के बाड़े बनाकर ही छोड़ेंगे। महाराज, हम ही पुरुषार्थ करनेवाले हैं। और हम ही सिर देनेवाले हैं, परन्तु क्या हमें सन्त-जनों के आशीर्वाद भी नहीं मिलेंगे? आज हम अपना जीवन धर्म की तराज़ू पर तोलने जा रहे हैं, क्या ऐसे समय भी हमें धर्माचार्यों का आशीर्वाद नहीं मिलेगा और क्या धर्माचार्य हमारे संगर को, खड़े-खड़े देखते रह जाएँगे?"

कोई कुछ जवाब दे, इसके पूर्व ही ऊंचे-ऊँचे गोपुर की ऊँची-ऊँची दीवारों को पार कर आनेवाले पवन की लहरियों पर तैरता हुआ गम्भीर स्वर आकाशवाणी के समान सुनाई दिया—

"नागरिको, अरे नगरजनो, भिक्षार्थी को दे सको तो इतनी भिक्षा दो! भिक्षार्थी को इतनी भिक्षा देना!"

समिति में जैसे स्तब्धता के मौन की मूर्च्छा छा गई।

१५ : कालमुख विद्याशंकर

द्वार समुद्र ने एक विचित्र दृश्य देखा—सनातन यौवन मानो द्वार-समुद्र के राजमार्ग पर विचरण करने आया है, ऐसा एक संन्यासी दोनों हाथों में खोपड़ी का खप्पर उठाए चल रहा था।

सन-जैसी दाढ़ी, उसकी छाती से कटि तक फैली थी। और उसकी पिंगल-पीत जटा सिंह की तरह सिर के दोनों ओर बिखरी थी। इतने लम्बे बाल बढ़ाने के लिए आदमी को कम-से-कम सौ-डेढ़-सौ वर्ष चाहिए।

उसके केशों से उसे अतिवृद्ध माननेवालों को उसका चेहरा देखने पर, भारी विस्मय होता था। सिंह-सा उसका वदन मानो प्रकाश का पुंज था! और ऐसा लगता था कि यह वृद्ध तापस का नहीं, बीस वर्ष के ज्योतिवलय-मंडित तरुण का तेजस्वी चेहरा है।

और उसकी आँखों में ज्वालामुखी समाए हों, इस प्रकार दर्शक चकित रह जाता कि उसकी आँख से आँख न मिला सकता था!

आँखें वे एकटक देखती प्रतीत होती थीं और उनसे दृष्टि के तीर छूटते-से लगते थे। ऐसा आभास होता था, मानो जिधर उसकी नज़र पड़ेगी, उधर धरती सुलग उठेगी।

उस प्रचंडकाय नरसिंह के हृदय में मानो युगान्तरों के ज्वार लहरा रहे थे। उसके आजानु बाहुओं के स्नायु देखकर लगता था, जैसे साँपों के समूह संचरण कर रहे हैं! उसके पैर अति सशक्त, स्नायुबद्ध, स्थिर और उसके पर्वताकार देह का भारी भार सहज ही उठाने में समर्थ थे।

सुषुप्त ज्वालामुखी, सिमटे हुए सागर और अर्धनिद्रित सिंह का स्मरण दिलानेवाले उस संन्यासी के शरीर पर केवल एक कौपीन था। किसी प्रकार की कोई वस्तु उसके साथ नहीं थी—झोली, झंडा, डंडा, माला या भस्म-तिलक—कुछ न था। उसके पैर खुले थे, धधकती हुई अग्नि हो या कंटकमय वन हो—ऐसी निर्भयता से उठते थे, मानो रेशमी सेजों पर चल रहे हैं।

जैसा अद्भुत था यह संन्यासी, वैसा ही अद्भुत था, उसका भिक्षा-पात्र। आदमी की खोपड़ी का खप्पर, जो हाथ में था, वही भिक्षा-पात्र था। खप्पर के दोनों ओर सिंदूर के पांच-पांच तिलक अंकित थे। यह सिंदूर इस बात का द्योतक था कि यह संन्यासी कापालिक है। इसके अतिरिक्त, उसकी कापालिकता का दूसरा कोई चिह्न उसके पास न था।

ऊँचा, और ऊंचा—आकाश के पहले पर्दे तक पहुँच जाय, ऐसे विकट नाद-स्वर में वह बारम्बार गर्जन करता था—

"नागरिको ! भिक्षार्थी को भिक्षा देना...नागरिको, दे सको तो, इतनी भीख देना...!"

घरों से नर-नारी बाहर निकल आए।

लेकिन कोई संन्यासी को अपनी मनचाही भिक्षा न दे सका। धन-दौलत, भोजन-पकवान और सम्पदा सभी व्यर्थ रह गए।

गली-गली, बाजार-बाजार वह घूमता रहा या उसकी पुकार गूंजती ही रही, बन्द न हुई—"नागरिको, भिक्षार्थी को, दे सको तो भीख दो !"

लोग सब विचार में पड़ गए कि यह क्या चाहता है !

सब जाति और सब वर्ग के लोग आए। एक ब्राह्मण ने आग्रह किया तो संन्यासी ने मांग ली भिक्षा—'इस खप्पर में अपने तीनों पुत्रों को डाल दे।'

बिजली का झटका खाकर जैसे ब्राह्मण पलायन कर गया !

संन्यासी का स्वर गूंजता रहा। उसकी याचना अपूर्ण रही।

भटकता हुआ वह श्रीमन्नारायण के देव-मंदिर तक आया। उसकी पुकार से जैसे गोपुर के द्वार खुल गए और लोगों की भीड़ ने देखा—स्वयं

क्रिया-शक्ति विद्यातीर्थ महाराज इस संन्यासी की ओर दौड़े और उनके पीछे-पीछे राजगुरु वेदांतदेशिक महाराज भी दौड़ चले।

क्रिया-शक्ति महाराज संन्यासी को एकटक देखते रहे। उनके लोचनों से अविराम आँसू झरते रहे। वे तो उसके पैर पकड़ कर बैठ गये—"भगवन्! भगवन्! कितने वर्षों बाद दया की आज!"

शेष धर्माचार्यों ने भी उनके आशीर्वाद लिए। सभी धर्म और वर्ग के आचार्य संन्यासी के चरणों में फूल की तरह बिछ गए!

वल्लालदेव के विस्मय का पार न रहा। दुर्ग के दुर्गपाल चकित रह गए!

क्रिया-शक्ति महाराज ने राजा से कहा—"राजन्! भगवान् के चरणों में दण्डवत कर इनके आशीष प्राप्त करो! इनका शुभ अभिधान भगवान् कालमुख विद्याशंकर महाराज है!"

ऐसा—यह कापालिक द्वारसमुद्र के राजमार्ग पर चला जा रहा था!

१६ : भगवान की भिक्षा-झोली

भगवान कालमुख विद्याशंकर ! यह नाम सुनकर सकल जनसमाज मुग्ध रह गया ! दक्षिणापथ में कौन ऐसा अभागा होगा, जिसने इन महा-प्रचंड तपोनिधि का नाम न सुना हो !

लेकिन किसी ने उन्हें अपनी आँखों न देखा था ! आज वह शुभ दिन आया ! लोगों के उछाह की सीमा न रही ।

लोक-कथा थी कि आदि शंकराचार्य के ज्ञान की बराबरी करनेवाली विद्या-निधि, क्रियाशक्ति विद्यातीर्थ महाराज के पास थी । लेकिन उन्होंने यह समस्त विद्या भगवान् कालमुख विद्याशंकर के चरणों में बैठकर प्राप्त की थी ।

फिर स्वयं कालमुख महाराज ने अपना परिचय सुनाया । अपनी कथा सुनाई, "मैंने देखा कि कालयवन से भी भयंकर कालयवन आनेवाला है । घोर कलियुग स्वयं आगे बढ़ रहा है ।...इस समय आप लोगों को एक हो जाना है । एक होकर रहना है और संगठित रूप में शत्रु का सामना करना है । वर्ग, वर्ण और वंश के विभेद विनष्ट हों !"

भगवान् कालमुख विद्याशंकर का आदेश सबने-राजाओं ने और लोगों ने, स्वीकार किया !

तब वल्लालदेव ने उठकर सब को सम्बोधित कर कहा—"मैंने आज तक कई दुष्कर्म किए ! कुछ राज्य के लिए, कुछ अपने स्वार्थ के लिए ! मैंने विदेशियों की दासता स्वीकार की ! मुझे अपने विगत जीवन पर पूर्ण

पश्चात्ताप है ! आज मैं प्रायश्चित करना चाहता हूँ। भगवन्, आज कर्नाटक का समस्त राज्य आपके चरणों में समर्पित करता हूँ !'

भगवान् ने राजा को आशीर्वाद दिया।

फिर हरिहर से कहा—'अपना खड्ग आओ, वत्स !'

बल्लालदेव ने खड्ग की कथा कह सुनाई। जगदम्बा रुद्राम्मा और प्रतापरुद्र का हाल सुनाया। भगवन् ने खड्ग को हाथ में लिया और कुशल महारथी की तरह उसे चलाया ! लोग देख-देखकर दंग रह गए।

हरिहर को खड्ग लौटाते हुए भगवान ने कहा—"राय हरिहर, आज से तू दक्षिणापथ के मेरे राज्य का महामण्डलेश्वर है ! भूलना मत कि तेरा धर्म एक ही धर्म है—विजयधर्म ! तेरा अपनी किसी सम्प्रदाय के प्रति कोई भक्ति नहीं रही ! आज से यह शासन और आसन कालमुख विद्याशंकर का है। हरिहर, तेरे कितने भाई हैं ?"

"जी, चार भाई और हैं।"

"कहाँ हैं तेरे पिता ?"

दूर खड़ा संगमराय समीप आया। भगवान् कालमुख को उसने प्रणाम किया।

"अपने ये तीनों पुत्र मुझे दे दे वत्स, संगम !"

"भगवन् ! भगवान का भिक्षा खप्पर छलका कर, आज मैं कृतार्थ हुआ।'

१७ : मालादेवी

एक वात सवने स्वीकार कर ली थी। द्वारसमुद्र कर्नाटक का पाट-नगर था और अव इसका राज्य तुंगभद्रा से सेतुवंध तक फैला था और इसका सिंहासन भगवान कालमुख विद्याशंकर का सिंहासन था।

इसमें कर्नाटक का भी समावेश था।

कर्नाटक का राजा परम्परा से वैष्णव था। धुन का पक्का था।

अव उसे धुन लगी थी कि दक्षिणापथ का एकीकरण, संगठन हो और म्लेच्छों से मातृभूमि को मुक्त किया जाए। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने स्वेच्छा से राज्यत्याग किया। सोमैया को महाकर्णाधिप वनाया और छिन्नभिन्न देश के सभी वांधवों को एक ध्वजा की छाया में एकत्र कर स्व-तंत्रता के अमर संग्राम की तैयारियाँ पूरी कीं। वह दिन रात घोड़े की पीठ पर घूमता। प्रत्येक दुर्ग का निरीक्षण करता। समुद्रतट पर वसे हुए होना-वर दुर्ग, वनवासी दुर्ग, काम्पिल दुर्ग, आने गोंडा दुर्ग, पेनु गोंडा दुर्ग, हाम्पी का दुर्ग और अन्यान्य दुर्ग हिमालय की तरह अचल-अटल खड़े हो गए। सवके सैनिकों की साँसे स्वाधीनता की संरक्षा के लिए फुकार करने लगीं।

इधर सोमैया नायक राजकाज देखता। दिन रात वह शासन की सुव्य-वस्था में लगा रहता। उसकी स्मरण शक्ति अद्‌भुत थी। लोग उसे सहस्रा-वधानी कहते। जगद्‌गुरु ने उसे 'सिंहासन प्रतिष्ठापन आचार्य' के अभिनव विरुद से सम्मानित किया।

उसके शासनकार्य में सुन्दर पांड्य दाहिना हाथ वन गया। एकता

और संगठन का विचित्र वातातरण दक्षिणापथ के कण-कण को मुखरित करने लगा।

होनावर के दुर्ग की स्थापना पर सभी धर्मों के आचार्यों को आमंत्रित किया गया कि वे उसे आशीष दें। बड़े समारोह का आयोजन हुआ।

इन दिनों मालादेवी के कार्यभार का अन्त न था।

जिसदिन समारोह की शुभ घड़ी निश्चित की गई थी, उस दिन की बात है। भोजन की तैयारी हो चुकी थी।

'सुन्दर ! सुन्दर' की पुकार हुई।

मालादेवी स्वयं उसे खोजने चली !

लेकिन उसे कहाँ ढूँढें ? तभी एक आवाज आई—'महादेवी !'

मालादेवी ने आवाज़ पहचान ली। यह यह आवाज़ उनकी अपनी दासी की आवाज़ थी। यह वही दासी थी, मालादेवी ने जिसकी, बीमारी में परिचर्या की थी, अपनी देखरेख में इलाज करवाया था !

मालादेवी की इस दासी-की ओर सुन्दर की नज़र थी और अवसर पाकर वह, जब-तब उससे छेड़छाड़ किया करता ! मालादेवी जानती थी कि राज-महल की दासियोंसे वहाँ के पुरुषों का सम्पर्क-संसर्ग रहता है, यह एक कुरीति थी। लेकिन, मालादेवी को भी इसमें असभ्यता या असम्मान दृष्टिगोचर नहीं हुआ !

'क्यों ?' मालादेवी ने दासी से पूछा—'उजाता, क्या बात है ? तूने सुन्दर नायक को देखा है ?'

'देवी, ज़रा इधर आइए, मुझे कुछ कहना है।'

'इस समय बात करने का अवसर है ? मैं सुन्दर नायक को ढूँढ रही हूँ। और सब उनकी प्रतीक्षा कर रहे हैं, भोजन के लिए।'

'देवी, मैं उन्ही के विषय में कहना चाहती हूँ। ज़रा निकट आइए।'

मालादेवी उसके पास गई।

दासी ने उसके कान में कहा—'देवी...देवी...हमें धोखा दिया जा रहा है। सावधान हो जाइए दगा........'

'किस विषय का दगा ?'

'बात लम्बी है और वक्त कम है। लेकिन, आपने मेरी जान बचाई है। आज मैंने वह विष पी लिया, जो आपके और सोमैया नायक के लिए तैयार किया गया था।...आपने मुझे बहन...की...तरह...रखा। मैं तुम्हारी...दासी नहीं...धोखा देने के लिए ही दासी बनी थी। मेरा नाम उजाता नहीं....मेरा नाम मंदांगी है। मैं सुन्दर नायक की पत्नी हूं।'

मालादेवी स्तब्ध रह गई।

मंदांगी बोली—"मैं महापापिन हूं! देवी...मुझे क्षमा करें। मैं कई दिनों से आपको सावधान करने का अवसर खोज रही थी। आज सुन्दर नायक की सहायता के लिए, मलिख उलूग़ खां के मामा का लड़का भाई चुनंदी तुर्कों की टुकड़ी लेकर आ रहा है। देवी, मुझे क्षमा करना।...

"उधर सामने बसार नामक एक टेकरी है। वहां से एक गुप्त मार्ग दुर्ग के अन्नागार में निकलता है।"

"समय कितना है?"

'ऊपर जाकर चेतावनी दे सकूं इतना भी नहीं।'

"नहीं...दे...वी...नहीं।"

इतना कहकर मंदांगी बेसुध हो गई।

१८ : सुन्दर का रहस्य

ऊपर अन्न-भाण्डार-गृह में श्लोक पाठ हो रहा था। और सोमैया नायक की प्रार्थना को मान देने के] लिए जितनी देर प्रतीक्षा की जा सकती थीं, उतनी देर की गई, फिर भी सुन्दर तो नहीं लौटा।

'अरे सुन्दर !' सोमैया ने अपनी अधी आँखों पर हाथ फेरते हुए कहा— 'सुन्दर क्यों नहीं आया ? कोई गया है, उसे बुलाने के लिए ?'

'जी, स्वयं मालादेवी गई हैं।'

'तो वह आएगा ! यह भी अजीब देवर है, भाभी के बुलाने पर ही आएगा। लेकिन, वह कहाँ फँस गया है ? सुन्दर........सुन्दर ?'

जैसे सोमैया की पुकार के उत्तर में, एक तेज, काली चीख सुनाई दी। सहसा भारी कोलाहल का गर्जन हुआ !

सब सामने की दिशा में देखने लगे। दुर्गपाल उदयभान अपने आसन से उठा, रसोई घर की ओर बढ़ा।

रसोई घर के द्वार में ही सुन्दर मिल गया। उदयभान को धकेल कर वह बाहर आया। और कैसा था यह सुन्दर ?...

नख से शिखा तक वह तुर्की पोशाक पहने था ! हाथ में नंगी शमशीर थी। इसी शस्त्र को आगे बढ़ाए, वह बढ़ रहा था और उसके पीछे-पीछे तुर्की सिपाही थे।

क्षण भर में सब लोग विस्मय के सागर में डूब गए और मूक एवं मूढ़ बने बैठे रहे।

'कौन सुन्दर, आ गया क्या ?' सोमैया ने पूछा ।

'हाँ, मेरे भैया, मैं आ गया हूँ ।' सुन्दर ने विकराल हँसी हँसकर कहा —
"मेरे अंधेराम, तुम्हारा यह उस्ताद आ पहुँचा है ।"

'सुन्दर, तुझे आज क्या हो गया है ? पागल हो गया है क्या ? भाभ
कहाँ है ?'

क्रूर हास्य गुंजा कर सुन्दर ने उत्तर दिया—'नहीं, मैं पागल नहीं
हूँ । तुम्हीं लोग बेवकूफ़ बने हो ।'

'तेरी नानी कहाँ है ?'

'मेरी भाभी ! उस सीता का हरण हो गया है ।'

'सुन्दर, यह क्या बकवास है ?'

'अरे ओ अन्धे ! और अन्धे के तुम सब अन्ध चेले ! तुम सब बेवकूफ...
क्या तुम लोग यह समझ बैठे थे कि अपने पिता के राज्य के लिए एक भाई
के प्राण लेने वाला मैं दूसरे भाई की गुलामी करूँगा ? पारसमणि ! पारस
मणि के स्पर्श से लोहा भी सोना बन गया......हा हा हा, वह कालमुख
योगी पारसमणि ? क्या ऐसे जोगियों के कहने से मैं हज़ार साल पुराना
बापदादों का अपना राज्य छोड़ दूंगी ? अरे मूर्खो ! इस संसार में सच्चा
पारसमणि एक ही है—दिल्ली का सुलतान । दूसरा कोई नहीं । क्यों ठीक
है न मलिक बहाउद्दीन ?"

तुर्क सिपाहियों के समूह का एक विशिष्ट व्यक्ति बोला—"सच्ची बात है
जनाबेआला ! आपको दक्खन की मलिक मसनद मिली है । लेकिन इन
काफिरों का क्या होगा, जानते हैं ? जल्लाद की रस्सी इन्हें मिलेगी ।"

"सुन्दर ।' सोमैया ने कहा—"जिस पिता का मन और मान रखने
लिए मैंने मदुरा की राजगद्दी का त्याग किया, उस पिता की शपथपूर्वक
ा हूँ कि मैंने कभी यह सोचा तक न था कि तू इस सीमा तक क्षुद्र बन
ा है !"

"अरे अन्धे भाई ! मेरी क्षुद्रता और महानता की फिक्र छोड़िए और
बीबी की फिक्र कीजिए ।"

हाँ है वह ?"

"हा हा हा, तुम सोने का माया-मृग लेने चले और पीछे से हमारी भाभी का हरण हो गया। बेचारे मलिक बहाउद्दीन सागर में छिप-छिप कर आए और एक अंधेरी गुफा का लम्बा रास्ता तय कर यहाँ तक पहुँचे और अब तुम सब को भी वैसे ही, दूसरे अंधेरे मार्ग से यथास्थान पहुँचा देंगे। मैं इनका बदला कैसे चुकाऊं ? बड़ा एहसान है इनका। इसलिए, मैंने इन्हें दान में अपनी भाभी दे दी। हाँ अन्धराज, भगवान राम ने भी इसी भूमि के राजा बाली की पत्नी का दान किया था। यह तो रघुकुल-रीति है और मैंने तो बल्लालराज से कह दिया था उस दिन, बल्लालराज सुन्दर काला नाग है। आज तुम सबको मालूम हो गया कि सुन्दर किसी प्रलय से कुछ कम नही हैं। और भी बहुत कुछ मालूम हो जाएगा, जब हमारी छबीली भाभीजी शाही हरम मे मलिक बहाउद्दीन बहादुर के चरणों की चाकरी करेंगी।"

धीमे धीमे राय हरिहर आगे बढ़ा, निकट आते ही उसने सुन्दर के गाल पर जोर का थप्पड़ दिया—'सभ्य समाज में बात करना सीखो।'

"सुन्दर को चक्कर आ गए—"मुझे...मुझे...समस्त दक्षिणापथ के महाराज को, कौन है तू जो थप्पड़ मारता है ?"

और उसने बड़े क्रोध से तलवार खीच ली।

फिर क्या हुआ इसका ध्यान सुन्दर को भी न रहा। दूसरे भी न जान सके। मानो जादू या किसी चमत्कार से सुन्दर की तलवार हरिहर के हाथ मे आ गई।

इसके बाद सुन्दर ने बहाउद्दीन की तलवार लेनी चाही पर बहाउद्दीन ने उसे रोक दिया। तभी हरिहर ने उछल कर सुन्दर को एक ठोकर दी और बहाउद्दीन का गला पकड़ लिया। पैरों में लंगी डाल कर जमीन पर गिरा दिया और छाती पर चढ़ बैठा। नंगी तलवार उसके गले पर रखकर गर्जना की—"मलिक, कह दे अपने जवानो से कि हथियार नीचे रख दे।"

"सुंदर ने चीखकर कहा—खबरदार, कोई हथियार नीचे न रखे।"

हरिहर ने मलिक की छाती में तलवार की नोक दबाई।

"रख दो हथियार नीचे, जल्द रख दो।"—मलिक ने घबराकर कहा।

लेकिन किसी ने हथियार नीचे न रखे। हरिहर ने फिर से नोक को छात
में घुसेड़ कर कोना और दबाया।

मलिक ने भयंकर चीत्कारपूर्वक कहा—"रख दो, रख दो। देखते नहीं
मेरा सीना? इसकी आँखें मेरी जान ले लेंगी।"

इधर सुन्दर ने पुकारा—"सिपाहियो, अगर तुमने हथियार नीचे रख
दिए तो, तुम सब अपनी जान से हाथ धो बैठोगे। अगर मलिक की जान को
ज़रा भी ज़रर पहुँचा तो मैं तुम्हारी खाल खिंचवा लूँगा और उसमें घास-
फूस भरकर एक-एक गाँव में घुमाऊँगा। ताकि लोगों को मालूम हो जाए
कि मलिक मसनद सुन्दर के हुक्म को न माननेवालों की क्या हालत होती
है। मेरा हुक्म है, पकड़ लो इन सब को!"

लेकिन कोई तुर्क आगे न बढ़ा। सुन्दर के क्रोध की सीमा न रही।
उसने हरेक सिपाही को एक-एक तमाचा जड़ दिया। और जब उसने सामने
देखा तो उसके आश्चर्य का अन्त न रहा।

द्वार में मालादेवी उपस्थित थी। उसके हाथ में एक तलवार थी।
और एक तलवार उसकी कटि पर लटक रही थी।

धीमे-धीमे, गौरवमय क़दम बढ़ाकर वह बाहर आई। कोई कुछ
समझ न सका।

"सिपाहियो,"—उसने पुकार कर कहा—"पकड़ लो इस देशद्रोही को!"
और तुरन्त सिपाहियों ने सुन्दर को घेर लिया।

सुन्दर चीखता रहा—"मुझे पकड़ते हो? मैं दिल्ली के सुल्तान का
बिरादर, तुम्हारी खाल उतरवा लूँगा। तुम्हारे बच्चों को क़त्ल करवा दूँगा।"

तब मालादेवी ने कहा—"सिपाहियो, अपनी नक़ाब उतार दो ताकि
काले नाग को मालूम हो जाए कि उसके ज़हरीले दाँत तोड़नेवाला कौन है।"

सोमैया नायक ने मालादेवी की आवाज़ सुनी। आँखों से वह कुछ देख
न सकता था। और इस समय कानों में जो आवाज़ें आ रही थीं, उनसे,
यह समझना मुश्किल था उसके लिए कि क्या हो रहा है। इस भूल-भुलैया
में मार्ग खोजने की उसकी उलझन उसके चेहरे पर छाने लगी। और
मालादेवी का स्वर सुनकर कुछ सहारा मिला—"माला!"

"बात क्या हुई थी?"

"जी, सुन्दरनायक हमारे अतिथि बनकर यहाँ रहे और हमारी मैत्री का स्वांग भरते रहे। उनके मन में कौन-सा कपट छिपा हुआ था, वह आज प्रकट हो गया। ये हमारा भेद लेने आये थे। [illegible] उन्हें [illegible] गया है। देश के संरक्षण के लिए उसका बड़ा महत्त्व है। इधर हमारे सभी दुर्गपाल और विशिष्ट अधिकारीगण यहाँ उपस्थित हैं। अवसर देखकर सुन्दरनायक ने अपना प्रपंच रचा। आप सब सज्जन नंदन उद्यान में बैठे थे। स्वामी मुझे क्षमा करें मेरे मन में आपके भाई के प्रति उतना और उतना विश्वास न था, जितना आपके मन में है। पहले से [illegible] डर रही कि कहीं आपको ठेस पहुँचेगी।"

"समझा, फिर क्या हुआ?"

"जी, समारम्भ-स्थल पर जब सब लोग उपस्थित हो गए और सुन्दरनायक ही न आए, तो मैं उन्हें ढूंढने गई। ढूंढते-ढूंढते जलागार में मुझे [illegible]

मिली। जिस दासी को हम लोग उजाता के नाम से जानते हैं, वास्तव में वह मंदांगी थी, सुन्दरनायक की पत्नी !"

"क्या कहा, मंदांगी ! अरे, यह तो वही—नाईन गणिका है, जिसने मेरे भाई वीर पाण्ड्य का ख़ून किया है।"

किन्तु, देव, उसके मन में सुन्दर नायक के प्रति जितना मोह था, उससे अधिक मेरे प्रति प्रकट हुआ। इसके अतिरिक्त उसने भगवान कालमुख विद्या-शंकर की पूजा भी की थी। पारस ने लोहे को कंचन बना दिया !"

"फिर ?"

"मंदांगी ने मुझे बतलाया कि सुन्दर पांड्य के बुलवाए हुए तुर्क, गुप्तमार्ग से आ रहे हैं। होनावर दुर्ग के एक प्राचीन प्रवेशद्वार से आकर वे हमें क़त्ल करना चाहते हैं।"

"अच्छा, तो इसीलिए सुन्दर पाण्डय ने एक न एक बहाने सबके हथियार रखवा लिए थे।"—काम्पिलदेव ने कहा।

"स्वामी, मेरी उलझन की सीमा न रही। यहाँ, ऊपर आप सब जन निःशस्त्र बैठे थे, और नीचे से तुर्क आ रहे थे, तब मुझे एक मार्ग दृष्टिगोचर हुआ। जलागार में नाई लोग पानी भर रहे थे। मंदांगी ने उन्हें वहाँ नियत किया था। मुझे उनकी सहायता मिली। मलिक बहाउद्दीन के निकल जाने पर हमने शेष तुर्कों को एक-एक कर मार डाला। गुफा के द्वार में ज्यों-ज्यों हरेक प्रवेश करता, त्यों-त्यों हम उसके गले में फन्दा डालकर एक ओर खींच लेते। इस प्रकार कुछ मर गए, कुछ भाग गए।"

"और नाई ?"—राय हरिहर ने पूछा।

"वे तो दक्षिणापथ के होलेय थे। उन्होंने सोचा, यदि होलेय ही बनकर आना है, और दासकार्य ही करना है तो तुर्कों की ग़ुलामी न करके दक्षिणा-पथ के सामन्तों के होलेय बनकर रहना अधिक अच्छा है।"

"इसके बाद ?"—सोमैया नायक ने उतावली में प्रश्न किया।

"इसके बाद की घटनाएँ आप जानते हैं शायद। मैंने जानबूझ कर सुन्दर पाण्डय का रहस्य सब को विदित होने दिया। इससे आपको दुख होता है परन्तु दक्षिणापथ का हित इसी में है, यही सोचकर मैंने उनका रहस्य प्रकट होने दिया। आपके कष्ट के लिए क्षमा माँगती हूँ।"

"नहीं देवी, सुन्दर पाण्ड्य के भाई सोमैया को अपने पिता की अंतिम आज्ञा का स्मरण कर अवश्य दुख होता है। परन्तु विजयधर्म के धुरंधर भगवान कालमुख विद्याशंकर की अपनी भूमि—दक्षिणापथ के महाकर्णाधिप को तनिक भी दुख नही। कहाँ गए महामण्डलेश्वर ?"

"जी, सेवक उपस्थित है।"—राय हरिहर ने कहा।

"राय हरिहर ! आप महामण्डलेश्वर हैं। अतएव भगवान कालमुख विद्याशंकर की ओर से और महाकर्णाधिप की सम्मति से धर्मादेश प्रकाशित करने के अधिकारी हैं और आज तो, सभी दुर्गपाल, सभी धर्माचार्य एवं आमन्त्रित अतिथिगण यही समुपस्थित है।"

"जी, उपस्थित है।"

"तो महामण्डलेश्वर ! महाकर्णाधिप सोमैया नायक की सम्मति से उपस्थित सर्व अतिथिमण्डल की साक्षी में, चारों धर्मों के आचार्यों की सन्निधि में, महामण्डलेश्वर हरिहर राय, आप कालमुख विद्याशंकर, दक्षिणापथ के राजा के नाम से एक धर्मादेश की घोषणा करें कि दक्षिणापथ में जितने भी नाई, और होलेय हैं, उन सब को आज से दासत्व से मुक्त किया जाता है। उन्हें राज्य के सभी करों और लगानों के बन्धनों से मुक्त किया जाता है। इनको मुक्ति से उनके जिन स्वामियो को जो कुछ हानि होगी, उसका सारा हर्जाना राज्य देगा।"

इस पर क्रियाशक्ति विद्यातीर्थ महाराज ने कहा—"अपने इस धर्मादेश में, कृपया इतना और जोड़ दें कि जगद्गुरु श्रीमद् शंकराचार्य क्रियाशक्ति विद्यातीर्थ महाराज, दक्षिणापथ के राजगुरु का यह आदेश है कि आज की प्रथम घड़ी से वर्णाश्रम धर्मंमंडित समाज व्यवस्था में कोई भी व्यक्ति नाई मात्र को कदापि शूद्र न माने। इन्हें आज से द्विज माना जाए।"

हरिहर ने हाथ जोड़कर कहा—"प्रभु, इनके साथ ही प्रबल देशभावना के भाविक होलेयो और पालेरों को भी दासत्व से मुक्त किया जाए तो बड़ी कृपा होगी।"

"अवश्य महामण्डलेश्वर, एक स्वतंत्र आज्ञा प्रकाशित हो कि आज से दक्षिणापथ में होलेय और पालेर भी दासत्व से मुक्त किए जाते हैं। और

आज के दिन मुक्ति दिवस के रूप में, प्रतिवर्ष समारोह मनाया जाए। जो कोई व्यक्ति इस व्यवस्था का उल्लंघन करेगा वह पंचमहापातक के पाप का भागी होगा और राज्य उसे कड़े से कड़ा दण्ड देगा।"

अब तक मूक और मूढ़-जैसी शान्त खड़ी मंदागी दौड़कर सोमैया नायक के पैरों में पड़ गई—"प्रभु, भगवान, मैं मंदागी। आज आपने मेरी जाति का उद्धार किया। अब प्रभु मेरे पापों के लिए मुझे भी क्षमा करें। मेरा कल्याण करें।

"मंदागी, उठो! आज से हमारे घर में तुम्हारा स्थान कुलवधू का गौरवपूर्ण स्थान रहेगा। मालादेवी तुम्हारी इसी पदमर्यादा के अनुरूप तुम्हारा सत्कार करेंगी।"

"और अब..." दो पल मौन रहकर सोमैया नायक बोले—"अब दुष्ट को दण्ड देना रहा, सो देशद्रोह के अपराध में सुंदर नायक को दण्ड देना है। दण्डनायक हरिहर, धर्मादेश प्रकट करना और उसके अनुरूप लोक-व्यवहार चलाना, तुम्हारे अधिकार के अन्तर्गत है। इसलिए सुन्दर का न्याय तुम्हारे हाथ है।"

१६ : गुरु-दक्षिणा

भोजन-समारंभ में समाप्त हुआ, किन्तु भोजन में स्वाद न रहा। ऐसा प्रतीत होता था मानो किसी स्वप्न-लोक की चित्र-विचित्र, सुन्दर-असुन्दर झाँकियाँ देखकर अतिथिगण अभी भी निद्राविहीन हुए हैं।

किन्तु, इस स्थिति से घबरा कर अपने को ही भूल जानेवाला व्यक्ति वहाँ कोई न था, क्योंकि लगभग सभी व्यक्ति तुर्कों से टक्कर ले चुके थे।

इनमें सोमैया और संगम की तो बात ही अलग थी। मुट्ठी भर जवानों को लेकर वर्षों तक वह तुर्कों से लड़ा था कि शंकर का नया अवतार माना जाता था और दादैया की उपाधि से विभूषित था। इधर संगमराय भी कुछ कम न था, काफ़ी समय तक वह बन्दी बनकर रहा था। राजा का रोष था कि उसे यह अपमान सहना पड़ा। वरना वह तो सोमैया जैसे वीर को भी उसके पड़ाव में घुसकर, पकड़कर, ले आया था।

इसी तरह उदयभान, विजयादित्य, गोपभट्टी आदि वीरवरों ने निरन्तर पराक्रम का पथ उज्ज्वल किया था। लेकिन, आज इन वीरों ने अलग-अलग जौहर दिखलाया था और एक होकर संगठन का विचार, उनके मन में नहीं आया था। आज समय और सद्‌गुण ने उन्हें संगठित कर एक सूत्र में माला के मनकों की तरह पिरो दिया था। सब में देशप्रेम की भावना भरपूर भर दी थी। और इसी भावना का परिणाम था कि मालादेवी जैसी तेजस्वी नारी देशद्रोहियों से दक्षिणापथ की रक्षा कर सकी।

अब अधिकारियों ने विचार किया कि यद्यपि शत्रु के कोई जासूस पकड़ लिए गए और सुन्दर और उसका साथी बहाउद्दीन बंदीगृह की हवा खा रहे है, फिर भी, बचकर जो भाग निकले हैं वे तुर्क कई दुर्गों के मार्ग आदि से परिचित हो गए हैं। अतएव, पूरी छान-बीन करना आवश्यक है और दुर्गों की पुनर्रचना और व्यवस्था अनिवार्य है।

इस सब व्यवस्था की तैयारी के लिए विविध अधिकारी चल पड़े।

तदुपरान्त दण्डनायक के न्यायालय में उपस्थित हुए। दण्डनायक न्यायासन पर विराजमान हुआ।

सबसे पहले मलिक बहाउद्दीन ने अपना बयान दिया—"मेरा इन्साफ़ करनेवालो, इतना याद रखना कि कहीं ऐसा वक्त न आ जाए कि मेरा इन्साफ़ करने के बजाए, तुम्हीं सब कठघरे में खड़े हो जाओ। मैं दिल्ली के सुल्तान का शाहज़ादा हूं, इसलिए सल्तनत के शाही खानदान का फरजंद हूँ। और शाहज़ादे का इन्साफ सुल्तान या खुदा के सिवाय दूसरा कोई नहीं कर सकता।

"यह बात और है कि आज तुम्हारी ताक़त ज्यादा है और मेरे हाथ छोटे हैं। मेरे कैदी होने के बजाए, मैं तुम्हारा कैदी हूं। लेकिन याद रखना कि मेरे खून की एक-एक बूंद का बदला लिया जायगा। और सुल्ताने आलम-जहांपनाह के खिलाफ़ बग़ावत करने के जुर्म में तुम्हें और तुम्हारे बच्चों को गुलामी के बहुत बुरे दिन देखने पड़ेंगे। खून की नदियां बह जाएँगी और गांव-गांव में आग धधक उठेगी। मेरी नहीं, अपनी जानमाल और अपने बीवी बच्चों और बूढ़ों की फिक्र करो।"

हरिहर ने कहा—"हम तुम्हारा न्याय कर रहे हैं और यह भी अच्छी तरह जानते हैं कि उसका क्या परिणाम हो सकता है। किन्तु तुम्हारा यह बयान और ऐसी घुड़कियां तुम्हारे बचाव का साधन नहीं बन सकतीं। तुम शाही फरजंद हो या नहीं, इस बहस को बढ़ाने में कोई लाभ नहीं। न्याय के आसन पर बैठा न्यायाधीश तो, पूर्वागत परंपरा के अनुसार ही न्यायदान देता है। और सत्यासत्य का निर्णय देता है। इन बातों को याद रखते हुए, तुम जो कुछ कहना चाहोगे, हम ध्यानपूर्वक सुनेंगे।"

"कहना कुछ नहीं। तुर्क इस वक्त सोए हुए हैं, सोए हुए शेरों को जगाना ठीक नहीं। जगाएँगे तो दक्खन में आप लोग चैन से नहीं रह सकेंगे, ऐसा एक ज़लज़ला आएगा।"

"और कुछ ?"

"दूसरी बात भी है : आप मुझे इस मुल्क पर हमला करनेवाला बतलाते हैं। लेकिन, ज़रा सोचिए, यह मुल्क है किसका ? हिमालय से लेकर सेतुबंध रामेश्वर तक यह सारा मुल्क दिल्ली के सुलतान का है। किसी फकीर, साधु या मंडलेश्वर का नहीं है। जहाँ-जहाँ तुर्क लोग गए, हिन्दुओं के मंदिर तोड़े गए और मंदिरों की जगह मस्जिद की मीनारें आसमान को छू रही हैं। इस सचाई से कोई इंकार नहीं कर सकता।"

मलिक बहाउद्दीन ने चारों ओर नज़र डाली। उसने देखा कि सभासदों के चेहरे रोष से लाल हो गए हैं। फिर से वह कहने लगा—

"जनावेमन ! आप लोग अपने दिलों पर हाथ रख कर सोचें और ग़ौर करें कि यह मुल्क किसका है ? यह ज़मीन तुर्कों के हाथ में रहेगी। आपकी सलामती इसी में है कि आप दिल्ली के सुलतान से माफ़ी माँगें और उसके कदम चूमें। सुलतान आप पर रहम करेगा या नहीं—यह तो मैं नहीं कह सकता। एक और बात है, सुलतान ने इनायत फरमाकर यह सारा मुल्क मलिक मसनद सुन्दर पाण्डय को बख़्शा है। मैं इसी इनायत पर अमल करवाने के लिए आया हूँ। सुलतान की हुकूमत में आया हूँ। मैंने कोई गुनाह नहीं किया। आपका फ़र्ज़ है कि सुन्दर पाण्डय के कदमों में झुककर कोर्निश बजाएँ। मैं आपको अपने फ़र्ज़ की याद दिलाता हूँ।"

सब लोग चुपचाप सुनते रहे। दण्डनायक हरिहर ने स्वस्थतापूर्वक कहा—"मलिक ! और कुछ कहना है ?"

"मैंने, क्या-कुछ कम कहा है ? आप लोग जो कुछ कर रहे हैं, उसके लिए मैंने आपको चेतावनी दे दी है। बलवाइयों को सुलतान आग में ज़िन्दा जला देता है और आप सब बाग़ी हैं। दक्खन में आप लोग, जिसे कालयवन

के नाम से जानते हैं, उस मलिक काफूर ने यह सब किया है ? खैर...मेरी बात मानकर, सुलतान से माफ़ी माँगिए। सुलतान रहमदिल हैं। उनका रहम और करम सुन्दरजी को मिला है, आपको भी मिलेगा। मुझे ऐसा लगता है, मेरी सलाह बेकार जा रही है और आप लोग मुझे मार डालेंगे। अभी आठ रोज़ पहले ही मेरी शादी हुई है, सुलतान के भाई मलिक फिरोज़ुद्दीन की शाहज़ादी से। मेरी बदकिस्मती है कि इस वक़्त मैं यहाँ आया। लेकिन यह न सोच लेना कि आप लोगों की बदकिस्मती भी कुछ कम है! दुल्हन के शाही आँसू दिल्ली के शाही हरम में बिखरेंगे तो ज़रा उनकी कीमत का अंदाज़ लगाइए! उनके एक-एक आँसू से एक-एक लाख तुर्क सिपाही पैदा होंगे। आपकी मौत का पैगाम आएगा। आपकी लाशों को जलाने के लिए, मुल्क का यह सारा हिस्सा एक चिता बन जाएगा! इसलिए, वक़्त रहते चेत जाइए!"

"मलिक बहाउद्दीन!" राय हरिहर ने कहा, "यह कोई राजदरबार नहीं कि राजकीय धमकियों पर ध्यान दिया जाए! यहाँ सिर्फ़ न्याय की माँग और दान पर ही चर्चा हो सकती है।"

"जिस दिन कुरुम्ब लोग शाही फरज़न्दों का इंसाफ करेंगे, उस दिन धरती गर्क़ हो जायगी। आज तक मैं किसी न्यायालय में हाज़िर नहीं हुआ। शाही सुलतान के सिवाय दूसरा कोई मुझे न्याय नहीं दे सकता।"

और जब बहाउद्दीन ने देखा कि उसकी सारी बकवास निरर्थक है तो उसने अपनी चाल बदली—

"आप भी सिपाही हैं, मैं भी सिपाही हूँ। आपकी परम्परा के मुआफिक मैं आपसे आभीर व्यवहार की माँग करता हूँ। मेरे हाथ में तलवार दीजिए। मेरा मुकाबला करनेवाला—मुझे दीजिए। सच-झूठ का पता चल जाएगा। है कोई आप लोगों में जो बहाउद्दीन के सामने शमशेर लेकर मैदान में आए।"

सुन्दर बंदी-अवस्था में खड़ा था, ज़ोर से चिल्लाकर उसने अपने मालिक के स्वर में स्वर मिलाया—

"है कोई ऐसा जो शमशेर-बहादुर मलिक बहाउद्दीन की बराबरी में मैदान में आए ? वही मलिक बहाउद्दीन, जिन्होंने दिल्ली के शाही अखाड़े में

एक ही झटके में हाथी का सिर धड़ से अलग कर दिया था। जिन्होंने एक ही वार में खुदार खाँ गुजराती को दिल्ली के बाज़ार में मारा है। मर्दों का मुकाबला मैदान में होता है, न्यायालय में नहीं।...."

गोपभट्टी, उदयभान, विजयादित्य आदि एक साथ खड़े हो गए। हरिहर स्वयं खड़ा हो कर कहने लगा—

'सच बात है मलिक ! हमारी परम्परा शत्रु की आभीर-माँग स्वीकार करती है। आप जाति के गड़रिए, आज दिल्ली सुलतान के रिश्तेदार बन कर शाही फरज़मन्द बन बैठे ! मैं भी कुरुम्ब हूँ आज दक्षिणापथ का महा-मंडलेश्वर हूँ। उदयभान अपने शस्त्रागार से दो तलवारें मँगवाओ।"

उदयभान स्वयं दौड़ कर दो तलवारें ले आया।

हरिहर ने दोनों तलवारें मैदान में फेंकते हुए कहा—'उठा लो मलिक, जैसी तलवार पसंद हो, एक मेरे लिए रहेगी।'

मलिक हँसने लगा। उसके चेहरे पर संतोष की क्रूर हँसी छा गई—"अगर इस आभीर में मैं तुमको मार डालूँ तो, तुम्हारे लोग मुझे लौट कर जाने देंगे न ?"

"इसमें कोई शक नहीं। यह भगवान् कालमुख विद्याशंकर का आसन है।"

"अच्छा, दक्षिणापथ के महामंडलेश्वर ! आपको यह तो मालूम है न कि मलिक बहाउद्दीन कौन है ?"

"आपके अपने और सुन्दर नायक के मुँह से मैंने अभी ही तो आपकी तारीफ सुनी है !"

"पूरी तारीफ नहीं सुनी ! यह भी सुन लें कि मैं 'शाने शमशेर' हूँ। दिल्ली के अखाड़े में मुझे यह खिताब मिला है। जब से मैंने तलवार हाथ में ली, तब से दूसरा कोई इस खिताब को न पा सका है ?"

"तुर्कों के शानेशमशेर का मुकाबला करने में मजा आएगा। होशियार!"

तलवारें अपना जौहर दिखाने लगीं। मलिक भारी भरकम और अनुभवी था। उसे अपनी कलाबाज़ी का घमंड था, लेकिन, जब चेहरे और हाथ पर दो चार घाव बन गये तो, उसे आभीर का भाव ...

किंतु इस आभीर के साथ ही उसके मन में भयंकर क्रोध उत्पन्न हुआ और बड़े वेग पूर्वक उसने हरिहर पर आक्रमण किया। दर्शकों ने बिजली-सा कुछ चमकते हुए देखा और दूसरे ही क्षण मलिक की तलवार ज़मीन पर पड़ी थी! उँगलियों से लहू की धारें बह रही थीं। उसका अगूंठा कट गया था। क्षण भर के लिए वह अपनी स्थिति को देखता रहा, फिर दोनों हाथों में मुंह छिपाकर सिसक-सिसक कर रोने लगा।

हरिहर अपनी तलवार झुकाकर उसके निकट आया—'उठिए मलिक! द्वंद्व—आभीर में एक की जीत और एक की हार होती ही है। शूरवीरों को जय-पराजय नहीं छूती! उठिए, हमारे कुशल वैद्य आपका इलाज करेंगे।"

"इलाज...इलाज! आप नहीं जानते, मेरा इलाज हो चुका है। जब कोई तुर्क द्वंद्व में किसी काफिर से हार जाता है तो, सुलतान उसे हाथी के पैरों नीचे कुचलवा देता है, फिर चाहे उसका अपना शाहज़ादा क्यों न हो!"

उदयभान ने वैद्य को बुलाया।

मलिक को भीतर ले जाया गया।

सब लोगों ने हरिहर का जय-जयकार किया और उसका अभिनंदन किया।

हरिहर चुपचाप आगे बढ़ा और सोमैया के चरणों में गिर कर कहने लगा—

"दादैया आपकी कृपा का फल है यह! आपकी शिक्षा-दीक्षा का वर-दान है यह! मेरे प्रणाम स्वीकार कीजिए! आशीर्वाद दीजिए!"

"महामंडलेश्वर! मैं, तुम्हारी विजय पर बधाई देता हूँ। आशीर्वाद के लिए तो साक्षात् जगद्गुरु विद्यातीर्थ महाराज उपस्थित हैं। तुम्हारा कल्याण हो। शाने शमशेर के हाथ से तलवार छुड़ा दे—ऐसी यह शिक्षा तुम्हें कहाँ मिली?"

"गुरुदेव, आपका प्रताप है यह!"

"मेरा?"

तुर्कों की मद्रर विजय के पश्चात तिर्यकों के वीरगति पाने पर, आप भी

घायल होगए थे, तब, केरल का एक चेर, कुरुम्ब किशोर आपको नदी के पार उतार गया था और उसने आपकी सेवा की थी। आपने उसे कहा था, 'कुछ माँग ले।' उसने आपसे अद्भुत असिविद्या की शिक्षा के लिए याचना की थी।"

"हाँ, बहुत तेजस्वी था वह युवक! उसका नाम था हक्का! क्या तुमने उसी से यह विद्या सीखी है? हक्का कहाँ है?"

"जी आपके चरणों में बैठकर! वह हक्का—मैं ही हूँ। वल्लालदेव ने मेरे पिता संगमराय को कारावास-दण्ड दिया था। तब अपनी माता की आज्ञा लेकर चल पड़ा था। अचानक आपके चरणों में शरण मिल गई।"

"वत्स, कल्याण हो!"

मालादेवी ने कहा—"हरिहरराय! अपने गुरु से तुमने जो विद्या प्राप्त की, उससे तुम प्रकाशित हुए, धन्य हुए और वह विद्या तुम से धन्य हुई। लेकिन, अभी गुरुजी को गुरुदक्षिणा देना शेष है।"

"माला!"

'स्वामी, आप चिंता न करें आपकी चिंता मेरी चिंता है। आपकी मनीषा, मेरी मनीषा है। राय हरिहर, आपके गुरुदेव आपसे दक्षिणा नहीं माँगते, मैं गुरुपत्नी, माँगती हूँ, मिलेगी?

"ऐसा अवसर पाकर मैं धन्य हूँगा।"

"तब सुनिए"—मालादेवी ने कहा—"आपके गुरुदेव की एक पालिता पुत्री हैं। आपकी जाति का एक व्यक्ति इनके पास छोड गया था, युद्ध में वह वीरगति को प्राप्त हुआ। हक्का से इस पालिता पुत्री का ब्याह करने का विचार गुरु के मन में था, किन्तु हक्का के चले जाने और कई वर्ष तक ओझल रहने के कारण, वह विचार अपूर्ण रहा।"

"तो देवी, गुरदेव की मनीषा पूरी हो!"

सोमैया बोले—"लेकिन, हरिहर...हरिहर, उस हक्का की बात अलग थी। राय हरिहर की बात अलग है। हक्का हरिहर बना। परन्तु हरिहर महामंडलेश्वर है। और यह बात तो अच्छी नही कि तुम्हारे लिए यह प्रसंग गुरुदक्षिणा बने, और राय हरिहर के लिए गुरदण्ड!"

"इस में क्या रहस्य है, गुरुदेव !"

"एक बात है, ज्योतिषियों का कहना है कि यह बाला, शारदा निःसंतान रहेगी।"

"तो कौन-सी नई बात है, गुरुदेव ! मेरे चार भाई हैं, समय पर वे पुत्रों से अधिक सेवा करेंगे और कर्तव्यपालन में अग्रसर होंगे।"

तभी हाथ पर पट्टी बांधे, निराशमुख मलिक वहाँ आया। उदयभान और विजयादित्य उसकी रखवाली कर रहे थे।

हरिहर ने उससे कहा—

"मलिक ! आपने हमारी पूर्व परम्परा के अनुसार न्याय मांगा और न्याय आपको मिला। अब हमारी वही परम्परा कहती है कि आप खुशी-खुशी यहाँ से जा सकते हैं। हमारे दोरंगुल (सिपाही) आपकी हिफाज़त करेंगे और सरहद तक बाइज्जत, सही सलामत पहुँचा देंगे। अच्छा फिर मिलेंगे कहीं—खुदा हाफ़िज़ !"

२० : देशद्रोही का न्याय

न्यायालय में न्याय सभा विराजित थी और पूर्व-परम्परा के अनुसार न्याय प्रदान करना था।

और मलिक बहाउद्दीन का मामला और था। वह विजातीय था। विधर्मी था। विदेशी था। पूर्व-परम्परा उसके लिए मर्यादा न थी, बन्धन नहीं थी।

केवल आभीर के आवेदन का अधिकार उसे था। आभीर उसे मिला और उसमें उसकी हार हुई। इससे एक लाभ हुआ, दर्शकों का विश्वास बढ़ा और उनकी श्रद्धा सौगुनी हुई, यह, अपनी आंखों देखकर कि म्लेच्छ तुर्कों के शाने-शमशेर को हमारे महामंडलेश्वर ने किस प्रकार पल भर में परास्त कर दिया !

लेकिन सुन्दर का न्याय दूसरी चीज है। इसने पूर्व-परम्पराओं का अनेक बार उल्लंघन किया है। यह इसी भूमि का सामन्त है, अतः गोमती-पुत्र शातकर्णी और आन्ध्रभृत्यों के शासनकाल से उत्तरोत्तर चली आ रही पवित्र पराम्परा का ज्ञान, इसे न हो, ऐसा नहीं हो सकता। यह अनजान नहीं।

यह परम्परा इस भूमि के प्रत्येक अधिवासी की मर्यादा का अनुमान आंक लेती थी। इस भूमि का कोई भी वासी विदेशी आक्रमक को आमंत्रण नहीं दे सकता—यह परम कठोर नियम था। किसी भी कारण, कोई भी व्यक्ति अपने पितामह तक के पारिवारिक जनों और सम्बंधियों पर शस्त्र न उठा

सकता था और न परिवार की सम्पत्ति के भाग या विभाग के लिए ज़ोर दे सकता था। और न कोई इतर गोत्रीय या वर्णान्तर विवाह-द्वारा प्राप्त सहायता का अपने सगोत्रीय सम्बंधी जनों के विरुद्ध उपयोग ही कर सकता था।

सैंकड़ों वर्षों की यह परम्परा थी। युगों की रीति थी। सुन्दर ने अनेक नियमों का उल्लंघन किया था—इस सीमा तक कि फांसी का दण्ड ही, उसकी सज़ा थी। ऐसे अवसर पर, अपराधी धर्म-शासन या पंचों का प्रश्रय लेता है, अन्यथा, पंचमहापातक का भागी होता है।

अतएव, यह तो निश्चित था कि—

सुन्दर ने एकाधिक वार पूर्व परम्परा का भंग किया है। परन्तु अब यह प्रश्न था कि उसे कौन-सा दण्ड दिया जाएगा?

दण्डनायक जिस स्थान पर निर्णय देता है, उस स्थान के मुख्य कर्णिक का कर्तव्य है कि वह आदेश का पालन करवाए। यहाँ, होनावर दुर्ग का दुर्गपाल था उदयभान।

उदयभान ने समुद्र और स्थल के बीच एक शूली तैयार करवाई थी। चाण्डाल अपना सामान लेकर तत्पर खड़े थे।

शूली के उपरान्त अपराधी की देह का अवैधिक अग्निसंस्कार किया जाता था। आंध्रभृत्यों के शासनकाल से यह परम्परा चली थी। अतएव, शूली के समीप ही जंगली लकड़ी की एक चिता तैयार थी।

दुर्ग के बन्दीगृह से सुन्दर ने अपनी आंखों, इन सब तैयारियों को देखा था। भारी रोष, आक्रोश और उलझन में उसने रात्रि व्यतीत की थी। शूली की स्थापना करनेवाले पंचकारकों और पांचालों के ओजारों की आवाज़ से उसे रात भर नींद नहीं आई थी।

दूसरों के जीवन को खेल समझनेवाले, दूसरों की मृत्यु को मृत्यु न समझनेवाले सुन्दर को आज अपनी मृत्यु का विचार परेशान कर रहा था!

सुन्दर की आंखों के सामने, उसका समस्त जीवन चित्र उभर आया—जिस तरह, बहती हुई नदी पर अंकित-किए-जानेवाले चित्र की रंगीनी उभर जाती है!

कई लोगों के प्राण लेने के लिए वह निकला था। विदेशियों के चरणों की चाकरी की। वर्णान्तर नारी से विवाह किया। अपने स्वार्थ के लिए उस स्त्री का दण्डकणिका के रूप मे उपयोग किया! पूर्व-परम्परा का उल्लंघन किया और वयोवृद्धों का अपमान, तिरस्कार किया। धर्म और कर्म का अपहरण किया। स्वयं भ्रष्ट हुआ और औरों को भी भ्रष्ट ही नही, नष्ट भी किया!

और आज वही सुन्दर जीवन के लिए ललक रहा था। जीवित रहने के लिए तड़प रहा था!

न्यायालय की न्याय-सभा का समय आया। दण्डनायक के दोरंगलु भी आए और उसके दोनों हाथ बाँधकर उसे ले चले। उनके पीछे काले कुत्ते और रस्सी के फंदे उठाये दूसरे चाण्डाल थे।

नियम यह था कि यदि अपराधी छूटकर भाग जाने का प्रयत्न करे तो चांडाल स्वयं उसे पकड़ सकते हैं और जीवित ही उसके शरीर पर उनका अधिकार हो जाता है। फिर न्यायालय के समक्ष जाने की आवश्यकता नही रहती!

चाडालों, काले कुत्तों और शूद्रों की भीड़ के आगे आगे चलता बन्दी सुन्दर पाड्य न्यायालय मे उपस्थित किया गया।

उसने आते ही चिल्लाना शुरू कर दिया—

"मेरे विरुद्ध न्याय की पुकार कौन कर रहा है! कौन चाहता है मेरे खिलाफ न्याय? क्या मेरे ही पिता का पुत्र सोमैया पांड्य न्याय चाहता है? क्या मंदांगी—मेरी अपनी पत्नी न्याय-पुकार लेकर आई है? जरा बतलाओ! कौन है न्याय का प्रार्थी?"

सोमैया ने स्वस्थ स्वर मे कहा—

"मैं हूं न्याय प्रार्थी! सुन्दर, अपने पिता को बीच मे लाने का कोई अर्थ नहीं। हमारी पवित्र धरती देशद्रोही के लिए रज-कण जितना स्थान भी नहीं है। फिर चाहे वह मेरे पिता का पुत्र ही क्यों न हो!...सुन्दर ...सुन्दर तूने यह क्या किया?"

"भाई! भाई ही भाई के समक्ष, भाई के विरुद्ध न्याय मांगता है

अपने पिता के राज्य की प्राप्ति के लिए राजपुत्रों का प्रयास कबसे अपराध माना जाने लगा है ? यदि यह अपराध है तो जाने कितने लोगों को, तुम्हें शूली पर लटकाना होगा !"

सुन्दर ने देखा कि उपस्थित समुदाय पर उसके शब्दों का कोई प्रभाव पड़ रहा है या नहीं ? वह तो अपनी आत्मा के सम्मुख अपने आपको निर-पराध साबित करना चाहता था।

"मृत्यु ! जो लोग जीवन नहीं दे सकते, उन्हें मृत्यु देने का क्या अधि-कार है ! यह आपका अपना कथन है और यह सत्य कथन है। यह भी सत्य है कि मैंने जीवन की जगह मृत्युदान दिया है और बुरा किया है। तो आप ही बतलाइए आप जीवन दानी न बनकर, मृत्युदानी क्यों बनना चाहते हैं ? मुझे शूली पर लटका देने से क्या होगा ? तब, आपमें और मुझमें, क्या अंतर रह जायगा ?"

दण्डनायक हरिहर ने कहा—'सुन्दर ! शांत हो जाओ ! जो कुछ कहना हो पंचों से कहो। पूर्व-परम्परा का पालन हमारा धर्म और कर्तव्य है। यहाँ पूर्व-परम्परा के मर्मज्ञ राजगुरु स्वयं विराजमान हैं। वे हमारी शंकाओं का यथोचित समाधान करेंगे। लेकिन सुन्दर ! इतना ध्यान रहे कि हममें से कोई पूर्व-परम्परा का उल्लंघन नहीं कर सकता, फिर चाहे वह कोई क्यों न हो। न्याय-सभा में न्याय के सामने सब समान है। न्याय और नीति से रहित, निराधार प्रलाप करनेवाले को पागल मान लिया जाएगा और तुरंत आवश्यक आदेश दिया जाएगा।'

फिर राय हरिहर ने सुन्दर की ओर देखकर पूछा—"कहिए, आपको क्या कहना है ?"

"आपकी तैयारियाँ बतला रही हैं कि आपने मुझे मृत्युदण्ड देने का फ़ैसला कर लिया है फिर न्याय का यह नाटक किसलिए किया जा रहा है ?" —कहते-कहते सुन्दर का चेहरा पसीना-पसीना हो गया। वह जहाँ खड़ा था, वहाँ से शूली स्तम्भ स्पष्ट दिखलाई देता था। अपने टूटते हुए धैर्य को जैसे दोनों हाथों से थामकर वह कहने लगा—

"याद रखना ! जिस प्रकार तुम्हें मुझ पर दया नहीं आती, उस प्रकार

मरते दम तक, मुझे भी तुम पर दया नहीं आएगी ! जिस राह मुझे भेजा जा रहा है, वही राह तुम्हारे लिए थी, यदि मेरी योजना सफल हो जाती ! लेकिन, मुझे किसी बात का—सफलता, असफलता का दुःख नहीं। और याद रहे जिस सुन्दर ने तुर्कों की सेवा की, उनसे सम्पर्क स्थापित किया, उसे तुर्क सरदार सहज ही भूल न जाएँगे। तुर्क आएँगे। मेरे बाद, बहुत जल्द आएँगे। तुम्हारे इस देश में अग्नि, धुआँ और पराजय का बीज बोएँगे। वे अवश्य इस धरती पर शासन करेंगे। तुम्हारे भगवान् ने तुम्हें एक दूसरे से जुदा कर दिया है। तुम्हारे सम्प्रदायों ने तुम्हें एक दूसरे का शत्रु बना दिया है। तुम कभी मिलकर, एक होकर नहीं रह सकते ! इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम्हारी पराजय होगी !..."

'सुन्दर नायक ! यह विषय परिवर्तन...'

दण्डनायक को कुछ कहने का अवसर न देकर सुन्दर नायक अपने आवेग में कहता ही गया—"तुम लोग मेरी मृत्यु का सामान सजा कर बैठे हो ! इसलिए मुझे, जो कुछ कहना चाहूँ, कहने का अवसर दो। तुम मुझे चुप नहीं रख सकते। मेरे एक एक बोल से तुम्हारे अंतर के द्वार खुलते जाते हैं। शातकर्णी शालिवाहनों के समय से ही महाराष्ट्र अर्थात् दक्षिणापथ की रचना के स्वप्न की दुर्दशा तुम्हीं लोगों ने की है। दक्षिणापथ टुकड़े-टुकड़े हो गया ! और नये टुकड़े बने ! छोटे से छोटा टुकड़ा, हरेक टुकड़ा हमारा अपना रहे, अपने टुकड़े में हम सर्वेसर्वा बने रहें—यही तुम लोगों का उद्देश्य रहा ! यदि मैं भी इसी परम्परा का शिकार बना तो, भला, अपराध किसका ? तुम लोग यह तो जानते हो कि अपराधों की परम्परा होती है...

"एक अखंड भूमि के टुकड़े करना, एक अखंड धर्म के टुकड़े करना, और छोटे से-छोटे टुकड़े कर देना—यह तो हमारे बाप दादाओं की परम्परा है ! इसी का परिणाम है कि तुर्कों ने समस्त उत्तरापथ अधिकृत किया और इसी के कारण स्वरूप वे दक्षिणापथ पर भी विजय प्राप्त करेंगे। तुम्हारे धर्माचार्य युगों से इस छिन्न-भिन्न-परम्परा का पालन करते आ रहे हैं। आज यदि मैं इस परम्परा का अनुसरण करता हूँ तो भला, अपराधी कैसे ?"

सहसा सुन्दर का चेहरा लाल हो गया—'मैं तुम सबको मरे हुए लोगों की तरह, मुर्दों जैसे, देख रहा हूँ ! तुम मात्र शव हो ! मैं देख रहा हूँ, इस धरती पर, इस आकाश में तुर्कों का हरा झंडा और चाँद चमकेगा ! वे अवश्य तुम पर हुकूमत करेंगे। इस कथन की सत्यता, सम्भावना अवश्यं-भावी है।"

"और कुछ कहना चाहते हैं ?" राय हरिहर ने पूछा।

"नहीं"

"अपराधी का अपराध स्वयंसिद्ध है, इस विषय में स्वयं अपराधी भी अधिक कुछ कहना नहीं चाहता। इसका यही विशेष कथन है कि इसने जो कुछ किया, उसे यह अपराध रूप में नहीं देखता। मैं न्याय-सभा का अभिप्राय जानना चाहता हूँ। अपराधी का अपराध स्वयं सिद्ध है, इस विषय में न्याय-सभा क्या कहना चाहती है ?"

सोमैया नायक ने अपनी अंधी आँखों से आँसू पोंछते हुए कहा—'मेरा कुल, जिसमें कि आज तक प्रतापी पूर्वज ही उत्पन्न हुए हैं, इस देश-द्रोही के जन्म से कलंकित हो गया ! इसका जन्म हमारे कुल का अपवादमात्र है। मैं मानता हूँ कि सुन्दर को मृत्युदण्ड मिलना चाहिए। यह न्याय की मांग है।"

तब दुर्गपाल उदयभान ने कहा—"अपराधी का मिथ्या प्रलाप उसके अपराध का उत्तर नहीं देता ! इसका अपराध स्वयंसिद्ध है कि उसका कोई उत्तर नहीं दिया जा सकता। महाकर्णाधिप सोमैया के पवित्र कुल पर इस अपराध की कोई छाया नहीं पड़ सकती, पड़ेगी नहीं। इतना ही मैं कहना चाहता हूँ।"

चंद्रगुट्टी का दुर्गपाल विजयादित्य चालुक्य बोला—"पूर्व नीति एवं न्याय परम्परा का व्यवहार अखंड रहे। अपराध अक्षम्य है। कभी-कभी क्षमा भी कायरता बन जाती है।"

वनवासी दुर्ग के दुर्गपाल गोपभट्टी की बारी थी—"तुर्कों की सहायता से अपने स्वार्थ की साधना और स्थापना करने का अपराध, मैं ठेठ जैसल-मेर से देखता आ रहा हूँ। क्षमा वीरों का भूषण है—यह कहावत सत्य है, परंतु देशद्रोही को क्षमा करना मूर्खता है।"

काम्पिलदेव बोले—"घर के भेदियों और दुर्ग की रक्षा का गुप्त रहस्य शत्रु तक पहुंचानेवालों का एक ही दण्ड है। अन्यथा, हमारे भागीरथ प्रयत्न निष्फल जाएंगे। अपराधी सुन्दर के लिए मात्र एक दण्ड है, दूसरा नहीं!"

"भगवान् राजगुरु! आपने सांसारिक सज्जनों के अभिप्राय सुने। कृपया, यह बतलाइए कि इस विषय में धर्म की क्या आज्ञा है?"

"धर्म और संसार को अलग करने का काम जगद्गुरु शंकराचार्य का है। सुन्दर के अपराध के लिए मृत्युदण्ड ही एक मात्र दण्ड है। क्षमा-दान का अधिकार हमारा—राजगुरु का विषय नहीं, उससे हमारा सम्बंध नहीं। क्षमा का अधिकार मात्र दण्डनायक को है।"

दण्डनायक ने घोषणा की—

"सुन्दर नायक! आपने सभी अभिप्राय भलीभांति सुन लिए हैं। दण्ड की घोषणा के पूर्व, आप और कुछ कहना चाहते हैं?"

सुन्दर का सारा शरीर पसीने से लथपथ था। पहले जब अन्तर से अग्नि फूटी थी, उसका चेहरा सिन्दूर की तरह लाल हो गया था, लेकिन अब साफ़ मिट्टी जैसा विवर्ण था! इस चेहरे पर मौत का डर छा गया था। सुन्दर के मुंह से बोल निकलना कठिन था, क्योंकि भीतर ही भीतर उसकी जीभ सिमटती जा रही थी और इस दशा से बचने के लिए उसके होठ एक दूसरे से सटे हुए थे।

सुंदर ने सिर हिलाकर 'ना' कहा!

और जैसे चुम्बक के आकर्षण से खिंची जा रही है, इस प्रकार, उसकी आंखें शूली की अनी पर लगी थीं।

तब दण्डनायक हरिहर उठ खड़ा हुआ—

"सुनिए सर्वजन! सुनिए सभाजन! सुनिए नगरजन! पुरजन! सुनो सुन्दर नायक! भगवान् कालमुख विद्याशंकर के धर्मशान्ति-देश दक्षिणापथ का दण्डनायक मैं हरिहर राय अब अपना निर्णय प्र[illegible] हूं। सभी सज्जन सुनें—"

सभा के चारों ओर एक नज़र डालकर, हरिहरराय ने अपना निर्णय प्रकट किया—

"दण्डनायक के पद और अधिकार रूप में मेरा यह आदेश है कि सुन्दर नायक को दक्षिणापथ की सीमा से बाहर निर्वासित कर दिया जाए।"

सुन्दर नायक बेहोश होकर गिर पड़ा।

सभाजन निरे विस्मय से उसे देखते रहे। दुर्गपाल उदयभान बेचैन होकर, कहने लगा—दण्डनायक! मृत्युदण्ड के बजाय, निर्वासन! क्षमा करें, आपका निर्णय मेरी समझ की सीमा से बाहर-बाहर रहा!"

"यह हमारी गुरुदक्षिणा है! अच्छा हो या बुरा हो, कोमल हो या कठोर हो! लेकिन गुरु को मृत्युदण्ड तो नहीं ही दिया जा सकता!" राय हरिहर का उत्तर था।

'गुरु दक्षिणा!...आपकी गुरुदक्षिणा सोमैया नायक को मिल चुकी है। स्वयं सोमैया नायक का द्रोही सुंदर, दक्षिणा का पात्र कैसे बन गया, दण्डनायक? हमारा समाधान कीजिए!" गोपभट्टी ने गौरव-गर्जन किया।

"वीरवर भट्टी, आप जानते हैं, गुरु दत्तात्रय ने श्वान को भी अपना गुरु मान लिया था! सो यदि हम इस देश-द्रोही को, एक उपदेश के लिए गुरु मान लें तो कौन-सी बुरी बात हैं! सुन्दर का प्रलाप आपने ध्यान से सुना है, सबने सुना है। अनेक मिथ्या प्रलापों के बीच, इसने एक सुन्दर बात कही, हमारे जागरण के लिए ज़रूरी है वह!"

"हम कुछ समझ न सके, ऐसी कौन-सी बात है वह?" विजयादित्य ने पूछा।

"एक बात! छोटी-सी बात! एक उपदेश, भले अपराधी सुन्दर ने वैरभाव-वश उसका उच्चारण किया, फिर भी, वह हमारे लिए ज्योति-स्तम्भवत् है—अखंड को खंड-खंड करके अपने दुःस्वप्न या स्वार्थ को सिद्ध करना, हमारे देश के पतन का प्रमुख कारण है! हमारी एकता और हमारा संगठन ही हमारी विजय है—इस सूत्र का, हमें प्रतिदिन पारायण

करना चाहिए : और द्वेष भावपूर्वक भी, ईर्ष्यावश भी सुंदर के मुख से यह जो शब्द निकले, उसके लिए, हमें सुंदर को अपना गुरु मानना चाहिए और गुरु-दक्षिणा देनी चाहिए....।

"अतएव उसे क्षमा किया गया !"

"ताकि, सारा संसार देखे, सुने और साक्षी रहे कि विजय के धर्म को क्षीण करनेवाली यह अपराजेय प्रजा, यह महान् जनता अखण्ड को कदापि खंडित न होने देगी, और कभी आतताई आक्रमणकारियों के सामने सिर नहीं झुकाएगी।....और सुंदर के ये शब्द भी हम भूल न जाएं कि जिस दिन अखंड का खंडन करने की दुर्बुद्धि हममें पैदा होगी, उस दिन, हमारा सर्वनाश हो जाएगा !...

"इसलिए, आओ, बढ़ें अखंड की ओर !"